

'दिमंबर जैन्" वर्षे ६ अंक १२ का काड्पत्र.

विगंबर केन प्रंथमाला नं २२

। श्रीवीतरागाय समः ।

दिवालीमें निर्वाण पूजनके समय पट्ने योग्य

श्री महावीर चरित्र.

(तिर्दाणकाण्डं भाषा-गाञ्चा अंति महातीर जिनपूना सहित)

~*}}}&&&&*

प्रकाशक--

मूळ्चंद किसनदास कापित्रग-सूरत.

पथ्याद्वशिक्ष की सं २४३१

વલાસણુ નિવાસી સ્વર્ગ. શા. બાપુજી ત્રીકમદાસની સાે. પુત્રી ઋહેન શીવકાેર તરફથી જ્ઞાનાવરણીય કર્મના ક્ષ્માર્થે "દિગ'બર જેન" પત્રના ગ્રાહકાેને છઠ્ઠા વર્ષમાં (દશમી) ભેટ

_3-4-

: ખપારીમા ચકલા 6 ાર આવેલા શા. પુ. અ.ના ધી સુરત જૈન પ્રિન્ટીંગ પ્રેસુમાં મડુલાઈ સાઈતસે છાપ્યું.

मुल्य रु. ०-१-६

प्रस्तावनाः

अपने अंतीम तीर्थंकर शीमहावीरम्वामीके निर्वाणेगमनका उत्तम दिन 'दिवाली' (दीपावली) के नामसे सर्वत्र प्रसिद्ध है और महावीरनिर्वाणम्मृतिके लिये उसीदीन प्रत्येक मंदिरजीमें 'मंक्षिप्त महावीर चरित्र' मब भाइओंको सुनाकर निर्वाणकांड भाषा-गाथा पढकर महावीर जिनपूजा करना अत्यावस्यक' है. परंतु पुस्तक न होनेसे यातो प्रमादके वशसे सब जगह इस पर्व अच्छी तरहस नहि मनाबा जाता, इस लिये एक ऐसी पुस्तक की बड़ी आवश्यकता थी कि जिसमें 'श्रीमहावीर चरित्र' संशे हपूरें हो और उसके साथ २ महावीर जिनपूजा और र अव किया सामिल किया गया हो. इस अमिनायसे मही हैं। कारी विवासी ंर नाजाभरतात जैन शासीद्वारा जिसनीक क्र-पन्नाकाल बाक्कीबालने 'महावीरस्वांमां जे, 'दवाका' जामकी छीटीसी पुस्तक प्रकट कीथी उसके आधारसे तैयार करके उसमें निर्वाणकांड भाषा--गाथा और महावीर जिन पूजा सामिल करके. 'श्रीमहावीर चरित्र' नामकी इस पुस्तक पाकट की जाती है और बड़ौदा [बड़ोदरा] निवासी हा। केशवलारु त्रीभोवनदासकी पेरणासे उनकी मासी शीवकोरबाइके खर्ची 'दिगंबर जैन' के ग्राहकोंको उपहार में दी जाती है, जो ख भाइओंको दिवार्लाके दिन निर्वाणपूजनके समय पढ़नेके बहुत रुचीकर होगी. इत्यलम. बीरनिर्वाण संवत २४३९ जैन जाति संबक अश्विन वदी ७ 🗦 मृलचंद किसन रास कापहिया ता. २२--९--१३ 🔰 ऑ. संपादक. 'डिगंबर जैन'-मृत.

॥ श्री परमात्मने नमः ॥ दिवाली में निर्वाण पूजन के समय पे**ड़ी सोल्ड**

श्री महावीर चरित्र.

SECOND |

जन्त्रस्थान।

श्रीमहावीरस्वामी जैनियोंके परमपृजनीय परमात्मस्वरूप ग्रैवीम तीथोंकरोंमेंसे अंतके चौबीसमें तीर्थकर है। इनके वीर, कल्र. अतिवीर सन्मति, वर्द्धमानभगवान आदि अनेक ते हैं परंतु विशेषकर महावीरस्वामीके नामसे ही अधिक प्रसिद्ध हैं।

इन महात्माका जन्म आजमे २५११ वर्ष पहिले (इम्बी सनमे ५९९ वर्ष पहिले) इसी आर्यक्षेत्रमें कुंडलपुर नगरके अधिपति नाथवंशीय कारुयपगोती सिद्धार्थ महाराजकी त्रिश-लादेवी राणीके गर्भसे हुआ था। कुंडलपुरशहर महावीर भग-वान्के समयमें ४८ कोशकी लंबाई चौडाईमें बसता था। आज-कल उस शहरका कुछ भी पता नहीं है. परंतु ऐतिहासिक विद्वानोंने विहारमे ७ मीलकी दृरी पर एक कुंडलपुर बस्ती प्रसिद्ध किया है। जैनी लोग भी उस जगहको महावीरस्वामी-का जन्मस्थान मानकर उस पवित्रभृमिकी बहुत कालसे यात्रा करते हैं और प्जनादि कर पुण्योपार्जन करते रहते हैं।

गर्भकत्याण ।

सव तीर्थंकर भगवान प्रायः १६ म्वर्ग, ९ प्रैवेयक, पांच पंचीतर [विजय वैजयंत. जयंत. अपराजित और सर्वार्थसिद्धि] आदि स्थानींसे आकर किसी न किसी उत्तम राजकुलमें जन्मधारण करते हैं । अंतिन तीर्थंकर श्रीमहावीरभवामी अच्यत नामके सोलर्बे ध्वर्गमें २२ सागरपर्वत अवारमुख भोगकर आपाडसुदी ६ के दिन सिद्धार्थ महाराजकी पटरानी विश्व-छ।देवीके गर्भने आये थे। तीर्थंकर भगवान जब मनुष्यभवमें अवतरण करते हैं तब मैं।धर्मनामक पथमम्बर्गके इंद्रको अव धिज्ञानके प्रभावसे ६ महीने पहिले ही माल्स हो जाता 💃 सो इंद्र कुबेरको हुकुन देता है कि अमुक नगरके अमुक राजा. की राणीके गर्भमें तिर्थंकर भगवान पधारेंगे. सो उस नगरकी १२ योजनमें युंत्र रचना करो और राजाके घर दिनमें तीन वार लगातार ६ महीने पिहलेसे अर्थात १५ महीने तक रत-वृष्टि करते रहे। । कुबेर इंद्रकी आज्ञानुसार ऐसा ही किया करता है । महावीरस्वामीक पिता सिद्धार्थराजाके घर पर भी १५ महीने तक कुवेरने रश्च्यष्टिकी और नगरभी १२ योजन-में **सुंदर रचना**से अशामित कर दिया।

जिस रालिको महावीर वामी अच्युतस्वर्गसे चयकर माता-ेके गर्भमें आये थे उस रात्रिमें माताको **१६ शुभस्त्रप्र आये** , और माता प्रातःकाल ही उठकर महाराजके समीप सब स्वम निवेदन करके महाराजसे उनका फल सननेकी इच्छा प्रगट की। महाराजने उत्तर दिया कि इन सब स्वमों का फल यह है कि तुमारे उदरसे तीन लोककेनाथ तीर्थंकरपुत्रका जन्म होगा.। उस दिन सौधर्म इंद्रने प्रथम ही श्री, ही, धृति, कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी इन ६ देवियोंको माताके निकट मेजा । उन्होंने माता-के उदरकी संशोधना कियी, जिससे माताका उदर फटिकसमान निर्मल हो गया । उसी दिन अपाढ सदी ६ उत्तरा नक्षत्रमें भगवानका जीव अच्यत स्वर्गसे चय कर माताके **गर्भमें** आ-गया । जिस समय भगवान् माताके गर्भमें पधारे, उस समय कल्पवासी देवोंके घरमें अपने आप घंटानाद होने लगा, ज्यो-तिषी देवोंके यहां सिंहनाद हुआ, भवनवासी देवोंके घर शंखनाद हुवा, व्यंतरदेवोके घर भेरी बजने लगी और स्वर्गपति सौधर्म इंद्रका आसन कंपायमान हुआ, जिससे समस्त देवोंने अपने अवधिज्ञानसे जानलिया कि आज अंतिम तीर्थंकर भगवान अपनी माताके गर्भमें पधारे हैं। उसी वक्त समस्त देवोंसहित इंद्रदेव सिद्धार्थमहाराजके घर जाकर बडे ठाठसे भगवानके मातापिताका अभिषेक किया और गर्भस्य प्रभुकी नानाप्रकारसे स्तुति की। तत्पश्चात् रुचिकद्वीपमें रहनेवाली ५६ कुमारिकावों-को (देवियोंको) बुलाकर माताकी सेवामें तैनात कर दी। इसप्रकार गर्भीत्सवपूर्वक नमस्कार करके सब देव अपने २ स्थान चले गये। जिसप्रकार कमल जलसे आलिस रहता है उसिपकार भगवान नव मासपर्यंत माताके गर्भमें रहे। माताके उदरकी त्रिबलीका कभी भंग नहिं हुवा । छप्पन कुमारिकायें माताकी हरतरहसे सेवा करती रही । कभी २ मातासे अनेक प्रकारके गृह प्रश्न भी किया करती थीं सो माता भी सबका यथोचित उत्तर प्रदानकर सबको प्रसन्न कर देती थीं।

जन्मकल्याण ।

तत्पश्चात् माताके ९ मास पूर्ण हुये. तब चैत्रशुक्का १३ उत्तरा नक्षत्रके दिन महावीरस्वामीका जन्म हुआ। सर्वत्र जयजयकार होने लगा, खर्गमें घंटानाद हुआ, ज्योतिषीदेवोंमें सिंहनाद सुनाई पड़ा, भुवनवासी देवोंमें शंखनाद और व्यंतर देवोंमें भेरी बजने लगी। जिससे समस्तदेवोंको भगवानके जन्म होनेकी सूचना होगई, तब सौधर्म इंद्र चारोंप्रकारके देवों सहित जन्मकल्याणक महोत्सव करनेकेलिये एक मायामयी ऐरावत हस्ती लेकर कुंडलपुर आया । इंद्राणी माताके प्रमृति-धरमें गई और माताको सुखनिदामें शयन कराके एक देवकी मायासे छोटासा बच्चा बनाकर माताके पास मुला दिया और भगवानको उठाकर इंद्रके समीप ऐरावतहस्ती पर लाकर सौंप दिया । इंद्रने भगवानका संदरहरूप देखनेकेलिये हजार नेत्र बनाये तौ भी. उसकी रूपतृष्णा नहीं मिटी। तत्पश्चात् सब देव अपने २ विमान वा बाहनोंपर चढकर गाजेवाजे सहित आकाशमार्गसे सुमैरुपर्वतपर पांडुकवनमें लेगये और अर्द्ध चंद्राकार पांडुकाशिलाके मध्यभागमें रत्नसिंहासनपर भग- वानको विराजमान किया और पांचवे क्षीरसमुद्रसे १००८ करुश मंगाकर इंद्रने भगवानका जन्माभिषेक उत्सव किया। तत्पश्चात् दिव्य आभूषण पहनाकर दर्शन किया, स्तुति की। फिर ऐरावतहस्तीपर बिठाकर गाजेबाजेसिहत कुंडलपुर आये और माताको जगाकर भगवान को समर्पण किया। भगवानको दिव्य बस्ताभृषणसिहत देखकर माताको अतिशय आनंद व आश्चर्य हुआ। तत्पश्चात् इंद्रने भगवानके मातापिताको देवोपनीत रत्नमय वस्त्रालंकार व पुष्पमाला पहनाकर उनके आगे तांडवनृत्य किया और उत्तमकाव्योंसे स्तुति करके नम-स्कार किया। इसप्रकार जन्मकल्याणका उत्सव पूरा करके इंद्र व समस्तदेव अपने २ स्थानपर चले गये।

भगवान मेति, श्रुति, अविध ऐसं तीनज्ञान सहित ही उत्पन्न हुये थे। भगवानके हाथके अंग्ठेमें अमृतरस होनेके कारण भग-वान् उसी अमृतरसकी चूसते रहते थे। माताके स्तन्यपान करमे की आवश्यक्ता नहीं होती थी। भगवानको समस्त बस्नालंकार स्वर्गके देव ला ला कर नित्य नये र पहनाते थे और अनेक देव भगवानके बराबर बालकका शरीर बनाकर खेलते थे।

१। इंद्रिय और मनसे समस्तपदार्थों के जाननेका नाम मित-ज्ञान है। २। उससे विशेष अर्थात् अर्थसे अर्थातर जाननेका नाम श्रुतज्ञान है। ३। और कितने ही क्षेत्रकी मर्यादा लिये रूपी पदा-थोंका जानना सो अवधिज्ञान है।

उनके अलौकिक खेल देखकर माता वगेरहको अङ्कुत आनंद होता था। भगवान् चंद्रमाकी तरह दिनोंदिन बढ़ने लगे। आठवें वर्ष भगवानने श्रावकके अहिंसा, सत्य, अचौर्य, कुझील-त्यागादि बारह व्रत ग्रहण किये।

एक दिन भगवान् उन मायामयी समवयस्क बालक देवोंके साथ बागमें कीड़ा करनेको गये, तो देवगण एक माया-मयी हसी बनाकर प्रभुक सम्मुख लाव । उसको देखकर सब जने भयभीत हुये, इधर उधर भागने लगे, हस्तीके पास कोई भी निहं जाता था, परंतु भगवान् उसके पास गये और हाथसे पकड़कर उस पर चढ़ बैठे । उसे देखकर कुटुंबके सब लोगोंको बड़ा आनंद व आश्चर्य हुवा। तुमारी बराबरी कोई भी बलवान्, पराकमी, धैर्यवान् निहं होगा इत्यादि प्रशंसा करने लगे। करपश्चात् भगवानने युवावस्था व माता पिताका अत्याग्रह होने पर भी विवाह निहं किया । बालब्रह्मचारी ही बने रहे । जब भगवानको तीसवें वर्ष क्षायिक सम्यकत्व प्राप्त हुआ, तब मनमें वैराग्य उत्पन्न हुआ और द्वादश अनुप्रेक्षावोंका चिंतवन करने लगे।

तपःकल्याण ।

महावीरस्वामीको जब वैराग्य उत्पन्न होकर द्वादशभाव-नावोंका चिंतवन होने लगा, तब पांचवे ब्रह्मस्वर्गके लोकांतिक देव आये और भगवानको तीन प्रदक्षणा देकर नमस्कार किया। भगवानके वैराग्य भावनाकी स्तुति करके प्रार्थना की कि-

'' प्रभो ! आपने जो दीक्षा ग्रहण करनेका विचार किया है सो अति प्रशंसनीय है। यह धर्मप्रवृत्तिका कार्य सिवाय आपके और कौन कर सकता है। धन्य है आपकी इस वैशायवृत्तिको''! इत्यादि स्तुति व पूजा करके भगवानका वेराग्य टढ कराकर चले गये । तत्पश्चात् चार प्रकारके देव अपने २ बाहनोंपर चढ्कर कुंडलपुर आये भगवानको अभिषेक कराकर एक नयी अपूर्व रचना कियी हुई पालखीमें विठाकर दीक्षाकेलिये जय जयकार शब्द करते हुये पूर्वदिशाकी ओर नंदन बनमें ले गये। वहां पर चंदनके वृक्ष तलें एक क्षित्रिज्ञिलायाः इंद्राणीन नानाप्रकारके रत्नोंके चूर्ण से साथिया पूर्णकर पुष्पमालादिसे मंडप बना रक्खा था। भगवान पालकीसे उत्तरकर उसी मंडपेमें जा विराजे । उस समय सर्व प्रकार के देव मनुष्य एकत्र हुये थे। अनेक महाशय भगवानकी विभृति वगेरह देखकर कहने छगे कि यदि ऐसी विभृति अपने पास होती. तो अपन तो कदापि दक्षि। नहिं रुते । इसप्रकार परिग्रहपर तीवराग करके कर्मबंध (पापोपार्जन) करने लगे । अनेक सज्जन वैरास्य ही समस्त विभूतियोंका मृठ कारण है. ऐसा समझ कर अनेक प्रकारके व्रत नियम ग्रहण करने लगे । भगवान ऐसे अल्प वयसे ही दिगंबरी दीक्षा प्रहण करते हैं, ऐसा मुनकर घरके सब लोग बड़े दुःखित हुये। माता तो अतिशय उदास होकर रोने लगी कि 🕏 पुत्र. तेरे शरीरपर आजतक अंगनको धृगतक नदीं पड़ी ।

अब दिगंबर होकर कैसे रह सकैगा है बेटे ! तेरा शरीर अति-शय सकुमार है, संयम तलवारकी धार है। तू घर रहता है तो इंद्रादिक देव आकर हमारे घरकी शोभा बढ़ाते हैं। अब वे क्यों आवेंगे । इत्यादि मोहमयी विलाप करने लगी। उसे विलपती देखकर सौधर्म इंद्र समझाने लगा कि—'' माताजी, आपका पुत्र जगतका स्वामी है। इस सिंहको किसका भय हैं। ये चरमोत्तम शरीरी हैं। इनके शरीरको कौन दुष्ट कष्ट दे सकता है। इनोंने इस संसारमें अनंतकाल अमण करके नाना प्रकारके दुःख सहन किये हैं अब ये समस्त दुःखों से मुक्त होकर शाश्वत सुखका अनुभव करेंगे और इस दुःखमय संसार समुद्रसें अनेक जीवोंको तारनेवाले हैं इनकी अपनेको चिंता करना मूल हैं '' इस प्रकार सौधर्मेंद्रने माताको सांतवन किया।

तत्पश्चात् भगवानं चौवीस प्रकारके परिग्रहका त्याग करकें सिद्धोंको नमस्कार किया और पांच मृद्धियोंसे शिर व दाइकि बालोंका छुंचन करके पांच महात्रत और अठाईस मूलगुण धारण किये। इस प्रकार मगसर बदी १० हस्तनक्षत्रमें भगवाननें तीसवें वर्षमें दिगंबरी दिक्षा ग्रहण की। इंद्रने भगवानके केशें उठाकर रत्नमयी पिटारेमें बंद करके समस्त देव और गांजे बाने सहित पांचवें श्लीर समुद्रमें सेपण करनेको ले गये, परंतु मानुषोत्तर पर्वतपर (जोकि २॥ द्वीपकी सीमा है) केश पिटारेमेंसे छनकर नीचें गिर पड़े क्योंकि— मानुषोत्तरपर्वतसे आगें (अढाई द्वीपसे आगें) मनुष्य वा मनुष्यशरीरके अंशका गमन नहीं है। तत्पश्चात् वहीं पर भगवानकी स्तुतिकर सब देव अपने २ स्थानको चले गये।

इधर भगवान योगधारण करके पर्वतके समान निश्चल हो गये। छह मास पर्यंत एकसा ध्यान किया। उसके प्रभावसे भगवानको चौथा 'पनःपर्यज्ञान प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् अमण करते २ एक दिन द्रशपुरनगरमें आये। वहांपर कुल नामका राजा राज्य करता था। उसने भगवानको देखकर यह कोई महान्मा हैं. उत्तमपात्र हैं ऐसा विचारकर उनको नवधाभित्तपूर्वक पड़गाहना करके भोजनार्थ अपने घरमें छे गया और तीन प्रदक्षणा देकर नमस्कार किया। पादप्रक्षालन पूर्वक पूजन करके दुग्ध और चांवल का आहार प्रदान किया जिससे देवताओंने उसके घरपर पंचार्थ्य वृष्टि की। भोजनांतर भगवान पुनः वनमें गये और द्वादश प्रकारके तप करने लगे। उनके प्रभावसे भगवानको अष्ट प्रकारकी ऋदि और अनेक प्रकारकी सिद्धियां प्राप्त हुई।

तत्पश्चात् फिरते २ भगवान एक दिन उज्जयनी नगरीके समीप आकार इमशान भूमिमें पद्मासनसे ध्यान धरकर बैठ १ दूसरेके मनमें तिष्ठते पदार्थाका जान लेना सो मनःपर्यय ज्ञान है।

गये । उस समय सातकीका पुल स्थाण नामका ग्यारहवां कद (अंतिम रुद्र) था, उसने भगवानको देखा । देखते ही उसे पूर्वभव स्मरण हो आये, जन्मांतरमें यह हमारा शत्रु था। ऐसा म्मरण करके भगवान पर नाना प्रकारके उपसर्ग किये। उसने विद्याके प्रभावसे विकाराल स्वरूप बनाया । कभी मोटा भयंकर हो जाता था. कमी रोता. कमी हँसता.कभी गाता था व अपने दाँत बडे २ बढाकर मुहमेंसे अग्निज्वाला बाहर करता हवा भगवानको भय दिखाने लगा । भगवान रंच मात्र भी चलायमान नहीं हुये। तत्पश्चात् उसने भयंकर सिंह सर्पका स्वरूप बनाकर खानेको दौडा तथा मायामयी भयंकर सेना बनाकर हरतग्रहसे भगवानको उपसर्ग किया परंत भगवान जरा भी नहीं डिगे. तब लाचार होकर सब उपद्रव बंदकर दिया और समझ लिया कि ये कोई महात्मा हैं, तब म्तुति-पूर्वक नमस्कार करके चल दिया । इसी प्रकार भगवान्ने भिन्न २ बनोंमें विहार करते २ बारह वर्ष तक अनेक प्रकारके बीर तपश्चरण किये। तत्पश्चात् ४२ वें वर्ष एक दिन मुंभिला ग्रामके निकट बनमें आये । वहांपर एक शालवृक्षके नीचे शिला थी. उसीपर ध्यान धरकर बैठ गये। वहांपर भगवानके तपः प्रभावसे बन समस्त ऋतुओं के फलफूल युक्त होगया। सिंह गाय एक घाट पानी पीने लगे. सब जीवोंने अपना जातीय बैर छोडकर शांतभाव धारण करलिया ।

केवलज्ञानकी प्राप्ति ।

भगवानने उस शिलापर ध्यानके प्रभावसे चार प्रकारके घातियाकर्मीकी ६३ प्रकृतियोंको नाश करके वैशाख सुदि द्रविधा उत्तरा और हस्त नक्षत्रके योगमें केवलक्षान [सर्वज्ञत्व] प्राप्त किया । उस समय नवलब्धिकी प्राप्ति हुई। अनंत चतुष्टय अर्थात् अनंतद्र्शन, अनंतज्ञान, अनंतवीर्य. अनंतमुख उत्पन्न हुये । स्वर्गमें इंद्रने अपने अवधिज्ञानसे जानकर कि भगवानको केवलज्ञान प्राप्त हुआ है. आसनसे उटकर सात पैंड चलकर परोक्ष नमस्कार किया और कुबेरको भगवानके धर्मोपदेश श्रव-णार्थ समवसरण नामका सभामंडप रचनेका हुकुम दिया । तथा समस्त देवों सहित भगवानके समवसरणमें जाकर भगवानके तीन प्रदक्षणापूर्वक दर्शन करके नमम्कार किया तथा एक हजार आठ नामोंका स्तोल रचकर म्तुति की। तत्पश्चात् भगवानकी दिव्य ध्वनिमें धर्मीपदेश पदार्थींका स्वरूप वर्णन होने लगा, परंतु विना गणधरके उस बाणीको धारणपूर्वक कौन विस्तारसे वर्णन कर सके ? तब इंद्रने अवधिज्ञानसे जाना कि इन लोगोंमें तौ कोई गणधर होनेलायक है नहीं, किंतु इंद्रभूति नामका एक ब्राह्मण पंडित जो कि गौतम नामसे प्रसिद्ध है वह जिनधर्मसे विरुद्ध चार वेद, अठारह पुराणादिक समस्त शास्त्रोंका ज्ञाता है। उसको किसी प्रकारसे बहकाकर यहां लाऊं, तो भगवानका दुर्शन करते ही वह जैनधर्म धारण करके भगवानका गणधर

वन जायगा। तब इंद्रने एक किटन श्लोक बनाकर हुद्ध आस-णका स्वरूप धारण किया और जहां गौतम अपने ५०० शिप्योंको पढ़ा रहा था वहांपर गया और बोला कि—" मैं श्रीवद्धमानस्वामीका शिप्य हूं। वे एक श्लोक मुझे बताकर तत्काल ही ध्यानमें बैठ गये, मुझे इस श्लोकका अर्थ तक नहीं बताया, लाचार ! आपका नाम मुनकर आया हूं सो आप इसका अर्थ बताइये"।

गौतमने कहा कि हम तुम्हार श्लोकका अर्थ तो बता देंग, परंतु तुमको हमाग शिप्यत्व धारण करना होगा। इंद्रने कहा कि 'तथास्तु' उस समय गौतमके पांचसी शिप्योंमेंसे सबकी तरफसे एक शिप्य बोल उठा कि हम भी एक श्लोक देंगे उसका अर्थ यदि तुम कर दोगे तो हम पांचसी जने तुम्हारे शिप्य हो जायगे। इंद्रने कहा कि यदि मेरेमें इतनी बुद्धि होती तो मैं इस श्लोकका अर्थ पूछनेको यहां क्यों आता! तत्पश्चात् गौतमने अपने शिप्यको चुप करके इंद्रसे कहा कि वह श्लोक तो सुनावो कि कैसा है। तब इंद्रने नीचे लिखा श्लोकर पढ़कर सुनाया

तैकाल्यं द्रव्यषट्कं सकलगतिगणा सत्पदार्था नवैव विश्वं पंचास्तिकायत्रतसमितिविदः सप्ततत्त्वानि धर्मः ।

१ यह श्लोक इतिहाम लिखनेवालेका है. इंद्रने इसी अभि-प्रायका और कहा था। सिद्धेर्मार्गखरूपं विधिजनितफलं जीवषट्कायलेश्याः

एतान्यः श्रद्दधाति जिनवचनरतो मुक्तिगामी स भव्यः॥१॥

इस श्लोकको सुनकर इंद्रभूति (गौतम) बड़े विचारमें पड़ गये। तीन काल कौनमें, षट्द्रव्य नवपदार्थ कौनमे है ये सब किस ग्रंथमें हैं इत्यादि कुछ भी निर्णय नहीं कर मके । यदि झूठमूठ ही कोई अर्थ बनाकर कहदुंगा तो महावीरस्वामी सर्वज्ञ है उनके सामने मेरी पोल खुल जायगी। इस बाह्मणसे बाद करनेमें भी कोई लाभ नहीं क्योंकि इसके साथ वादमें यदि हार गया तौ बड़ी भारी हंसी होगी-अपमान होगा। इससे तो महावीरम्वामीके पास जाना ही ठीक है, वह पुरु-षोत्तम है। उसके पास जानेमें कोई हानि भी नहीं है उनके पास यदि हारजाऊंगा तो भी कुछ अपमान नहीं होगा। ऐसा विचार करके इंद्रसे बोले कि-''चल, तेरे गुरुके पास ही इसका अर्थ कहूंगा '' इंद्र तौ यह चाहता ही था कि यह किसी प्रकार भगवानके समवसरनमें चले। तत्पश्चात् गौतम अपने पांचसो शिष्यों तथा अपने वायुभृत और अग्निभृति नामके दोनों विद्वान आतासहित महावीरस्वामीके समवसरणमें जानेको तैयार होगया । इसके दोनों आता भी बडे विद्वान और प्रत्येकके पांचपांचसी शिष्य थे। समवशरणके पास जाते ही दरवाजेपर मानस्तंभको देखा. उसके देखते ही उन सब-का मान नष्ट होगया, तब नम्रता धारणपूर्वक समवसरणमें

जाकर समवसरनकी विभृति और भगवानको देखनेसे तौ उनके मिथ्याविचार नष्ट होगये। भक्तिसे गद्गदकंठ होकर भगवानको तीन प्रदक्षणा देकर नमस्कार किया और १००८ नामोंसे स्तुति करके अमनुष्यसभामें जाकर सबके सब बैठ गये। तत्पश्चात भगवानसे इंद्रभृतिने प्रार्थना की कि, महाराज! अब आपके मुखसे धर्मोपदेश होना चाहिये। जीवतत्त्वका लक्षण क्या हैं. उसके गुणपर्याय कोन २ हैं, संसार क्या है. मोक्षका स्वरूप क्या है ये सब कृपा कर किहये।

तत्पश्चात् सर्वज्ञ केवर्लाभगवान् महावीरस्वामीकी दिन्य-ध्विनिमें तत्त्वनिरूपण होने लगे। प्रथम ही सप्तभंगी न्यायका वर्णन हुआ तत्पश्चात् , जीव , अजीव, आस्रव , बंध , संवर , निर्जरा और मोक्ष इन सप्तक्त्व, नवपदार्थ, पंचास्तिकाय

र भगवानके समवशरणमें १२ सभा होती हैं। बीचमें तीन कट्टनीदार बहुत ऊंची एक बेदी होती हैं उसपर एक रलमयी सिंहासन होता हैं. उसपर भगवान अधर विराजमान होते हैं। भगवानका मुख पूर्वदिशाको होता हैं परंतु अतिशयके प्रभावसे चारोंऔर चार मुखवाले दिसते हैं उस बेदीके चारों और १२ सभा होती है। चार सभामें चार प्रकारके देव। चारमें चार प्रकारकी देवांगना। एकमें मुनि, एकमें मनुष्य, एकमें आर्जिका और खियें और एकमें सर्वप्रकारके पशु पक्षी आदि तिर्यंचजीव बैठते हैं।

प्रभृतिका सविस्तर वर्णन हुआ । तत्पश्चात् महावीरस्वामीने गीतमसे कहा कि घोक्षका प्रधानकारण सम्यक्ता है। वह सम्यक्त्व आज्ञा १ मार्ग २ उपदेश ३ मुत्र ४ वीर्य ५ संक्षेप ६ विस्तार ७ अर्थ ८ अवगाढ ९ और परमावगाढ १० ऐसे दशपकारका है इन सबका भिन्न २ वर्णन करके गृहस्थधर्म और मुनिधर्मका वर्णन किया। उसको सुनते ही गौतमादिको वैराग्य उत्पन्न हो गया। तत्काल ही दोनों भ्राता और ५०० शिप्योंसहित दिगंबरी दोक्षा धारण कर जैनसाधू हो गये। गौतमको (इंद्रभृतिको) उसीदिन अवधिज्ञान और मनः पर्य-यज्ञानकी प्राप्ति हुई और भगवानके प्रथम गणधर होकर द्वादशांगवाणीकी रचना की। तत्पश्चात् इंद्रने भगवानको नम-स्कार करके प्रार्थना कियी कि आप अब इस आर्यखंडमें सर्वत्र विहार करके धर्मामृतकी वर्षा करें। तब भगवानने धर्मोपदेश करनेकेलिये विहार किया। कुबेर समवमरणकी रचनाको वहांमे विलय करके भगवानने जहां २ उपदेश किया उसी २ जगह समवसरणसभाकी रचना करता रहा । भगवान जहां २ जाते थे मौ मौ योजनेमें दुर्भिक्ष नष्ट होजाता था, समम्तजीव वैर-भाव रहित होकर शांतिमे कालयापन करते थे।

एक समय विहार करते २ मम्प्रप्रदेशकी (बिहार प्रांतकी) प्रसिद्ध राजगृही नगरी के सिन्धिकट विपुलाचल पर्वतपर भगवान का समवसरण स्थापित हुआ, जिसके प्रभावसे बनमें

समस्त वृक्षलतायें छहों ऋतुओं के फलपुष्प सहित सुंदर हो-गये। बनपालकने समस्त ऋतुओंके अपूर्व २ फलपुष्प संग्रह करके राजगृही नगरीके अधिपति - श्रेणिक महाराजके सन्मुख भेट किये। राजाने बिना ऋतुके फलपुष्प देखकर आश्चर्यसे मालीको पूछा कि-ये बिना ऋतुके फलफूल कहांसे लाया ! मार्जीने हाथ जोड़कर निवेदन किया ।कि-महाभाग ! आपके पुण्य प्रतापमे विपुलाचल पर्वतपर त्रिभुवनपति महा-वीर स्वामीका समवसरण आया है, उसके ही प्रभावमे ममस्त बन फलफूलयुक्त हो गया है। व्याघ्र और गौ एकघाट पानी पीकर प्रेमके माथ परम्पर चाट रहे हैं । सिंह और हाथी एक साथ खेलते हैं। हंस और बिलाव एकत्र होकर नाचते कृदते हैं। सर्प और न्योले परम्पर आलिंगन कर रहे हैं। इत्यादि वृत्तांत सुननेसे श्रेणीक महाराजको बडा आनंद हुआ. मिंहासनसे उठकर पर्वनकी और ७ पैंड चलकर परोक्ष नय-स्कार किया और शहर भरमें आनंद भेरी दिलाकर भगवानके दर्शनपूजनार्थ सबको अपना साथी बनाया । हाथीपर चढ़कर बड़े गाजेबाजे सहित पर्वतपर गया । मानस्तंभको देखते ही हाथीसे उतर छत्रचमरादि राजचिह्न छोडकर पैदल ही सम-वसरनकी ओर बढ़ गया । समवसरनमें जाकर तीन प्रदक्षणा-पूर्वक भगवानको नमस्कार किया और स्तुतिकरके मनुष्यसभामें जा बैठा । भगवानकी दिव्यध्वानिमें धर्मोपदेश सुननेके पश्चात् श्रीणिकने गौतम गणधरको प्रश्नाकिया कि भगवन्, में पूर्वमें कौन् गितमें गया, अब कौनसे पुष्यसे राजा हुआ और आपके शासनमें आया; आगेको मेरा क्या हाल होगा इत्यादि सब कहिये। भगवान् गणधरने श्रेणिकराजाके पूर्वजन्मके समस्त वृत्तांत वर्णन करके इस जन्मका तथा भविष्यतमें तुम प्रथम नरकमें ८४००० वर्षपर्यत दुःखभोगकर अगली चौबीसीमें प्रश्नाभिनामके प्रथम तीर्थकर होवोगे। ये सब वृत्तांत सुनकर श्रेणिकको बड़ा आनंद हुआ तथा उसके भवांतर सुननेसे अन्य हजारों मनुष्योंको सम्यक्तकी प्राप्ति हुई और वैराग्य होनेसे जैनेंद्री दीक्षामें दीक्षित हुये। अने क गृहस्थोंने गृहम्थके १२ व्रतग्रहण किये। इसप्रकार ३० वर्षतक धर्मांपदेश करते रहे।

महावीरस्वामीके समवसरणमें इंद्रभृति, वायुभृति, अभिभृति आदि ११ गणधर थे। इसके सिवाय ९९०० मुनि, ३०० अंगपूर्वधारी, १३०० अवधिज्ञानी, ९०० ऋद्धिविकियायुक्त, ५०० चारज्ञानके धारी, ७०० कालज्ञानी, ९०० अनुत्तरवादी सब मिलकर १४००० मुनि और ३६००० अर्जिकायें थीं। ये सब भगवान् के साथही बिहार करते थे। इनके सिवाय एकलाख आवक, तीन छाख आविकायें और असंस्य देवदेवांगाना आदि धर्मोपदेश श्रवण किया करते थे। जिससे भारतवर्षमें सब जगह प्रायः जैनधर्मका ही प्रचार होगया थातथापि जहां तहां बौद्धादि अनेक मतावलंबी अपने२ विषयरागपोषक

हिंसारूप धर्मका उपदेश भी करते रहते थे। महावीरस्वामीकी देवोपनीत समवसरणादि विभृतिको देखकर वे सब सर्वसाधार-**णको** उपदेश करते थे कि-' यह कोई इंद्रजालिया देव या जादगर है। ये समवसरणादि सब इंद्रजाल वा जाद्के खेल हैं। तमलोग उसके पास कभी नहीं जाना। अगर जावोगे तो तुम उसके जादमें फंस जावोगे। तुम्हे जैनी नास्तिक बना लेवेंगे।" इत्यादि नानाप्रकारकी कल्पना कर अपने २ मतकी पोषणा करते रहे । सो ठीक ही है. संसारमें सब जीव प्रायः विषय भोगोंको ही चाहते हैं । बिना किसीकी शिक्षा के ही सब जीवोंकी प्रवृति विषय भोगलालसामें दौड़ती है। मद्यमांसादिक अभक्ष्य पदार्थोंको निरंतर भोजनपान करके विषयलालसाको बहाते रहते हैं। उसपर भी बौद्धादि मतावलंबियोने विषयभागलालसाको चरितार्थ करते तथा मद्य-मांसादि अभक्ष्यपदार्थीका नित्यभागलगातेहुये भी मुक्तिका साधन करसकते हैं इत्यादि सुगममार्ग बता दिया, फिर विषय रूंपटी जीवोंकी प्रवृत्ति बौद्धादि हिंसामयधर्मीमें क्यों न हो द जैनधर्ममें समस्त व्रत नियम क्रियाकांडादि सांसारिकभागोंसे विरक्त करानेवाले हैं, सो ऐसे कष्टसाध्य मतको सिवाय आत्म-कल्याणबांछक विवेकियोंके अन्य किसीने भी धारण नहीं किया । वर्तमानसमयमें दयानंदी, ब्रह्मसमाजी आदि तौ और भी सुगममार्ग निकालकर सानातनी अहिंसाधर्मसे विग्रख

कर रहे हैं। सो यह विषय प्रशृति इस कालमें दुर्निवार है। जिसका भवितव्य अच्छा है वही वीर पुरुष इस महावीर-स्वामीके पवित्र अहिंसामय सनातन जैन धर्मको धारण कर सकता है। जो लोग अहोरात्र विषयतृष्णाकी तृप्ति करनेमें हो लगे रहते हैं, मत्स्यमांसमदिरा ही जिनका भोजनपान है दें व इस धर्मको धारण करना तो दूर रहा, स्पर्श मी नहीं इर सकते।

भगवानका मोक्षगपन ।

भगवान् उपर्युक्त प्रकारसे उपदेश करते २ बहत्तरवें वर्ष जब कि मोक्षहोनेमें एक मास बाकी रह गया था बिहारप्रांतके रेपावापुर नामक स्थानपर पधारे । पावापुरके बनेमें एक सरावर था उसके बीचमें एक ऊंचा टीला था । उसपर एक जगह बैटकर शुक्कःयानका प्रारंभ किया जिसके योगसे शेष रही ८५ कर्म प्रकृतियोंका सर्वथा नाश करके कार्तिक कृष्ण १४ की रातिके शेष और अमावस्थाके प्रभात ही स्वाति-

१ इस समय यह स्थान बिहार स्टेशनसे ७ मील हैं।
एक बड़े भारी तलाबके बीचमें जहां ।कि टीला था उसपर
महावीरस्वामीका सुंदर मंदिर है, वहींपर निर्वाणभामिके चिन्ह
स्वरूप महाबीरस्वामीकी चरणपादुका हैं। प्रति वर्ष हजारों
जैनी यात्राके लिये जाते हैं और दिवालीके दिन निर्वाणोत्सव
यात्राकामेला भी बड़ी धूमधामके साथ होता है।

नक्षत्रमें भगवान् नश्वरमनुष्यशरीरको छोड़कर ७२ वें वर्षमें निर्वाणको (लोकशिखरपर जहां सब मुक्तजीव विराजते हैं) प्राप्त हो गये । भगवानका शरीर नख केशको छोडकर सब कपूर की तरह उड गया। इंद्रने समस्त देवों सहित आकर भगवानका एक मायामयी शरीर रचा और उसमें नख केश लगाकर चंदनादि दिव्य पदार्थोमें रख कर अग्नि कुमारके नमस्कार करते समय उनके मुकुटसे उप्तज्ञ हुई अग्रिसे भगवानके शरीरका संस्कार किया। इस प्रकार निर्वाणोत्सव करके सब देव अपने २ स्थान चल गये। जिस समय भगवानको निर्वाण प्राप्ति हुई थी, ठीक उसी समय गौतम-गणधर महाराजको केवलज्ञानकी प्राप्ति हुई थी. उस समय अमावस्याकी कुछ अंधेरी रात्रि बाकी थी सो देवोंने तो रत-मय दीपक जलाये थे और मनुष्योंने घृत कपूर तैलादिके दीपक जलाकर अपने २ घरमें केवलज्ञान और मोक्षलक्ष्मीका पूजन किया था, उसी दिनसे प्रति वर्ष महावीर निर्वाण-स्मतिके छिपे यह दीवाछीपर्व सर्वत मनाया जाने लगा। इस दिन मुक्तिरूपी लक्ष्मीका अर्थात् महावीरम्वामीका तथा निर्वाणभूमियोंकी ही पूजा होती रही। परंतु कुछकालके पश्चात अनेक विद्वानोंको यह सर्वव्यापी महावीरनिर्वाणस्मृतिका दीवाली त्योंदार मनाना खटकने लगा सो वेदादि ग्रंथोंमें इसका अन्यथा वि-धान करके लोगोंको एक लक्ष्मीदेवीकी कल्पना बताकर उसकी

पूजामें लगा दिया। परंतु सब जगहसे यह प्रवृत्ति नहीं उठी है। दक्षणपांत गुजरातपांतमें तो पंचांगोंमें भी इसी दीपावलीसे नया वर्ष प्रारंभ किया जाता है। पंचांगोंमें पिहले वीरिनर्वाणसंवत् लिखा जाता था, परंतु अब उसको छोड़कर विक्रमसंवत् लिखने लगे तथापि नवीनसंवत् कार्तिकसुदी १ से ही प्रारंभ करते हैं। नयी बहियां इसी दिनसे ही प्रारंभ करके नये वर्षका कारबार चलाते हैं। इसलिये सबको चाहिये कि इस दीवालीका सचा इतिहास इसीप्रकार निश्चय करके नयी बहियांमें वीरोनिर्वाण संवत खासर लिखना आरंभ करे और इस पविल दिनमें दान धर्मादि उत्तम कार्य ही करे. जूआ खेलने आदिसे इस पिवत्र त्योंहारको दिवालीया त्योंहार न बनावें। अब हम जूएका एक छप्पय लिखकर इस चित्रको पूर्ण करते हैं।

छप्य ।

सकलपापसंकेत, आपदाहेत कुलच्छन ।
कपटखेत दारिद्रदेत, दीसत निजअच्छन ॥
गुनसमेत जससेत, केत रिव रोकत जैसे ।
औगुन-निकर-निकेत, लेत लख बुधजन ऐसे ॥
जूआ समान इह लोकमें, आज अनीत न पेखिये।
इस विसनरायके खेलको, कौतुक हू नहिं देखिये ॥१॥

णिव्वुइकंडं ।

(निर्वाणकाण्ड गाथा ।)

अट्टावयम्मि उसहो चंपाए वासुपञ्जजिणणाहो 🛚 उज्जंते णेमिजिणो पावाए णिन्बुदो महावीरो ॥१॥ वीसं तु जिणवरिंदा अमरासुरव्दिदा घुद्किलेसा । सम्भेदे गिरिसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥२॥ वरदत्तो य वरंगो सायरदत्तो य तारवरणयरे। आहुट्टयकोडीओ णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥४॥ णेमिसामि पज्जण्णो संबुकुमारो तहेव अणिरुद्धो । बाहत्तरिकोडीओ उज्जते सत्तसया ।सिद्धा ॥४॥ रामसुवा वेण्णि जणा लाडणरिंदाण पंचकोडीओ । पावागिरिवरसिंहरे णिव्वाणगया णमो तोसं ॥५॥ पंडसुआ तिण्णिजणा दविडणरिंदाण अहकोडीओ। सेत्तंजयगिरिसिहरे णिंव्वाणगया णमो ते।सं ॥६॥ संते जे बलभद्दा जदुबणिरंदाण अट्टकोडीओ। गजपंथे गिरिसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥७॥ रामहणू सुग्गीओ गवयगवाक्को य णीलमहणीलोश णवणवदीकोडीओ तुंगीरिणिव्वदे षंदे ॥८॥ णंगाणंगक्रमारा कोडीपंचद्धमाणवरा सहिया । सुवणागिरिवरसिंहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥९॥ दहमुहरायस्स सुवा कोडीपंचद्रमुणिवरा सहिया। रेवाउहयतडग्गे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१०॥ रेवाणइए तीरे पच्छिमभायम्मि सिद्धवरकूडे । दो चकी दह कप्पे आहु हुयकोडिणिव्वदे वंदे॥११॥ वडवाणीवरणयरे दक्खिणभायिम चूलगिरिसिहरे। इंदजीदकुंभयणो णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१२॥ पावागिरिवरसिहरे सुवण्णभद्दाइसुणिवरा चउरो । चलणाणईतडग्गे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१३॥ फलहोडीवरगामे पश्चिमभायम्मि दोणगिरिसिहरे । गुरुदत्ताइमुणिंदा णिव्वाणगया णमो तेसि ॥१४॥ णायकुमारमुणिदो वालि महावालि चेव अञ्झेया । अष्ट्रावयगिरिसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१५॥ अञ्चलपुरवरणयरे ईसाणे भाए मेढगिरिसिहरे। आहुट्टयकोडीओ णिव्वाणगया णमो तेसि ॥१६॥ वंसत्थलवरणियरे पच्छिमभायम्मि कुंथुगिरिसिहरे । कुलदेसभूसणमुणी णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१०॥ जसरहरायरस सुआ पंचसयाई करिंगदेसिम । कोडिसिलाकोडिमुणी णिव्वाणगया णमो तेसि ॥१८॥ पासरस समवसरणे सहिया वरदत्तमुणिवरा पंच। रिश्सिंदे गिरिसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसि ॥१९॥

अथ अइसयखेत्तकंडं।

[अतिशयक्षेत्रकाण्डम्]

पासं तह अहिणंदण णायद्दाहि मंगलाउरे वंदे। अस्सारमे पट्टणि मुणिसुव्वओ तहेव वंदामि ॥१॥ बाह्रबालि तह वंदमि पोयणपुरस्तिथणापुरं वंदे। संती कुंथुव अरिहो वाणारसिए सुपासपासं च ॥२॥ महुराए अहिछित्ते वीरं पासं तहेव वंदामि। जंबुमुणिंदो वंदे णिब्बुइपत्तोबि जंबुवणगहणे ॥३॥ पंचकलाणठाणइं जाणवि संजादमञ्चलोयिन्म। मणवयणकायसुद्धी सब्वे सिरसा णमंस्सामि ॥४॥ अगगलदेवं वंदमि वरणयरे णिवडकुंडली वंदे। पासं सिवपुरि वंदमि होलागिरिसंखदेविमा ॥५॥ गोमटदेवं वंदमि पंचसयं धणुहदेहउइात्तं। देवा कुणंति वुद्दी केसरिकुसुमाण तरस उबरिम्मि ॥६॥ णिव्वाणठाण जाणिवि अइसयठाणाणि अइसए सहिया। संजादिमचलोए सब्वे सिरसा णमंरसामि॥७॥ जो जण पढइ तियालं | णिव्दुइकंडंपि भावसुद्धीए । अंजिदि णरसरसक्खं पच्छा सो लहड णिव्वाणं ॥८॥

इति अइसइखित्तकंडं।

निर्वाणकांड भाषाः। अथ कविवर भैया भगवतीदासजीसचित निर्वाणकांड भाषाः।

दोहा ।

वीतराग वंदौं सदा, भावसहित सिरनाय। कहूं कांड निर्वाणकी, भाषा सुगम बनाय॥१॥ चौपाई १५ माला।

अष्टापदआदीसुरस्वामि । वासुपूज्य चंपापुरि नामि । नेमिनाथस्वामी गिरनार । वंदौं भावभगति उरधार ॥२॥ चरम
तीर्थंकर चरमशरीर । पावापुरि स्वामी महावीर ॥ शिखरसमेद
जिनसुर वीस । भावसिहत वंदौं जगदीस ॥३॥ वरदतराय रु
इंद मुनिंद । सायरदत्त आदि गुणवृंद ॥ नगरतारवर मुनि
१उटकोड़ि । वंदौ भावसिहत कर जोड़ी ॥४॥ श्रीगिरनारशिखर विख्यात ॥ कोड़ि बहत्तर अरु सौ सात ॥ संबु प्रदुम्न
कुमर द्वै भाय । अनिरुधआदि नमूं तसु पाय ॥५॥ रामचंद्रके सुत
द्वै वीर । लाडनार्रंद आदि गुणधीर ॥ पांच कोड़ि मुनि
मुक्तिमझार । पावागिरि वंदौं निरधार ॥६॥ पांडव तीन
द्राविड राजान । आठकोड़ि मुनि मुकति पयान मुन्निस्वंजयंगिरिके सीस । भावसिहत वंदौं निश दीस सिन्धा जे बहिनेद्र

मुकतिमैं गये । आठकोडि मुनि औरिह भये ॥ श्रीगजपंथशिखर सुविशाल। तीनके चरण नमूं तिहुं काल ॥८॥ राम हन् सुग्रीव सुडील । गवगवाच्य नील महानील ॥ कोडि नि-न्याणवैं मुक्तिपयान । तुंगीगिरि वंदौं धरि ध्यान ॥९॥ नंग अनंग कुमार सुजान । पंचकोडि अरु अर्धप्रमान ॥ मुक्ति गये सिहुनागिरसीस ते वंदौं त्रिभुवनपति ईस॥१०॥रावणके सुत आदि कुमार । मुक्त गये रेवातट सार॥ कोडि पंच अरु लाख पचास। ते वंदौं धरि परम हुलास ॥११॥ रेवानदी सिद्धवरकूट। पश्चि-मदिशा देह जहँ छूट ॥ द्वै चकी दश कामकुमार । ऊठकोड़ि वंदों भवपार ॥१२॥ बडवाणी वडनयर सुचंग । दक्षिण दिश गिरिचूल उतंग ॥ इंद्रजीत अरु कुंभ जु कर्ण । ते वंदौं भव-सायरतर्ण ॥१३॥ सुवरणभद्रआदि मुनिचार । पावागिरिवर शिखरमझार ॥ चलना नदी तीरके पास । मुक्ति गये वंदौं नित तास ॥१४॥ फलहोड़ी बडगाम अनूप । पश्चिमदिशा द्रोणगिरिरूप॥ गुरुदत्तादि मुनीसुर जहाँ। मुक्ति गये बंदौं नित तहाँ ॥१५॥ बाल महाबाल मुनि दोय । नागकुमार मिले त्रय होय ॥ श्रीअष्टापद मुक्तिमझार।ते वंदौं नित सुरतसँभार॥१६॥ अचलापुरकी दिश ईशान । तहां मेढ्गिरि नाम प्रधान ॥ सादेतीन कोड़ि मुनिराय । तिनके चरन नमू चित लाय॥१७॥ , वंशस्थल वनके ढिग होय । पश्चिमदिशा कुंथुगिरि सोय ॥ कु-लभूषण देशभृषण नाम । तिनके चरणनि करूं प्रणाम ॥१८॥] जसरथराजाके सुत कहे । देशकिंग पांचसी हो ॥ कोटि शिला मुनि कोटिप्रमान । वंदन करूं जोर जुगपान ॥ १९ ॥ समवसरण श्रीपार्श्वजिनंद । रेसंदीिगार नयनानंद ॥ वरदत्तादि पंच ऋषिराज । ते वंदौं नित घरमजिहाज ॥२०॥ तीन लोकके तीरथ जहाँ । नितपति वंदन कीजे तहाँ ॥ मन वच कायसहित सिरनाय । वंदन करिं भाविक गुणगाय ॥२१॥ संवत सतरहसी इकताल अश्विनसुदि दशमी सुविशाल ॥ 'भैयस' वंदन करिं तिकाल । जय निर्वाणकांड गुणमाल ॥२२॥

इति निर्वाणकांड भाषा।

अथ काशीनिवासी बाबू दंदावनजीकृत वर्द्धमान (महावीर) जिनपूजा ।

स्थापना । मत्तगयंद ।

श्रीमत बीर हरें भवपीर, भरें सुलसीर अनाकुलताई । केहरि अंक अरीकरदंक, नये हरिपंकतमीलि सुहाई ॥ में तुमकों इत थापतु हों प्रभु, भक्तिसमेत हिये हरखाई। हे करणाधनधारक देव, इहां अब तिष्ठहु शीष्रहि आई॥ ॐ हीं श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्र अत्र अवतर अवतर। संवीषट् अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः। अत्र मम सान्निहितो भव भव। वषट्॥

अथ एक । छंद अष्टपदी ।

क्षीरोदधिसम ग्रुचि नीर, कंचनभूंग भरों । प्रभु वेग हरी भवपीर, यातें धार करों ॥ श्रीवीर महा अतिवीर, सनमति-नायक हो । जय वर्द्धमान गुणधीर सनमतिदायक हो ।

ॐ हीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वेपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

मलयागिरचंदन सार, केसरसंग घसों । प्रभु भव आताप निवार, पूजत हिय हुलसौं ॥ श्रीवरि०॥ जयवर्द्धमान०॥ ॐ हीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय भवतापाविनाशनाय चन्दनं नि०॥

तंदुलसित शशिसम शुद्ध, लीने थारभरी । तसु पुंज धरौं अविरुद्ध, पाऊं शिवनगरी ॥ श्रीवीर० जयवर्द्धमान०॥३॥ ॐ हीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अक्ष यपदमाप्तये अक्षतान् नि०॥३॥

सुरतरुके सुमनसमेत, सुमन सुमनप्यारे । सो मनमथ-भंजन हेत, पूजूं पद थारे ॥ श्रीवीर०॥ जयवर्द्धमान०॥ ॐ हीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय का मबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि०॥॥

रसरज्जत सज्जत सद्य, म ज्जत थार भरी । ५द जज्जत रज्जत अद्य, भज्जत भूख अरी ॥ श्राविरि ॥ जयदर्कमान ॥ अधि श्रीमहावीरजिनेन्द्राय क्षुधारोगिवनाशनाय नैवेद्यं नि ॥५॥

तमखंडित मंडितनेह, दीपक जोवत हूं। तुम पदतर हे सुखगेह, अमतम खोवत हूं॥ श्रीवीर०॥ जयवर्द्धमान०॥ 🕉 ह्वां श्रीमहावीरजिनेन्द्राय मोहान्धकाराविनाशनाय दीपं नि ।।।६।।

हरिचंदन अगर कपूर, चूरि सुगन्ध करे। तुम पदतर खेवत भूरि, आठौं कर्म जरे॥ श्रीवीर०॥ जयबर्द्धमान०॥ ॐ हीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं नि०॥७॥

रितुफल कलवर्जित लाय, कंचनथार भरौं । शिव फलाहित हे जिनराय, तुमढिंग भेट धरौं ॥ श्रीवीर० ॥ जयवर्द्धमान०॥ ॐ हीं श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं नि०॥ ८॥

जलफल वसु सिज हिमथार, तनमन मोद धरौं। गुणगाऊं भवद्धितार, पूजत पाप हरौं ॥श्रीवीर०॥ जयवर्द्धमान०॥९॥ ॐ हीं श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्राय अनुध्यपद्रप्राप्तये अध्य नि०॥९॥

पंचकल्याणक--राग टप्पा

मोहि राखों हो सरना, श्रीवर्द्धमान जिनरायजी, मोहि राखों हो सरना ॥ टेक ॥ गरभ साइसित छट्ट लियों ।श्रेति, त्रिशला उर अघहरना । सुर सुरपति तित सेव करत नित, मैं पूजूं भवतरना ॥ मोहि राखों ० ॥१॥

ॐ ही आषादशुक्कषष्ठिदिने गर्भमङ्गलमण्डिताय श्रीमहावीर जिनेन्द्राय अर्घ्यं निवेपामीति स्वाहा ॥१॥

जनम चैत सित तेरसके दिन, कुंडलपुर कनवरना। सु-रगिर सुरगुरु पूज रचायो, मै पूजूं भवहरना ॥ मोहि राखौ०॥ ॐ हीं चैत्रशुक्कलयोदशीदिने जन्ममङ्गलपाप्ताय श्रीमहावीर

जिनेन्द्राय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा ॥२॥

मंगिशर असित मनोहर दशमी, ता दिन तप आचरना। नृप कुमारघर पारन कीना, मैं पूजूं तुम चरना । मोहि राखौ हो॰ ॥३॥

ॐ हीं मार्गशिषकृष्णदशम्यां तपोमङ्गलमंडिताय श्रीमहा-वीरजिनेन्द्राय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा ॥३॥

शुकलदशैं वैशाखदिवस अरि, घात चतुक छय करना। केवल लहि भवि भवसर तारे, जजूं चरन सुख भरना॥ मोहि राखौ०॥४॥

ॐ हीं वैशाखगुक्कदशम्यां ज्ञानकल्याणप्राप्ताय श्रीमहा-वीरजिनेन्द्राय अर्घ निर्वपामीनि म्वाहा ॥४॥

कातिक स्थाम अमावस शिवतियः पावापुरते वरना । गनफनिवृंद जजै तित बहु विधि, मैं पृजूं भयहरना ॥ मोहि रास्त्री० ॥५॥

ॐ हीं कार्तिककृष्णामावास्यायां मोक्षमङ्गलमंडिताय श्री-महावीरजिनेन्द्राय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा ॥५॥

अथ जयमाला ।

छंद हरिगीता (२८ माता)।

गनधर असनिधर चक्रधर, हरधर गदाधर वरवदा । अरु चापधर विद्यासुधर, तिरसूलधर सेवहिं सदा ॥ दुखहरन आनँदभरन तारन, तरन चरन रसाल हैं। सुकुमाल गुन मणिमाल उन्नत, भालकी जयमालहैं॥१॥

महावीर जिनपूजा

छंद घत्तानंद (३१ माला)

जय त्रिशलानंदन हारिकृतवंदन, जगदानंदनचंद वरं।
भवतापनिकंदन तनमनवंदन, राहितसपंदन नयन धरं॥२॥
छंद तोटक।

जय केवलभानुकलासद्नं । भाविकोकाविकाशन कंजवनं ॥ जगजीत महारिप मोहहरं । रजज्ञानदृगांबरच्रकरं ॥ १ ॥ गर्भादिक मंगल मंडित हो । दुख दारिदको नित खांडित हो । जगमाहि तुमी सत पंडित हो। तुम ही भवभावाविहांडित हो॥२॥ हिन्वंशसरोजनकों रिव हो। बलवंत महंत तुमी कवि हो। लहि केवल धर्मप्रकाश कियो। अबलीं सोई मारग राजाति यो॥३॥ पुनि आपतने गुणमाहिं सही । युर मझ रहें जितने सब ही । तिनकी वनिता गुण गावत हैं। त्य तानिनसों मनभावत हैं॥शा पुनि नाचत रंग अनेक भरी। तुव भक्तिविषे पग एम धरी। झननं झननं झननं झननं । यर लेत तहाँ तननं तननं ॥५॥ घननं घननं घनघंट बजें। हमदं हमदं मिरदंग सजैं। गगनांगणगर्भगता सुगता । ततता ततता अतता वितता ॥६॥ धुगतां धृगतां गति बाजत है। सुरताल रसाल जु छाजत है। सननं सननं सननं नभमें । इकरूप अनेक जु धार भमें ॥७॥ कड़ नारि सु वीन बजावतु हैं। तुमरी जस उज्जल गावतु हैं। करतालविषें करताल धेरैं। सुरताल विशाल जुनाद करें।।८॥ इन आदि कनक उछाहभरी । सुरमक्ति करें प्रभुजी तुमरी ।

तुमही जगजीवनकेपितु हो । तुमही विनकारनके हितु हो ॥९॥ तुमही सब विन्न विनाशन हो । तुमही निज आनंदभासन हो । तुमही चितचिंतितदायक हो । जगमाहिं तुमी सब लायक हो १० तुमरे पनमंगलमाहिं सही । जिय उत्तम पुण्य लियों सब ही । हमको तुमरी सरनागत है । तुमरे गुनमैं मन पागत है ॥११॥ प्रभु मो हिय आप सदा वसिये । जबलों वसुकर्म नहीं निसये। तबलों तुम ध्यान हिये वरतो । तबलों श्रुतचिंतन चित्त रतो तबलों त्रत चारित चाहत हों । तबलों गुम भाव सुगाहत हों। तबलों सतसंगित नित्य रहो। तबलों मम संजम चित्त गहों १३ जबलों निहं नाश करों अरिको । शिवनारि वरों समताधरिको । यह यो तबलों हमको जिनजी । हम जाचत हैं इतनी सुनजी

छंद घत्तानंद ।

श्रीवीर जिनेशा निमतसुरेशा, नागनरेशा भगतिभरा । 'वृंदावन' ध्यावे विघ्न नशावे, वांछित पावे शर्मवरा ॥ १५ ॥ ॐ हीं श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्राय पूर्णीर्ध्यं निर्वपामीति स्वाहा॥

दोहा ।

श्रीसनमतिके जुगलपद, जो पूजिहें धर प्रीत । वृंदावन सो चतुरनर, लहें मुक्त नवनीत ॥ १६॥

इत्याशीर्वादः ।

इति महावीरजिनपूजा समाप्ता ।

"दिगंबर जैन"

हरवर्ष गंजावर साचित्र खास अंक, जैन पंचांग और ८-१० उपहारकी पुस्तकें देनेवाला यदि कीसी भी पत्र जैनोंने हो तो वह मात्र सुरतसें हिंदी और गुजराती दोनों सम्मीलीत भाषाओंमें प्रकट होता हुआ नियमीत मासिक पत्र "दिगंबर जैन" ही है, जिसका उपहारोंके पोस्टेज सह वार्षिक मुल्य मात्र रु. १--१२--० ही है. पत्र भेजनेसे नमुना मुफ्त भेजा जाता है.

मेनेजर, "दिगंबर जैन," चंदाबाडी-सुरत.

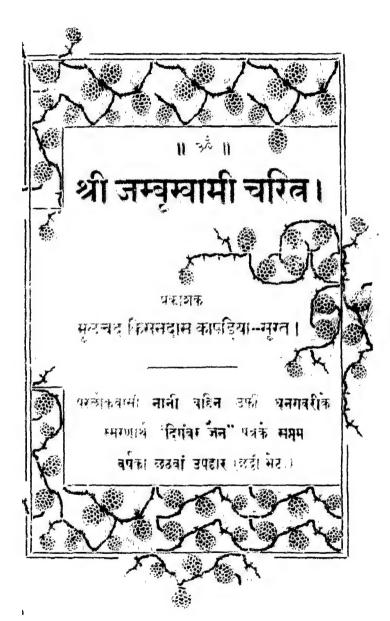
दिगंबर जैन पुस्तकांखय-सुरत.

इस पुस्तकालयमें सब जगहके सब प्रकारके हिंदी और गुजराती भाषाके ग्रंथों हर समय विकाके लिये तयार रहते हैं. और मंदिरोमें वर्तने योग्य 'पवित्र काश्मीरी केशर' १) तोलाके हिसाबसे मिल सकता है, पुस्तकोंका सूचीपत्र मुफ्त भेजा जाता है.

मेनेजर, दिगंबर जैन पुस्तकालय-सुरत.

काशवा योग्य वर्तभान.

- —આખા હિંદુસ્થાનનું ક્ષેત્રફળ ૧૭૦૩૧૬૮ ચારસ માઈલનું છે, જંમા મહાસ પહું ને નંબરે (૧૪૨૪૧૩ ચા. માઈલ), મુબાઈ બીજે ; નબરે ૧૨૭૨૬૨) અને બંગાલ ત્રીજે નંબરે (૧૧૫૮૧૬) આવે છે.
- —હિંદુસ્થાનમાં ૧૧ લાખ માણસાનેજ અંગ્રેઝ લખતાં વાંચતાં આવડે છે
- —હિંદુસ્થાનતુ ઉત્પન્ન રૂ. **૧૨૨ કરા**ડનું છે, જે મગ્લાહના ઉ-ત્યન્ન કરતાં ત્રોજન ભાગ જેવક છે.
- --યુરાપમા દર માણુસતી વાર્ષિક ઉપજ શ્રે. ૪૦૦) જેટલી છે ઈવ્લાડમા રા ૧૦૦)થાહ૦૦) અને હિંદુસ્થાનમાં માત્ર રા. ٠૦) તા વગભગ છે '
- –હિંદુસ્થાનના આયાત વેપાર ર ૧૯૮. કરાડના છ જ્યારે નિકાશ વેપાર રા**ંક**જ૮) કરોડના છે
- ---ાહંદુસ્થાનમાં ભણેલા માણસાનું અમાળ જન ૧૬ કે જ્યારે આંગોનું પ્રમાણ કર હત્તરે ૧૧૪ છે
 - --હિ દૂસ્થાનમા ભણેલા માખુસ માત્ર દોઢ કરોડ છે
 - —ि हिं हुस्थानमा ७४० वर्तमानपत्रे। छे
- -હિંદી પ્રજાના પાસ્ટલ સંવીગ એ'કમાં રા ૧૭ કરાેડ રાેકાયલા છે, જ્યારે ઈંગ્લાંડની પાસ્ટલ સેવીગ એ'કમાં રા. ૨૨૫ કરાેડ છે.
 - હિંદુસ્થાનમાં જૈલ્વે ૩૩૦૦૦ માઇલ લંબાયલી છે દુનિયામાં સર્વે સમુદ્રામાં એટલાન્ટીક સમુદ્ર સર્વથી વધુ ખારા છે.
- —િવગંગર જૈના તરકથી હાલમાં માસિક, પાક્ષિક, અઠવાડીડ વગેરે ૧૭ પત્રા પ્રકટ થાય છે, જેના ભાષા ગુજરાતી, હિંદી, અંગ્રેજ, • મરાડી, કાનડી, કર્ણાટકા અને ઉર્દૃ એમ સાત જાતની છે.



दिगंबर जैन यंथमाला (सृरत) ॥

नं. १. कळियुगनी कुळदेवी (गुजराती प्रति २०००) ०)०॥।
,, २. श्रुतपंचमी महात्म्य (श्रुत पूजा साहित १०००) ०)=
,, ३. धर्म परीक्षा (अमितगति आचार्यकृत. गुजराती भाषा
बालबोध लिपि. पृष्ठ २५०. प्रति ११००) १)
,, ४. सुद्र्यन शेठ (गुजराती भाषा. प्रति १०००). ा
,, ५. सुकुमाल चरित्र (गुजरार्टी भाषा, बालबोध लीपि.
मत १०००)
., ६. पंचेंद्रीय संवाद (गुजराती भाषा प्रत १०००) ०) ।।
., ७. तमाकुनां दुष्परीणामे। (गुजराती पत १०००) ०)
,, ८. सामायिक पाठ (संस्कृत–भाषा, विधि, अर्थ, आलोचना
पाठ सह. प्रत १५००)
,, ९. श्रीलन्द्रशे रास (गुजराती भाषा प्रत १३००) ः)=
., १०. सामायिक भाषा पाठ (सार्थ. प्रति ११००) ०)-
,, ११. कलियुगकी कुलदेवी (हिंदी १००००) सद्वर्तन्.
,, १२. मट्टारक मीमांसा (गुजराती भाषा प्रति १२००) ०)=
१३. प्राचीन दिगंबर-अर्वाचीन श्वतांवर (गुजराती भाषा
प्रति ११००)
,, १४. श्रीपंच ऋत्याणक पाट (रुपचंदजी कृत. गुजराती अर्थ सहित, प्रति २०००)
सहित, प्रति २०००) ०)= ,, १५. मनोरमा (शील महात्म्य. गुजराती १२००) ०।=
,, १५. श्री हनुमान चरित्र (हिंदी भाषा. प्रति २०००) ०।=

प्रा वीतरागाय नमः ॥

श्री जम्बूस्वामी चरित्र।

हिंदी भाषानुवादक-

मास्टर दीपचंदजी उपदेशक (नरसिंहपुर.)

प्रकाशक —

मूलचंद किसनदास कापड़िया,

ऑ॰ संपादक, "दिगंबर जैन"-सूरत।

प्रथमात्रसि ।

वीर सं. २४४०

प्रति २०००

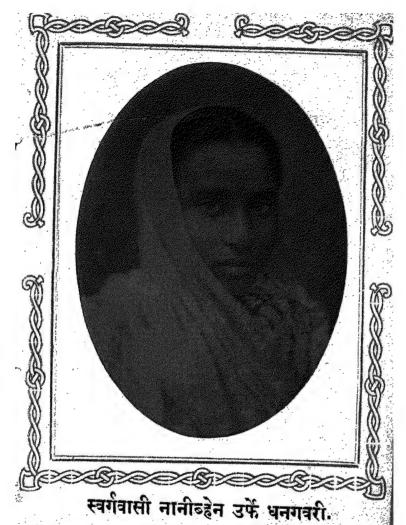
परलोकवासी नानी बहिन उर्फी धनगवरी (सूरत निवासी शा. किसनदास पूनमचंद कॉपड़ियाकी पुत्री और भाव-नगर निवासी शा. हीरालाल वालचंद वागड़ियाकी सौ. पित्र) के स्मरणार्थ " दिगंबर जैन " पत्रके म्राहकोंको सप्तम वर्षमें छठवां उपहार (भेट)।

मूल्य रु. ०-४-०.

प्रस्तावना ।

प्राचीन संस्कृत प्रंथके आधारसे श्री जिनदास कविने श्री जम्बूस्वामी चरित्र छंदबद्ध लिखा या और सन् १९०२ में मुन्त्री नाथुराम लमेचू (कटनी मुड्वारा) ने प्रकट किया था, परंतु उसका सम्बन्ध ठीक नहीं मिलता और साधारण मनुष्य व हिन्दी जाननेवालोंके सिवाय अन्य कोई भी समझ नहीं सक्ते थे, इस लिये उसकी अति सरल भाषा हमारे परम मिल मास्टर दीपचंदजी उपदेशक (नरासिंहपुर सी. पी.) द्वारा तैयार कराके यह पुस्तक हमारी भगिनी नानी बहिन उर्फी धनगवशे जो इसी वर्षमें मात्र १९ वर्षकी अल्प आयुमें परलोकवासी हुई, उनके समरणार्थ उनका चित्र सहित प्रकट की जाती है। यह कथा जितनी रे।चक है, उतनीही उपदेश पूर्ण है और बीच-बीचमें उपदेशपूर्ण शिक्षाएं दोहा चौपाई वगैरः भी कहीं गई है, जिसके पढ़नेसे सहज ही अच्छी शिक्षा मिल सक्ती है। आदिमें कुछ भूगोलका संक्षिप्त वर्णन जैन शास्त्रानुसार भी दिया गया है। आज्ञा है यह पुस्तक सर्विषिय होगी।

वीर सं. २४४०) जैन जातिका सेवक, ज्येष्ठ गुक्क ९ मुळचंद किसनदास कापडिया-सूरत.



(सुरतनिवासी शा. कसनदास पुनेमचंद कापडीआनी पुत्री अने भावनगरनिवासी शा. हीराठाक वालचंद वागडीयानी स्व. परिन). जन्म विक. सं. १९५१. मृत्यु विक. सं. १९७०

नेन प्रेस सरह.

॥ ॐ नमः सिद्धम् ॥



प्रथम प्रणम परमेष्टि गण, प्रणमो सारद पाय।
गुरु निर्भन्थ णमो सदा, भव भवमें सुखदाय॥
धर्म दया हिरदे धरूं, सब विधि मंगलकार।
जंबूस्वामी चरितकी, करूं बचनिका सार॥

॥ अथ बचनिका प्रारंभ ॥

मध्य लोक के असंख्यात द्वीप और समुद्रोंके मध्य एक लाख योजन (२००० कोस=४००० माइल) व्यासवाला गोल जंबू नाम द्वीप है। जिसके मध्यमें नाभिकी शोभा देनेवाला एक मुद्रश्चन मेरु नामका पर्वत पृथ्वीसे २००० योजन ऊंचा है जिसकी जड़ पृथ्वीमें १००० योजन है। इस पर्वत पर चार बन हैं—भद्रसाल, नंदन, सौपनस, और पांडुक। इन चारों बनोंमें चहं ओर चार २ अकृतिम (बिना बनाये=अनादि निधन) जिन चैत्यालय हैं, जहां पर देव, विद्याधर तथा इन्हींकी सहायता पाकर अन्य पुण्यवान पुरुष नित्य दर्शन, पूजन, ध्यान करके अपना आत्मकरुयाण करते हैं।

अंतके पांडुक बनमें चहूं दिश चार अर्द्ध चन्द्राकार शिला-एं हैं, जिन पर जन्म कल्याणकके समय इन्द्र श्री तीर्थंकर देव को बिराजमान कर १००८ क्षीर नीरके कल्शोंद्वारा अभिषेक करता है। इस पर्वतकी तलहटीमें चारों ओर चार गजदंत (हा-श्रीके आकारवाले) पर्वत हैं इनपर भी अकृत्रिम चैत्यालय हैं।

इस पर्वतके उत्तर और दक्षिणमें हिमबन्, महांहिमबन् निषध, निल, रुक्मि और शिखरी, एसे छः महा पर्वत दण्डा-कार पूर्वसे पश्चिम समुद्र तक आड़े फैले हुवे हैं, जिनके कारण जंबुद्वीपके स्वामाविक सात माग हो गये हैं। सुदर्शन मेरुके ध्यासपास के क्षेत्रको जो पूर्वसे पश्चिम समुद्र तक दो महा पर्वतों के मध्यमें पड़ा हुवा है, उसका नाम विदेह क्षेत्र है। अर्थात् जहां पर सदैव बीस तीर्थंकर विद्यमान (उपस्थित) रहते हैं । जिनके नाम अनादि यही होते हैं। सीमंधर, युगमंधर, बाहु, सुबाहु, संजातक, स्वयंप्रमु, ऋषभानन, अनंतवीर्य, सूरप्रभ, विशालकीति, वज्रधर, चन्द्रानन, चन्द्रवाहु, भुजंगम, ईश्वर, नेमिमभ, वीर्षेण, महाभद्र, देवयश्च, अजितवीर्यः और जहां सदैव काल चौथे कालके आदि प्रमाण मनुष्योंकी आयु, काय, बल, वीर्यादि होते हैं तथा सदैव इस क्षेत्रसे जीव कर्मको नाश कर मोक्ष प्राप्त कर सक्ता है। अर्थात् जहांपर काल चककी फिरन नहीं है। इसीसे इसका नाम विदेह क्षेत्र हुवा। वाकी उन महापर्वतोंके दोनों ओर भरत, ऐरावत, हैमवत्, हरि,

^{*} अकृत्रिम चैत्यालयोंका वर्णन कथन बहनेके भयसे यहां किया नहीं है ।

रम्यक, हैरण्यवत, ऐसे पट् क्षेत्र और हैं। इनमें उत्तरकी ओर पेरावत और दक्षिणकी ओर बिलकुल समुद्र तट पर भरत तामका क्षेत्र हैं। इनके मध्यमें एक एक वैताड्य पर्वतके पड़जाने से दो दो माग हो गये हैं, और महापर्वतोंसे दो दो महा नदी निकल कर उत्तर दक्षिण समुद्रमें जाकर मिली हैं, जिससे एक भागके तीन तीन भाग हो गये हैं। इन सबको मीलाकर एक एक क्षेत्रके छः छः भाग हुवे अर्थात् छः ऐरावतके और छः भरतके, इन छः छः खंडोंमेंसे अत्यन्त उत्तर और दक्षिण भागमें समुद्रसे मिला हूवा एक एक आर्य खंड हैं। इन्हीं आ्य खंडोंमें तिशावोंमें पांच पांच क्ष मलेच्छ खंड हैं। इन्हीं आ्य खंडोंमें केशठ शलाकादि उत्तम प्रवांकी उत्पत्ति होती है और इन्हीं खंडोंमें अवसर्िएणी, उत्सिंग्णी के छः कालोंके चक्रकी फिरन होती है।

इसही भरत क्षेत्रके आर्य खंडमें एक मगध नाम देश है और उसमें राजगृही नामकी नगरी है। (बिहार स्टेशनसे अनुमान १० कोस पर है)। इस समय यह नगरी बिलकुल उजाड हो रही है, इसीके पासमें उदयगिरि, सोनागिरी, खंडगिरि, रलागिरि और विपुलाचल नामकी पंच पहााड़ियां हैं, इन पहााड़ियों के का-रण यह स्थान अत्यन्त मनोग्य माळम होता है।

^{*} मलेच्छ (बंड-उसे कहता हैं जहांके लोग स्वेच्छाचारी अधर्मी-धर्म शान रहित हों। इन खंडींमें भी काल चक्रकी फिरन नहीं है।

पूर्व समयमें इस नगरीकी शोभा अवर्णनीय थी, मानो स्वर्गपुरी ही है। नाना प्रकारके वन, बागबगीचे, कुवे, वावली, र्तालाव, नदी आदिसे शोभित था। चारों ओर बड़े बड़े उतंग महरु कि जिनको देखनेसे आकाशसे मिले हुवे माछम होते थे-बने हुवे थे। जहां पर ठौर ठौर जिन मंदिर बन रहे थे, कैसे हैं जिन मंदिर मानो अक्रत्रिम चैत्यालयोंका नकशा ही उतार कर रख दिया है। नाना प्रकारके चित्रोंसे चित्रित कहीं स्वर्ग-की संपाचे दृष्टिगत होती है, तो कहीं नरककी वेदना दिख रही है, कहा तिर्यंच गतिके दुःखोंका दृश्य दिखाई दे रहा है, कहीं रोगी, वियोगी, शोगी नर नारियोंका चित्र खिंच रहा है, कहीं पर भव भोगों से विरक्त परम दिगंबर रूपी अपनी ध्यान मुद्रामें मम हुवे तीन लोककी संपत्तिको त्रणवत् त्यागे हुवे निश्चल ध्यानयुक्त बैठे हुवे माछम हो रहे हैं । श्री जिनेन्द्रकी बीतरामी मुद्राका देख कर परम कवायी भी कांत हो जाता हैं अर्थात् जहां संसार दशाका मले प्रकार अनुभव होता है ऐसे जिन मंदिर तोरन पताकादि कर शोभायमान हैं। ऐसी अनेक शोभा कर संयुक्त वह नगरी है जहां पर भिक्षुक व भयवान दरिद्री पुरुष तो दृष्टिगोचर होते ही नहीं हैं। जहां-का राजा अगिक महा मंडलेश्वर राजनीति निपुण, न्यायी, यशस्त्री और महात्रली है। बहुतसे मुकुटबंघ राजा जिसकी आज्ञा मानते हैं।

एक समय राजा श्रेणिक अपनी राजसभामें नैठे हुने थे, कि बनमालीने आकर छहं ऋतुके फल फूल लाकर राजाको मेंट किये और विनय की-मो स्वामीन् ! विपुलाचल पर्वतपर अंतिम तीर्थंकर श्री वीरजीनका समीसरण आया है, जिसके प्रभावसे, ये सब ऋतुनोंके फलफूल आ गये हैं। वापी, कुने, तलान, आदि सब हरे भरे दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

राजा यह समाचार सुनकर अत्यानन्दको प्राप्त ह्वा और तुरंत ही सिंहासनसे उतर कर सात पेड़ (पगलां) चलकर प्रभुकी परोक्ष वंदना की, पश्चात् एक मुकुटको छोड़ कर सब वस्नाभूषण जो शरीरपर थे, वनमाठीको उतारकर दे दिये और नगरीमें घोषणा कराई कि प्रभु वीर जिनका समवसरण विपुलाचल पर्वतपर आया है, इस लिये सर्व नर नारी वंदना को चलो । घोषणा (इंड़ी) को सुनकर पुरजन बहुत हर्षित हो शक्ति प्रमाण अष्ट द्रव्य ले लेकर बंदनाको चले और राजा भी प्रजा सहित जाता हुवा ऐसा माळ्म होता था मानो इन्द्र ही सेन्या सहित आया हो । जब समौसरणके निकट पहुंचे. तब राजा रथसे उतर पांव पैदल चलने लगा । प्रथम मानस्यंभ (जिसके देखने मालसे मानी पुरुषोंका मान जाता रहता है) का दर्शन कर समवसरणमें प्रवेश किया और तीन प्रदक्षिणा देकर नमस्कार किया, पश्चात् श्रीजीकी पूजा करके मनुष्योंके कोठेमें (सभामें) बैठा । बहुत प्रकारसे स्तुति करके विन्ती की-" हे नाथ ! मुझे संसारसे पार करनेवाला धर्म कृपा करके

किहिये! '' तब प्रमुकी दिव्य ध्वनि खिरी और तदनुसार गौतम स्वामी (जो प्रथम गणधर चार ज्ञान के धारी थे) ने कहा;—

" हे राजा, सुनो! इस अनादि निधन संसारमें यह जीव अनादि कमौके वश हुवा मदिरापानी बावलेकी तरह चतुर्गतिमें अमण करके नाना प्रकार जन्म और मरणके दुखोंको सह रहा है। यह (जीव) मिध्या अमसे पर वस्तुवोंमें आपा मान कर आपको मूल रहा है और अपनी अलख संपत्ति और अविनाशी सुखका अनुभव न कर इन्द्री विषयोंमें आशक्त होकर आप ही सुखी होना चाहता है, परंतु हे राजा! जहां तृष्णारूपी अग्नि प्रज्वित है वहां भोग साम्ब्रीह्मप ईंधनसे तृप्ति ही कहां ? ज्यों ज्यों यह विषयभोगकी सामग्री मिलती जावे त्यों त्यों आशा तप्णा की इच्छाएं बढ़ती ही चली जाती हैं। प्रत्येक जीवको इतनी तृष्णा है कि तीन लोक की सामग्री भी कदाचित मिल जाय तो इस (जीव)के आशा तृष्णा रूपी खाडे (गर्त)का असंख्यातमा भाग भी न भरे। और लोकतो एक ही और जीव अनंतानंत है, और प्रत्येक को इस प्रकारकी आशा तृष्णा और इच्छाएं है सो इनमें सुखकी इच्छा करना. मानो पत्थर पर कमलका लगाना है। तात्पर्य यह संसार दुख-मई है। इसमें सुख रंचमात्र भी नहीं है। जिस प्रकार केलका हतंभ निःसार है, जलको मथने सं कुछ भी नहीं निकलता, उसी प्रकार संसार असार है। जो भन्य जीव सुखके अभिलाषी है वे इसे त्यागकर धर्मका सेवन करता है। धर्म दा प्रकारका है-सागार

(गृहस्थों)का जिसे अणुत्रत या देशत्रत कहते हैं। दूसरा अना गार (साधुवों)का जिसे महात्रत या सकड तत भी कहते हैं। पहिळा परम्परा सचे सुख (मोक्ष)का साधन है। दूसरा साक्षात (तद्भव) मोक्षका साधन है। "

इस प्रकार स्वामीने संक्षिप्तसे संसार दशाका स्वरूप वर्णन करके दो प्रकार धर्मका स्वरूप वर्णन किया, इतनेमें एक देव वहां आया और नमस्कार कर अपनी समामें जाकर बैठा। उसकी अपूर्व कांति देखकर राजा श्रेणिक बड़े आश्चर्यमें होकर स्वामीसे पूछने लगे—'हे स्वामीन् ! यह देव कौन हैं!' तब स्वामीने कहा—''यह विद्युन्माछी नाम देव है और अब इसकी आयु तीन दिन शेष रह गई है "। तब पुनः राजाने पूछा—'' हे प्रमो ! पूर्व आपने कहा था कि देवोंकी आयुके छः महिना बाकी रह जाते हैं, तब माला मुरझा जाती है और जब इस देवकी आयु केवल तीन ही दिनकी रह गई है तब भी इसकी कांति कहनेमें नहीं आती है। इस प्रकार अनुपम है, सो है प्रमो ! इसका सम्पूर्ण वृत्तांत कृपा कर कहो। "

तव गौतमस्त्रामीजीने इस प्रकार कहना प्रारंभ किया—
" ऐ राजा, सुनो ! इस ही देशमें वर्धमानपुर नामका एक
सुन्दर नगर है, जहांका राजा महीपाल अत्यन्त धर्मधुरंघर और
न्यायनीतिनिपुण था और जहां अनेक श्रीमान श्रेष्टि (सेठ)
वास करते थे। ऐसे उत्तम नगरमें एक ब्राह्मण रहता था, जो

कि महा मिथ्यात्वी था और लोगोंको निरंतर मिथ्या उपदेश देकर ल्याह, श्राद्धादि नाना कर्मोद्धारा अपनी आजीवका करता था। उसके भवदेव और भावदेव नामके दो पुत्र हुवे, जो कि विद्यामें बहुत ही निपुण हुवे। परंतु पिताके अनुसार वे भी मिथ्यात्वसे खाली न रह सके। कुछ समय पीछे वह ब्राह्मण कालवश होकर अपने किये हुवे मिथ्यात्व कर्मोंका पेरा हुवा दुर्गतिको चला गया और ये दोनों द्विजपुत्र उसी प्रकार अपना कालक्षेप करने छगे।

भाग्योदयसे एक दिन महा तपश्ची दिगंबर मुनि नगर के उद्यान (बन)में विहार करते हुवे आये। तब सब नगर लोक मुनिकी बंदनाको गये और वह द्वीजपुत्र भी गये। बंदना कर समीप बैठ कर श्री गुरुके मुलते धर्मोपदेश सुना। सब लोगोंने यथाशक्ति त्रतादिक लिये और वह द्वीज पुत्र भावदेव जो बड़ा आ, संसारका स्वरूप देसकर विषय भोगोंसे अत्यन्त विरक्त हो कर और यह समय फिर नहीं हाथ आवेगा, काल अचानक खाकर प्रस लेवेगा और फिर सब बिचार यहां के यहां ही पड़े रह जावेंगे, संसारमें सब स्वार्थके सगे हैं, यदि हित् कोई संसारमें है तो यही श्री गुरु हैं। जो निष्प्रयोजन हम लोगोंको भव सागरमें इबते हुवे हस्तावरुवन देकर पार लगाते है। सब वस्तुरे क्षणमंगुर है। जब हमारा शरीर ही नाशवान है तो इसके सम्बन्धी पदार्थ अवसर पाकर हा वाहेंथे—

ऐसा विचार श्री गुरुके निकट जिन दिक्षा धारण की ।
सो ठीक है—'शठ सुधरहिं सत्संगति पाई, लोह कनक है पारस
पाई '।। जैसे लोहा पारसके प्रसंगसे सोना हो जाता है, त्योंही
शठ जो महा मृद मिध्यात्वी भी सत्संगके प्रभावसे चतुर विद्वान
हो जाता है। देखो ! वह भावदेव ब्राह्मणका पुत्र जो परम्परा
से तीत्र मिध्यात्वी था, सो भी श्री गुरु के मुखसे सच्चा
कल्याणकारी उपदेश सुनकर वैराग्य प्राप्त कर जिन दिक्षा लेता
हुवा । सो वह भावदेव मुनि अपने गुरु तथा संघके लार अनेक
देशोंमें विहार करते करते बारह वर्ष पश्चात् पुनः इसी वर्षमानपुरके उद्यानमें आये।

तब भावदेव मुनि मनमें विचारने लगे कि मेरा सहोदर (छोटा भाई) भवदेव तीत्र मिध्यात्वमें फंस रहा है। उसको किसी प्रकार समझाना चाहिये। ऐसा विचार कर श्री गुरुकी भाज्ञा लेकर नगरकी ओर प्रयान किया, और अपने भाईके मकानमें जाकर प्रवेश किया। तब इनका छोटा भाई अपने बड़े भाईका आगमन देख अपना धन्य जन्म मान कर प्रफुछित चिच हो स्तुति करने लगे सो ठीक है—''छोटोंको बड़ोंकी विनय करना ही उचित है"। फिर उच्चासन देकर कुशल समाचार पूछने लगा।

तन मुनि धर्मलाभ देकर कहने लगे, कि जो पुरुष निश्चदिन जिन भगवानके चरणोंमें आशक्त रहता है, उसके सदैव कुशल रहती है। फिर मुनिवरने सभा मंडफ कंकण वगैर: सामग्री, केशिरया, वागो और क्षियोंको मंगळ करते देख कर भवदेवसे पूछा—''यह सब क्या है!'' तब भवदेवने कहा आज रात्रिको मेरा व्याह (लग) हुवा है। इसीका यह सब उत्सव है। तब मुनिराजने कहा कि यह तो सब कर्म-जंजाल है, परंतु तुम्हें कुछ धर्मका ख्याल है! तब भवदेवने धर्म श्रवण कर श्री मुनिवरसे अणुन्नत लिये और नवधा भक्तिसे पड़गाह कर आहार दान दिया। मुनिने तो आहार लेकर संघकी ओर विहार किया, और भवदेव भक्तिका भेरा पहूंचाने को पीछे पीछे चला। सो मुनिवर तो नीची दृष्टिकर ईर्याप्य सोधते हुवे, धर्मध्यान चिंतवन करते हुवे जा रहे हैं और भव-देव केवल लोकरीति अनुसार पीछे पीछे यह विचारता हुवा जा रहा है कि बड़े भई मुझे कव पीछे फिरनेकी आज्ञा दे तो मैं शीव घर जाकर नव विवाहित स्त्रीसे मिछं।

इस प्रकार वे दोनों अपने २ ध्यानमग्न नगरसे लगभग १ कोस आ गये, परंतु मुनिराज तो सीधे चले ही जा रहे है। भवदेव मनमें बिचारने लगा-एक कोस तो आ गये, अब ना माल्यम भाई कितनी दूर जावेंगे, जो मुझे आज्ञा दे देते तो मैं घर जाता, आगे जाकर भी क्या जाने ये मुझे पीछे आने देंगे कि महीं। इत्यादि संकल्प विकल्प करते हुवे, चला जा रहा था। मुनिराज न तो इसे कहते थे के साथमें आवो और न पीछेही जानेको आज्ञा देते थे। वे तो मौनालंबन किये जा रहे थे। मनमं बिचारते थे कि यदि भवदेव गूरुके पास पहुंचकर इस असार संसारका परित्याग कर दे तो अच्छा हो, क्योंकी इसकी आत्माने जो मिथ्यात्व वश अशूभ कर्मबंध किया है सो जिनेश्वरी तपश्चरणसे छट, उत्तम सुखोंको प्राप्त हो।

अहा ! अातृस्नेह इसीका नाम है कि भव समुद्रमें गोते खाते हुवे भाईको निकाल कर सच्चे मार्गमें लगाना । ऐसे माई संसारमें विश्ले ही हैं, जो विषय कवायोंसे छूड़ाव । किन्तु फसानेवाले अनेक हैं। भावदेवने भवदेवके साथ जो सच्चा प्रेम प्रगट किया वह अनुकरणीय है।

इसी प्रकार अपने अपने विचारों मंगन वे दोनों (भावदेव मुनि और भवदेव विप्र) नगरसे तीन कोसके अनुमान बनमें पहुंचे, जहां पर श्री गुरु संघ सहित तिष्ठे थे। दोनोंने यथायोग्य गुरुको विनय संयुक्त नमस्कार किया और निज निज योग्य स्थानमें बैठ गये, तब दूसरे संघके मुनियोंने पूछा - 'यह दूसरा आपके साथ कौन हैं?' भावदेव मुनिन उत्तर दिया, ''यह हमारा छोटा भाई है। श्री गुरुके दर्शन को आया है, सो गुरुके प्रभावसे यह सच्चे मार्ग लग जावगा'। तब सब मुनि सराहना कर कहने लगे - 'हे मुने! यह तुमने बहुत ही अच्छा किया जो वहते हुवेको पार लगाया। बहुत ही अच्छा हुवा। अब इसे जिनेश्वरो दिक्षा देना चाहिये, ताकि कर्मों को काटकर अचल सुख प्राप्त करे। ''

यह भात सुनकर भवदेव विष विचारने लगा—'हे विचाता! -यह क्या ह्वा? अब मैं क्या करूं? जो दिक्षा ले छं तो आजकी क्याही स्नी क्या करेगी ? कैसे जीवन व्यतित करेगी ! लोगः मुझे क्या कहेंगे और जो घर जाऊं, तो भाईकी बात जाती है। ये साथके मुनि उनकी हास्य करेंगे कि इनका भाई इतना कायर है। ऐसे पुरुषको क्यों लाये, इत्यादि।"

पेसा विकल्प करते करते यह निश्चय किया कि इस वक्त तो जैसा ये लोग कहें वैसा ही कर छं और कुछेक दिन मुनि ही बन कर रहूं, किर जब कोई मौका हाथ लगा कि तुरंत भागकर घर चड़ा जाउंगा। यह सोच जिन दिक्षा ली। श्री गुरुने उसे भव्य जानकर कि चाहे अभी इसके मनमें दुर्ध्यान है परंतु पीछे यह मुनिनायक होवेगा दिक्षा दी, पश्चात् यह मुनिसंघ कई देशोंमे विहार करता अनन्त भव्य जीवोंको संबोध्यन करता हुवा, बारह वर्ष पीछे किर उसी बनमें आया। तब भवदेव मनमें बिचार करके कि अब जाकर अपनी स्त्रीको देखना चाहिये, गुरुको नमस्कार कर नगरकी ओर चले। सो मुनि परम दयाछ ईर्यापंथ सोधते हुवे जिनालयमें पहुंचे और प्रभुकी बंदना कर बैठे।

इतनेमें वहां एक आर्जिकाको देखा। परस्पर रत्नश्रयकी कुशल पूछकर श्री मुनि उस अर्जिकासे पूछने लगे, कि इस नममें दो ब्राह्मणपुत्र रहते थे, सो वे दोनों तो जिन दिक्षा ले-कर विहार कर गये। परंतु छोटा लड़का जो तुरंत ज्याहकर लाई हुई नववधूको छोड़ गया, सो उसका क्या हुवा ? तब अर्जिका, मुनिका चंचल चित्त देख बोली—'हे स्वामी! हे धीरवीर! आप अपने चित्तको शांत कीजिये। धन्य है आपने ऐसा उत्तम त्रत लिया जो कायर संसारी पुरुषोंसे न बन सके। इस लायक आप ही हो, इत्यादि स्तुतिकर कहने लगी।

'हे नाथ ! वह स्त्री मैं ही हूं ! आपके चले जाने पीछे मैंने इस स्त्री पर्यायको पराधीन जानकर इससे छूटनेके लिये यहां आर्जिकाके बत लिये और घरको तुड़वाकर उसका चैत्यालय कर-वाया। जो कुछ द्रव्य थी इसी चैत्यालयमें लगा दी गई है । अब हे मुनिनाथ ! आप निशंक होकर तपश्चरण करें. ।'

यह सुनकर मुनि निसल्य हो बनमें गये और श्री गुरुको नमस्कार कर सब वृत्तांत कहा। तब श्री गुरुने भवदेव मुनिकी दिक्षा छेद फिरसे त्रत दिये। इस प्रकार वे दोई भाई मुनि उप तप करते हुवे विपुछाचछ पर्वतपर आये और अंत समाधिमरण कर तीजे स्वर्ग सनस्कुमार नामके देव हूवे। वहांपर अतुल संपदा देख अवधिज्ञानसे अपना पूर्व भवका वृतांत चितवन करके और यह संपति जिन धर्मके प्रभावसे मिली है, ऐसा जानकर धर्ममें तत्पर हूवे। अनेक सेवकों सहित अड़ाई द्वीप संबंधी तथा अशेष सर्व अकृतिम, कृतिम चैत्यालयोंकी वंदना की।

इस प्रकार वे देव वहांपर (स्वर्गमें) सागरों पर्यन्त सुख भोगकर तहांसे चय भावदेवका जीव अपर विदेह पुंडरीकनी नगरीमें वजदंत राजाकी पट्टरानीसे सागरचन्द्र नामका पुत्र हुवा, और करंगा। तब शिवकुमारने मात तात बचनानुसारही क्षुष्ठकके व्रत लिये। घरमें हीं रहकर चौसठ ६४ हनार वर्ष तक केवळ भात और पानीका आहार कर निरंतर धर्म ध्यानमें काल व्य-तीत किया, और सागरचन्द्र मुनि यहांसे बिहार करके उम उम तप करते हुवे समाधिमरणकर ब्रह्मोत्तर छठवें स्वर्गमें देव हुवे, और शिवकुमार क्षुष्ठक भी अवसर पाय समाधिमरणकर उसी ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें देव हुवे। सो पूर्वत के प्रभावसे नाना प्रकार सुखं भोगने लगे। सो हे राजन्! यह विद्युन्माछी देव पूर्व तपस्याके प्रभावसे ऐसा अद्भत क्रांतिवान हुवा है। '

तब राजा श्रेणिकने विनययुक्त पृछा-' हे प्रभो । इनका विशेष हाल सुना चाहता हूं, सो कृपा कर कहो । तब स्वामी इस प्रकार कहने लगे ।

"इसही मगध देशमें चंपापुरी नामकी नगरी है, वहां सूररोन नामका सेठ रहता था। उसके अति रूपवान चार स्त्री यों थीं। सो कोइ पूर्व पापके उदयसे सैठको वायुरोग हो गया जिस कारणसे वह बावलेकी तरह बकने और श्लियोंको नाना प्रकार कष्ट देने लगा। यहां तक कि चारोंके नाक, कान भी काट डाले। इससे वे श्लियां अति दुःखित हो कर वासुपूज्य स्वामीके चैत्यालयमें जाकर अर्जिका हो गई और समाधिमरण करके इसही छठवे स्वर्गमें चारों देवी हुई हैं। सो राजन्! जंबू-स्वामी, बिद्युतचर और ये देवियां यहांसे चय साथ ही दिश्ली

यन इसका विशेष वर्णन है सो सुनो—" हिरधनापुरका राजा दुरदन्द ताके सिवकुमारका जीव जो छठवे स्वर्ग देव हुवा था, तहांसे चयकर विद्युतचर नामका पुत्र हुवा, सो महाबलवान, प्रतापी और सर्व विद्यावों ने निपुण, नाना कला सीखा। परंतु अंतमें उसने चोरी भी सीख ली और प्रथम ही अपना राजभंडार चुरानेको प्रवेश किया कि उसे कोटवालने पकड़ लिया और राजाके सन्मुख उपस्थित किया। राजा पुत्रकी यह दशा देख बहुत दुःखी हुवे और कहने लगे—" हो बाल! तू यह सब राजभंडार ले, परंतु चोरी करना छोड़ दे, क्यों कि इंच्छित वस्तु प्राप्त होने पर कोई चोरी नहीं करता। परंतु विद्युतचरने एक न मानी। सो ठीक है—"मतवाले को हित की बात अच्छी नहीं मालूम होती"।

तब राजा अत्यन्त खेदित होकर कहने लगे—"जो तुम यह दुष्ट कृत्य—चोरी नहीं छोड़ोगे तो किसी न किसी दिन अ- वश्य ही तुम्हारे प्राण जांयगे और बहुत दुःख उठावोगे।" तब विद्युतचर बोला—"हे पिताजी! मुझसे यह कृत्य न छूटेगा। मैं तो चोरी करके सब राजको छट छट कर खाऊंगा अथवा आपका राज्य छोड़ विदेशमें चला जाऊंगा। तब राजाने लाचार होकर देशसे निकल जानेकी आज्ञा दे दी। सत्य है—" न्यापी पुरुषों का यही धमे है कि चाहे अपना पुत्र हो द पिता तथा कैसा ही स्नेही क्यों न हो, उसको अपराध करने

पर अवस्य ही योग्य शिक्षा करते हैं (दण्ड देते हैं), पक्षपात कदापि नहीं करते। "

सो विद्युतचर राजपुत्र वहांसे निकलकर कई रोजमें राजगृही नगरीमें आया और कपळा वेश्या के यहां रहने लगा। सो वहांपर सब नगरसे चोरी कर २ वेश्याका घर भरने लगा। और इस तरह कालक्षेप करने लगा। "

इस कथनको यहीं छोड़कर अब उन चारों देवियोंका कथन सुनिये—" राजगृही नगरीमें अईदास नामका सेठ था, उसके जिनमती नामकी स्त्री महा शीलवान थी। सो यह बिद्युतवेगदेव (जिसकी तीन दिनकी आयु शेष रह गईथी) स्वगेसे चयकर पुत्र हो तपकरके भवजाल तोड़कर स्वात्मानु-भ्तिरूप सच्चा सुख जो निर्वाण उसे प्राप्त करेगा। "

गौतम स्वामीके मुखसे यह कथन हो ही रहा था कि एक यक्ष वहां गदगद होय नाचने लगा । तब राजा श्रेणिकने विक्तित होकर पूछा—'' हे स्वामी! यह यक्ष क्यों नाचा '' ? स्वामीने उत्तर दिया कि—''अईदासका सहोदर माई एक रुद्रदास था सो महाकुरूप सप्तव्यसनासक्त था। एक दिन वह (रुद्रदास) सब धन जुवा (द्यूत) में हार गया तब उधार (ऋण लेकर) खेला, परंतु वह भी हार गया, और धरमें भी कुच्छ रहा न था, सो देवे कहांसे! जब जुवाड़ियोंने अपना द्रव्य मांगा और

इसने नहीं दिया तब साधके खिलाड़ी दृसरे जुनादियोंने उसे बांधकर बहुतही मार मारी, यहां तक कि बेसुव कर दिया।

जब यह खबर महेदास, उसके भाईको मिली तो तुरंत-ही वहांसे उसने रुद्रदासको खाट (चारपाइ) में रखाकर
घर मंगाया और अंतिम वेदना जानकर सन्यास मरण कराया।
सो उस रुद्रदासका जीव सन्यासके योगसे यह यक्ष हुवा है
और अब अपने वंश मोक्षगामी पुरुषकी उत्पत्ति सुनकर हिषत
होय नाच रहा है। "

यह वृत्तांत गौतमस्त्रामीके मुलसे सुनकर सभासजोंको अत्यानन्द हुवा और अईदास तथा उनकी सेठानीके आनन्दका तो पार ही नहीं रहा, जैसे भिक्षकको धनपति (कुबेर) की संपत्ति पानेसे होता है, उसी प्रकार सर्व नगरमें आनन्दही आनन्द भर गया। घरोंघर मंगल गान होने लगा। एक दिन सेठानी जिनमती चित्रसारी (शयनगृह) में सुखनींद ले रहींथी कि उसी समय वह विद्युतवेगदेव ब्रह्मोत्तर स्वर्ग से चयनकर सेठानीके गर्भमें आया और सेठानीने शुभ स्वर्म पिछली रात्रिमें देखा और अपने पतिसे उस स्वप्नका फल पूछा। सो ठीक है-'' सती स्वियां लाभ अलाभ जो कुछ भी हो सवा हाल अपने पतिसे ही बहती है।'' तब सेठने स्वामीके मुलसे सुने हुवे वृतांतको स्मरणकर तथा निमित्त शास्त्रद्वारा स्वप्नका फल विचारकर कहा—

"हो पिये! तुन्हारे गर्मसे त्रेकोक्यतिलक मोक्षगामी पुल होनेगा।"यह सुनकर सक्को अति हर्व हुवा, कि समय जाते हुवे भी कुछ माल्स न हुवा। पूर्ण दस माह होनेपर अहंदास सेठके घर पुत्रस्का प्राप्ति हुई। घरोंघर मंगल गान होने लगे। याचकों को दान दिया गया और सजन सुहद इत्यादि पुरुषोंका भी यथायोग्य सन्मान किया गया। अब तो बालक दिन प्रतिदिन बढ़ने लगा, मानो चन्द्रमा अपनी सम्पूर्ण कलावों सिहत विस्तारको प्राप्त हो रहा हो। ज्योतिषीयोंने लग्न विचारकर शुभ नाम जंत्रस्त्रामी रखा। सो स्वामीका ऐसा अनुपमरूप हुवां कि जिसे देखकर संपूर्ण नमवासी राजा प्रजा सबके चित्त विनोदी हो गये।

जब स्वामी दस वर्षके हुवे, तर वस्नामूषण धारणकर अपने संगके बालकों में खेलते हुवे ऐसे माद्धम होते थे मानो ताराग-णों में चन्द्र ही है। नम्रके लोग धन्य धन्य कर आर्झावाद देते थे। जहां जिस रास्तासे स्वामी निकल जाते वहीं पर लाखों आदमी की भीड़ हो जाती थी, यहां तक कि नरनारी अपने आवश्यक कामों को भी विस्मरण कर जाती थी।

एक दिन राजा कीडा निमित्त बनमें गये थे, और सब पुरजन आनंदमें मग्न थे कि अचानक राजाका पट्टबंध हाथी महाबतको गिराकर छूट गया और नग्रमें जहां तहां घोर उपद्रव करने रुगा । मानो प्ररूप ही आ गया। नरनारी अत्यंत भवभीत हो प्रकारने छगे । राखे और बाजार सब बंद हो गये। कोई निकल नहीं सक्ताशा । यह सबर राजा तक पहुंची और वहांसे बड़ेर योद्धा मेजे गये, परंतु कुछ फल न हुवा । इतनेमें स्वामी (जंबूक्मार) अपने मित्रों सहित जा रहे थे, कि हाथी संूड़ उठाकर, इनकी तरफ आया, मानो वह सुंड उठाकर स्वामीको नमस्कार ही करता है और साथी तो सब हर कर दूर हट गये, परंतु स्वामी उस हाथी-की चेष्टा देखकर हंसे। नम्र के लोग तो हाय हाय करके पुकारने लगे कि अब क्या जाने यह हाथी इस बालक (जम्बूक्मार) को छोडेगा कि नहीं ? दोडियो ३ बचाइयो इत्यादि । परंतु स्वामीने किंचित भी भय नहीं किया और हाथीके सन्मुख जाकर कपडेको उमेठ कर जोरसे हाथीको मारा कि हाथी चीस मार भागने लगा, तब स्वामीने उसे पूंछ पकड़ के रोक लिया और मस्तकपर जा बैठे, और सात बार यहां वहां खूब दौडाया । नमलोग व राजा यह कौतुक देख हर्ष और आश्चर्य युक्त हो गये । स्वामी हाथीपर बैठे हुवे घर आये, देखकर मातापिता शटसे गोदमें हे मुख चूमने और बलैयां हेने लगे। तथा निछरावल करने लगे और पूछा-'हो पूत्र! ऐसे कोमल पहनसमान हाथोंसे तुमने किस तरह ऐसे मदो-न्मत्त हाथीको पकड़ हिया "।

तन स्वामीने विनयपूर्वक उत्तर दिया-" हे पिता! माताजी! आपके प्रभावसे मैंने इसे पकड़ा है। सो ठीक है-

बंद बंदाई ना करें, करें अ दे काम । हरा मुखसे ना कहे, छाल इपारो दाम "॥

इतनेमं स्वामीको बुलानेके लिये एक राजद्त आया और बड़े मानसिहत स्वामीको राज्य दरबारमें ले गया। स्वा-मीको दर्बारमें आते देख समाजन उठकर नमस्कार करने लेग और राजाने उठकर अगवानी की तथा अर्घ सिंहासनपर बैठाया, स्रोर बहुत भीतिसहित बातचीत होने बाद राजाने कहा-

"हे कुमार! आप नित्यपति दरबारमें आया करें। यह बचन मांगता हूं। तब स्वामीने वह स्वीकार किया। पश्चात् राजाने छत्र, चमर, रथ, पालकी आदि देकर विदाकिया। एक दिन अईदाम सेठ अपने घरमें सुखासन बैठे थे, कि चार सेठ बहुत ऋदि (द्रव्य) वान आकर विन्ती कर कहने लगे—"हे साहु! हमारे घर चार अतिही रूपवान और गुणवान कन्याएं हैं, सो हम आपके चिरंजीव जंबूकुमारको देते हैं। आशा है कि आप यह तुच्छ भेट स्वीकार कीजियेगा।"

तब अहदास सेठ आगन्तुक सेठोंको आदर सहित बैठाल कर, अपनी भिया जिनम्तीके पास जाकर सब दृतांत कहने लगे। सो सुनकर सेठानी अति हिषित होय कहने लगी—" हे स्वामी! यह तो व्यवहार उचित ही है, अवश्यही करना चा-हिए"। बस, शुभ महत्तेमें सगाई (बाक्दान) हुई और नममेंमी उत्साह मनाया गया। स्वामीमी नियमानुसार नित्य राजदरनारमें जाया करने लगे। एक दिन अंगकीट नाम पर्व-तका रहनेवाला गमनगति नाम विद्याघर सभामें आकर कहने लगा- दे राजन् ! इसी अंगकीट पर्वतपर केरलपुर नाम नगर है, तहां राजा मृगांक (मेरा बहनोइ) सुलसे करता है। उसके मंज़ नामकी एक कन्या है, सो एक दि राजाने मुनिसे पूछा-पुत्री का वर कौन होगा ? तब मुनिवरने कहा, कि राजगृहीका राजा श्रेणिक इसे व्याहेगा। यह सुनकर राजाने वह कन्या आपको देनी करी । यह खबर राजा रत्नचूलको पहुंची, तब उनने राजा मृगांकके पास द्रा भेजा, कि तुम्हारी कन्या मंजु, जो अपनी कुशल चाहते हो तो मुझे देवो । तब राजा दृतके बचन सुन चिंतातुर हुवा और क्रोध कर दृतसे कहा, कि जाकर अपने स्वामीसे कह दे-कन्या तो राजा श्रेणिकको दे चुका हूं। सो दूसरे को नहीं दी जा सक्ती है। तब दूतने भीछे आकर सब हाल राजा रत्नचूलसे हहा, तब रत्नचूलने आकर केरलपुर घेर लिया है, और आपकी मांग लेनेको दबाब डाल रहा है। नगरमें बहुत ही विन्न कर रहा है, इसलिये हे राजन ! अपने श्वसरकी सहायताको चले। ।

यह वात सुनकर राजा श्रीणक विचारने लगे, क्या करना चाहिये ? जो जाता हूं तो वह विद्याधर और मैं भूमि-गोचरी हूं। मार्ग भी विषम है। किस प्रकार पार पड़ेगा ? और नहीं जाता तो मांग, जो कि एक गरीवकी भी कोई नहीं ले सक्ता है तो मैं मंडलीक राजा हं, जाती है यह बड़े लज्जा तथा कायरपन की बात हैं। इस प्रकार दुचित्ते हो राजा चि-तातुर थे कि वह बिद्याधर फिर कहने लगा—" हे राजन्! वह रज्जचूल बहुत ही पराक्रमी है, बलवान है, सेन्या भी बहुत है सिवाय इसके विद्याधर है। रास्ता अति ही विषम है। मूमि-गोचरी वहांपर जा नहीं सक्ता है।

यह वचन सुनकर स्वामी (जंबू कुमार) बोले---

"अरे मूर्स ! तू ये क्या वचन बोल रहा है ? समाके मध्य रलचूलकी प्रशंसा करके राजा श्रीणकको छोटा बता रहा है । काम पड़े बिना हे अजान ! तूने कैसे जान लिया कि राजा श्रेणिककी गम्य नहीं है। चुप रहो । ऐसे वचन फिर सभोंमं न कहना । "

तब विद्याघर कहने लगा-" हे कुमार! तुम अभी बालक हो। युद्धके विषयमें नहीं समझते, । इस लिये शीव्रता करना उचित नहीं है। व्यर्थ सेंद्र मत करो।"

यह सुनकर स्वामीने कहा—''बालक (कण)अग्नि, एक क्षणमें काष्टका समृह भस्म कर देता है। सिंहका बालक क्षणमात्रमें मदोन्मत्त हाथीका कुंमस्थल विदार कर ढालता है। देखो, लगाम (बाग) और अंकुश तो छोटेर ही होते हैं, परंतु घोड़े और हाथीको वश करलेते हैं। रामचंद्र, लक्ष्मण म्मिगी-

चरी ही थे, सो रावण शतिहरिको जीतकर सीताको ले आये और लंका वश की । तासे रे विद्याधर ! छोटी वस्तुको | हीन न समझना ''। ऐसा विद्याधरसे कह राजा प्रति पार्थना की-'हे नाथ! यह कोई कठिन कार्य नहीं हैं। आज्ञा हो तो कर आऊं।'

राजाने स्वामीकी बात सुन कर प्रसन्न हो कुंवरको बीड़ा (कार्य सुफल करनेका भार) देकर विद्याघरसे कहा--" कुंवरको कुशलपूर्वक ले जाव"। विद्याधरने सहर्ष स्वीकार किया। स्वामीने वहांसे घर आकर अपने मातापिता की आज्ञा ले कर प्रयान किया। सो थोड़ी देरमें विद्याधरके साथ विमान-द्वारा केरलपुरमें पहुंचे, और वहांका सब बृतांत पूछा तो माद्यम हुवा कि मृगांक तो गढ़ (किला) में डरके मारे बेठ रहे हैं और चहुं ओर रबचूलका दल फैल रहा है।

यह हाल सुन स्वामी दूतका भेष धर रत्न चूलकी सेन्यों गये और मली मांति देलकर ड्योडीपर पहुंचे और
द्वारपालसे कहा-राजासे खबर करो कि राजा मृगांकका
दृत आया है। और आपसे व्याहके सम्बन्धमें कुछ कहना
चाहता है। द्वारपालने राजासे जाकर विनय की और शीम्र ही
स्वामीको अन्दर ले गया। रवामीने अन्दर जाकर राजाको
नमस्कार (जुहारु) नहीं किया और यों ही खड़े हो गये।
तब राजाने कहा--'' अरे अजान! तुझे दृत किसने बनाया

है शतु दूतका व्यवहार तो कुछभी माल्स नहीं है। तूने आकर नियमानुसार जुहारु क्यों नहिं किया ? "

तब यह बचन मुनकर स्वामीने रिस (थोड़ा क्रोध) हो कर कहा, कि जो राजा अनीति करता है उसे कोई नमस्कार नहीं करता।

तब राजा बोले-"अरे बालक ! तुझे क्या वाय (रोग जिसमें वावले की तरह बकते हैं) है। गई हैं । मला, कह तो सही मैंने क्या अनीति की है ? बालक जानकर मैंतो तुझे कुछ नहीं कहता हं, परंतु तृ उत्तरा हमही को दोष देता है । तब कुमार (स्वामी) ने हंसकर कहा कि आपको अपनी अनीति नहीं दीखती है सो ठीक है-" अपने माथेका ति-कक सीधा देहा बिना द्षेण आपहीको दृष्टि नहीं पड़ता।"

लीजिय सुनिये, आपकी यह अनीति है कि—

" जास मांग सो ही वरै, देश देश यह रीति।
श्रेणिक मांगस तु चहे, यही सु महा अनीति "।।

इस लिये हो विद्याधर राजन् ! आप इस खोटी हठको छोड़ निज देशमें जावो और मुखसे राज करो । देखो, पहिले रावण, की चक वगरः जो अनीतिवान परित्रय लंपटी राजा हुवे, बे इस भव दुःख और अपकीर्ति सह कर परभव नकीदि कुगति को प्राप्त हुवे हैं। इस लिये यह हठ अच्छा नहीं हैं। तन राजा को ध कर ने छा-'' लड़ कपन मत कर । अभी तुझे भेरे पराक्रम की खनर नहीं है। निना निचारे दीठ हो नो के करता है। आजहीं में मृगांक को नांध कर उसकी पुत्रीसे पाणि महण करूंगा ''। तन स्वामीने उत्तर दिया—

"अरे राजा! अवभी तुम चेत जावो। जान कर विष खाना अच्छा नहीं है। देखों! काग भी आकाशमें तेरे समान उड़ता है, परंतु बाणके लगते ही प्राण खों बैठता है। तासे जो तू अपनी कुशल चाहता है, तो इस दुराशाको छोड़कर श्रेणिक राजाके पास जाकर अपनी क्षमा मांग। और प्रकार तेरी भलाई नहीं है।"

ऐसी ढीठपनेकी बातोंसे रत्न बूरुसे रहा नहीं गया और कोध कर बोले--''इसने मेरी कुछभी विनय नहीं की और सासने निंदा करता है। बिंहरें ले जाकर इसे मार डाले। ''

यह आज़ा होते ही सुभट होग कुमार (स्वामी) को लेकर बाहर आये, तो दर्शकगण हाय हाय करने लगे कि क्या आज यह सुंदर बाहक मारा जायगा १ परंतु क्या करें १ राज आज़ा शिरोधार्य है। करना ही पड़ेगी। "सो ठीक ही है-

> " पलित जानवर भार्या, नौकर बंधुवा सोई। पराधीन इतने रहें, रंच न सुख इन होई॥"

नौकरको मालिक ही की हां में हा करना पड़ती है। चाहे तो म्वामी अन्याय करे, परंतु नौकरको तो उसे न्याय ही समझना पहता । नौकरी और नकारसे तो देर ही रहता है के स्थार्थ है—कोई पूर्व पापके उदयसे ही यह करनी पहती है के संसारमें जो कुछ सुख है सो स्वाधीनताका और वह स्वाधीनता संसारियोंको कहां है ? वह तो उन निष्पृत्री परम पुरुषोंको भवस्सर है कि जो तृणवत् संसार त्यागकर सबे स्वाधीन अतेंद्री सुखोंका अनुभव कर रहे हैं । धन्य हैं वे! इस प्रकार पराधीनताकी निंदा करते हुवे छे चछे।

जब युद्ध क्षेत्रभें लेजाकर स्वामी के ऊपर उन्होंने शक्ष प्रहार किया, कि स्वामीने वज्र दण्ड जो इनके करमें था उससे अपना बचाव कर, उसी फिरं उन्हें लोटाकर मारा, तो दश वीस सुभट यहां वहां गेंद की तरह लुड़कने लगे। फिर तो क्या! स्वामीने मानो हिंह रूप धारण कर लिया हो, इस प्रकार लड़ने लगे। और संपूर्ण सेना स्वामी के ऊपर टूट पड़ी, सो कितने ही तो मुष्टी प्रहारसे प्रयाण कर गये, कितने घायल हुवे, कितने ही भागकर पीले रक्षचूल के पास गये और कहने लगे कि यह रही आपकी नौकरी। जीवते बचेंगे तो बहुत कमा खायगे। कोई कुछ कहे, कोई कुछ कहे। तात्पर्य कि बात-की बातमें स्वामीने आठ हजार सेना थितर विश्वर कर दिया।

'तम राजा रजनूरु, स्वामीका अतुरु पराक्रम और अपनी सेन्य की दुर्दशा देखकर स्वयं स्वामीके सन्मुख आया। उधरसे गगनगति विद्याधर जो स्वामीको से आया था, आ गया और अपना विमान स्वामीको दे दिया तथा और कितने ही दिव्य इस्स लाकर दिये। दोनों में घमसान युद्ध होने लगा। एक तरफ तो स्वामी अकेले और दूसरी दरफ सब सेन्या सहित राजा रज़नूल।

यह कौतुक राजा मृगांकके दृत जो गढ़के कपर देख रहे थे, जाकर सब हाछ राजा मृगांकसे कहा —

''हे राजन! नहिं माल्य एक कौन अतीव बल्रधारी पुरुष, जो देवोंसे भी न जीता जाय, महारूपवान तेजश्वी अल्प वयस्क सुभट कहांसे आया है, जो राजा रत्नचूलकी आठ हजार सेना विध्वंस कर साम्हने लड़ रहा है। एक तर्फ तो वह वीर अकेला है। दूसरी तर्फ रत्नचूल सेन्या सहित है। क्या जाने अनीति देख कोई देव ही आ गया है या राजा श्रेणिकने सहायतार्थ भेजा है " इत्यादि।

यह समाचार राजा मृगांकने सुनकर शिव्र ही अपनीं सेन्या सिहत युद्ध क्षेत्रको प्रयाण किया देखते ही आश्चर्यवंत होकर स्वामीसे प्रार्थना की—'' हे नाथ! आपतो रत्नचूलका साम्हना करें और सेन्याको में देखता हूं "-यहां रत्नचूलने सृगांक की सेन्या आते देखी, सो विस्मयवान हो पूछा--'' अरे मंत्री! यह किसकी सेन्य आरही है ?'' मंत्रीने उत्तर दिया--'' महाराज! यह राजा मृगांक सहाय पाकर सेन्या सिहत आ रहा है "।

बस, देखते ही देखते दोनों सेन्य परस्पर भिड़ गई और घमसान युद्ध होने लगा। हाथींसे हाथी, घोड़ेसे घोड़े, प्यादेसे प्यादे लड़ने लगे, रथोंसे रथ जुटने लगे, वीरोंको ज़ोड़ा (तेज़) बढ़ने लगा और कायरोंके हदय फाटने लगे। इस प्रकार नीति-पूर्वक युद्ध होने लगा। स्वामी रलचूलके सन्मुख युद्ध करने लगे। सो थोड़ी सी बार (समय) में रलचूल का रथ तोड़ भूमि पर गिरा दिया। ज्यों ही रलचूल उठ कर दूसरे रथपर चढ़ने वाले थे कि स्वामीने आकर जोरसे मुष्टपहार किया! जिससे वह अररर कर भूमिपर लौटने लगा। तब कुमार (स्वामी) ने उसकी छातीपर लात दे कर दोनों हाथ बांधकर रलचूलको खड़ा किया। बस, फिर क्या था। रलचूलको बंधा देख उसकी सब सेन्या इधर उधर भागने लगी। स्वामीन सबको दिलाशा दे कर शांत किया।

वहां राजा मृगांकने यह समाचार सुने, सो तुरंत ही पैदल आकर स्वामीको नमस्कार कर, विन्ती करने लगा--" हे नाथ! आपके प्रसादसे ही आज मेरी विपत्ति गई। आज ही मेरा आपके प्रतापसे उदय हुवा। धन्य है आपका साहस और पराक्रम!" इस प्रकार स्तुति करने लगे। जय जय ध्वनि चारों तरफ होने लगी। दुंदिभ बाजे बजने लगे। पुष्पवृष्टि होने लगी। यहां तो यह खुशी हो रहीथी, वहां स्वामी कुछ भोर हो विचार कर रहे थे, कि हाय! हाय!! एक जीव के मारने-

का ही बहुत पाप है, फिर तो मैंने आज अगिणत जिब मार डाले। सत्य है—

" उदयागत लागो फिरे, जहां चाहे जहां जान। भोगे विन नहिं छूट है, कोटि न करो उपाय "॥ वहांपर विद्याधर इनकी प्रशंसा कर रहे थे। इतनेमें गगनगति रत्नच्ल (जो बंधा हुवा था) की तर्फ इशारा करके बोले--'' देखी, आज मृगांकने तुमको जीत लिया कि नहीं?" यह सुनकर ही रत्नच्लको कोध आया और बोला--

" राव मुगांक स्याल सम, मैं गज सम तस अग्र । सिंहरूप स्वामो भये, जीते सुभट समग्र ॥"

तब मृगांक कोप कर कहने लगा-मनमें कुछ रह गई हो तो अब सही। आ जावो। तब रलचूल स्वामीसे प्रार्थना कर कहने लगा-नाथ! कृपा कर छोड़ दिजिये, सो स्वामीने उसे छोड़ दिया। फिर उन दोनों में पुनः परस्पर युद्ध हुवा। दोनों अपने अपने दाव पेंच लड़ाते. घात बचाकर आक्रमण करते, इस प्रकार बहुत समय तक युद्ध हुवा। अंतमें रलचूलने नाग पांस डाल कर राजा मृगांकको बांध लिया और घरको लेकर जाने लगा।

यह हाल देखकर स्वामी बोले--" अरे दुष्ट! तू मेरे देखते हुवे, इसे कहां लेकर जाता है शब्बेड, छोड़ और जो अपनी कुशलता चाहे, तो मृगांकको नमस्कार कर।" यह सुनकर रज्ञचूल अपने पूर्व बंधनकी सुध भूल कर पुनः कोधित होकर स्वामीके सन्मुख युद्धके लिये आया। सो ठीक है-

> '' होनहार मिटती नहीं, लास करो किन कीय। कर्म उदय आवे जिसो, तैसी बुद्धि होय॥''

तब फिरसे घोर संग्राम होने लगा। सो बोड़ी सी देर-ही में स्वामीने रलचूलको फिरसे बांध लिया । तब पुष्पवृष्टि होने लगी, देवदुंदिभ बाजे बजने लगे। मृगांककी सेनामें हर्ष और रलचूलकी सेनामें शोक फैल गया। स्वामीने राजा मृगांकके बंधन खोले और रलचूलकी भागती हुई भयभीति सेन्याको ढाडस (संतोष) दिया। तब राजा मृगांक स्वामीसे विन्ती करने लगे-''हे नाथ! अब नम्रमें प्रधारिये।''

तव स्वामीने स्वीकार किया और हाथी पर आरूढ होकर सकल सेन्या सहित प्रयान किया। मगांक राजा स्वामीके ऊपर छेंत्र किये चमर ढोरते हुवे चले। नगर सब अच्छी तरह सजाया गया और घरोंघर आनंद बधाई होने लगी। इस समयकी शोभाका वर्णन नहीं हो सक्ता है। नारीयोंके समूह जहां तहां मंगल कलश लिये खड़े हैं। यहां तो जीतका हर्ष, यहां स्वामीके अपूर्व दर्शनका लाभ, फिर खुशीका पार ही नहीं रहा। लोग अपने अपने भाग्यकी सराहना करते कहते थे- "अहो भाग्य! आज हमें ऐसे महान् पुरुषका दर्शन हुवा! धन्य है इनकी माता, जिसने ऐसा तेजस्वी पुत्र पैदा किया और धन्य इनके पिता, जिनने लाड़ प्यारसे पाला। धन्य है गुरु, जिनने अपूर्व विद्या सिखाई। वह भूमि धन्य है जहां ये पग रखते हैं। वे वस्त्राभूषण पवित्र हो गये, जिन्हें स्वामीने पहिर लिये। वे नदी नाले धन्य हैं, जहां स्वामी जल कीड़ा करते हैं।"

इस प्रकार पुरजन नरनारी सराहना करते थे और आशीर्वाद देकर स्वामी के ऊपर पुष्प वर्षा करते थे। इस प्रकार स्वामी नगरजनोंको हर्षायमान करते और उनके द्वारा सन्मान पाते तथा सबको यथोचित पुरस्कार देते हुवे चले जा रहे थे।

इनके अनूपम रूपको देखकर नरनारी अत्यन्त विह्नल हो जाते थे। कोई स्त्री बालकको दूध प्यावतीं थी सो स्वामी आनेकी खबर सुन एकदम दोड़ पड़ी, बालक पृथ्वीपर जाय पड़ा, उस-की उनको कुछ भी सुध न रही, कितनी अंजन दे रही थी, सो एक ही आंखमें आंजने पाई थी, सवारीकी आवाज सुनकर अंजनकी डव्यी हाथमें लिये और एक अंगुलीमें स्थाम अंजन लगाये योंही दौड़ आई। कोई पतिको परोश रही थी, सो हाथमें करछी लिये दरवाजा बाहिर चली आई। कोई वस्त्रवरूल रही थी सो आधावस्त्र पाहरें संभालती हुई आगई। कोई घर बुहार रही थी, सो बुहारी लिये चली आई। कोई पानी भरने जा रही थी, सो रास्तेमें अटक रही। जो पानी भर रही थी, सो कुवेमें घड़ा डाले हुवे योंही रह गई। जो पुरुष

दूकानोंमें बैठे हुवे रोकड़ें गिन रहेथे, सो स्वामीको देख इकदम उठकर चले, रोकड़ विखर गई, पर उन्हें कुळें भी ध्यान नहीं। जो तोल रहेथे सो ऐसे विह्वल हो गये कि आटे के बदले वांट माहकोंके पछेमें डालने लगे। कुछका कुछ तोल देने लगे। तात्पर्य कि उस समय नरनारियोंका कुछ विचित्र हाल था। कोई कहता था—देव है, कोई कहता कामदेव है, इस हालत हो रही थी।

जब कुमार (खामी) रामभवनके निकट पहूंचे, तो रत्नचूलको छोड़ दिया और मले वस्नामृषण पहिनाकर स्वामी बोले—''हे राजा! मुझे क्षमा करो, मैंने आकर यहां आप लोगोंको बहुत दुःख दिया''। तब स्वामी की बात सुनकर रत्नचूल विनय सहित कहने लगा—''हे नाथ! आप तो क्षमाधर हैं, कहां तक प्रशंसा करुं मेरा धन्यमाग्य हैं, जो यह उगद्रव न किया होता, तो आप जैसे पुरुषोत्तमका दर्शन मुझ भाग्यहीनको कहांसे होते ! आपके प्रभावसे में दुराचारसे बच गया। बहुत क्या कहूं ! आपही मुझे कुगतिमें गिरनसे रोकनेवाले हैं। इस लिये नाथ! अब मुझे विशेष लाजित न कीजिये।''

ऐसे दीन बचन रत्नचूरुके सुनकर स्वामीने मिष्ट शब्दोंमें संतोष दिया । राजा मृगांककी रानी स्वामीके आगमनके शुभ समाचार सुनकर मंगरु करुश से सन्मुख आई और मैजुरू, राजा मृगांककी पुत्री (और राजा श्रेणिककी मांग) वस्नाभूषणों सिहत आकर कुंवर (स्वामी) के ऊपर से निछरावल करने लगी।

इस तरह जब स्वामी रनवासमें पघारे, तब रानीने दहीं अंगुरीमें ठेकर स्वामीको तिलक किया और गदगद होकर स्तुति करने लगी—''हे नाथ! यह सुहाग आज तुम्हींने दिया है। आपही के प्रतापसे पतिके दर्शन हुवे। आपके जैसा हितैषी हमारा और कोई भी नहीं हैं। धन्य हैं, आप की परोपकारता को और साहस को कि स्वदेशं छोड़कर पघारें "। इस प्रकार बहुत ही उपकार माना। स्वामीने भी यंथायोग्य मिष्ट वचनोंसे उत्तर दिया। पश्चात् पटरसयुत विविध प्रकारके मोजन तैयार किये गये। सो स्वामीने जीमकर शयनागारमें शयन किया।

एक दिन इस प्रकार राजा मृंगाकके यहां अतिथि (महमान) रूपसे रहे, फिर दूसरे दिन कहने लगे—''अब तो राजगृही को जाऊं, ऐसी मेरी इच्छा है।'' स्वामी के ऐसे बचन किसको अच्छे लगे? सब हाथ जोड़कर बोले—''हे नाथ! आप दश दिन और इस दीन के यहां ठहेरें। आप के रहने से हम लोगों की परम शांति मिलती है। पश्चात् आपकी इच्छा प्रमाण जो आज्ञा होगी सो करेंगे। आज तो एक दृत्रे के द्वारा सब दुशल समाचार मेज देना चाहिए, ताकि आपके मातापिता और राजाप्रजा सबको शांति मिले।''

स्वामीने यह बात स्वीकार की । तब राजा मृगांकने सुबुद्ध नाम दूत को बुला कर कहा—''हो दूत ! तुम राजगृही नगर को जावो और वहां के राजा श्रेणिक तथा स्वामी के पिता अहेदास श्रेष्टी और माता जिनमती से यहां के सब कुशल-समाचार कहो, और दश दिन पीछे स्वामी भी पधारेंगे यह भी कहियो, तथा योग्य भेंट वस्नाभूषण यहां से लेजाकर उनके भेंट में धरो। "

रत्न चूछ राजा यह सुनकर बोले-'हे राजन्! जैसी आप की सुता, तैसी ही मेरी भी है। सो मेरे और आप के यहां जो जो सार वस्तु हो सो सब ही उन्हीं की है। ऐसा दोनों राजावों ने विचार कर और बहुत से विद्याधर सेवकों को बुल- वाये और उनके हाथ बहुतसी संपत्ति देकर विदा किया। सो वे विद्याधर स्वामी की आज्ञा पाकर हवा की तरह आकाश मार्गसे एक क्षण मात्रमें राजगृही आ गये, और राजा श्रेणिक के सन्मुख नमस्कार कर अल्प मेंट जो लाये थे सो अर्पण करके, केरलपुरकी जीत और स्वामी के आगमनके समाचार कहे। यह सुनकर राजा अति प्रसन्न हुवे और तुरंत ही यह समाचार श्रेष्टी अर्हदास के पास मेजे तथा स्वामी का पत्र और वह सामग्री भी सेठ के पास मेजी। सेठ और सेठानी अति ही प्रसन्न होकर उन आगन्तुक विद्याधरोंसे पूछने लग कि-'आप लोगोंने कैसे हमको पहिचान लिया ?' तब-

" नभचर बोले जोर कर, छुनो मात हम बात । विश्व विभूषण तुम तनय, जगत भये विख्यात ॥"

सो ठीक ही है। चाहे हजार हू बादल क्यों ना आच्छादित करें तथापि दिनकर (सूर्य) को लोप नहीं कर सक्ते हैं। हे माता, हे पिता! आपके पुत्र कुल नहीं, देश नहीं, परंतु विश्व के भूषण हैं, फिर भला, आपको कौन न पहिचानेगा? जिस दिशासे सूर्यका उदय होता है, उसे ऐसा कौन अजान होगा जो न जाने? अर्थात् सब ही जान्ते हैं।

यह वार्ता सुन कर सब पुरजन तथा वे चार सेठ (जिन-ने अपनी अपनी कन्या देना स्वीकार किया था) सो बहुत आनन्दको प्राप्त हुवे। सब लोग घड़ी घड़ी गिनने लगे, कि कब ये १० दश दिन पूरे होवें और हम लोग स्वामी का दर्शन करें। सो समय तो अरोक चला ही जाता है। केरलपुर-में तो दश दिन दश घड़ी के समान निकल गये। परंतु राज-गृही में दश दिन दश वर्ष से भी अधिक हो गये, बड़ी कठि-नता से पूरे हुवे। सो ठीक है—

- " जात न माछम होत है, सुख में सागर काल।
 एक परुक भी ना कटे, दुःख वियोग में हाल।
- दिवस सरीखा राजगृही, अरु केरलपुर मांहि।
 उतके जात न जान हीं, यहां सो बीतत नांहि॥

वस्तु जगत सब एकसी, कही गुरु बतलाय। राग द्वेष वश लख परे, मली बुरी अधिकाय॥"

इस तरह से दश दिन पूर्ण हुवे और स्वामीके मनमें संसार के चित्रिसे उदासीनता हुई, सो इनको यह सब बस्तु आडंबर रूप दिखाई देने लगी। कभी तो यह विचार कर कि अब दश दिन हो गये सो शिष्र ही घर पहूंच कर इच्छित कार्य करूंगा (जिन दीक्षा धरूंगा) खुश होते और कभी अनुपेक्षा (भावना) का चिंतवन और तत्वस्वरूप विचार कर समभाव धारण कर उदास हो रहते। सो स्वामी की तो यह दशा हो रही थी, वहां विद्याघर यह विचारते थे कि यदि स्वामी कुछ और निवास करें तो अच्छा हो। यह विचार कर अनेक प्रकार राग रंग करते थे। ताकि दिनों की गिन्ती ही याद ना आवे। सो ठीक है—

"अपनी अपनी गरज़ को, इस जग में नर सोय। कहा कहा करता नहीं, गरज़ बावरी होय॥"

परंतु स्वामी कन मूलनेवाले थे? उनकी तो अवस्था-ही और रूप थी।

> "स्वामी चित्त वैराग्य अति, नभचर मन बहू रंग। अवसर बन्यो विचित्र यह, केर बेर को संग॥"

उनको तो ये सब राग रंग हलाहल विष और तीक्ष्ण शस्त्र से भी भयंकर दिल रहे थे। सो राजा मृगांक को बुला कर कहा कि अब आपके कथनानुसार अविष पूर्ण हो गई, सो हमको बिदा दीजिये, और रलचूल से कहा कि आप भी अपने नम्र को पथारें और प्रजाके सुख दुःलकी खबर करें तथा मुझ पर क्षमा करें। ये बचन सुन कर दोनों राजा कहने लगे—

> ''आज्ञा सुनत कुमार की, बोले द्वय खगनाथ। राजगृही तक हम उभय, चलिए तुम्हरे साथ॥''

हम लोग भी साथ चलेंगे और मातापिता तथा राजा श्रेणिकके दर्शन करेंगे। तब स्वामीने कहा-जो चलना है तो अब विलंब मति करो, शीष्ट्रही चलना चाहिए, क्योंकि समय अमोल है। ''जाते हुवे जाना नहीं जाता और गया हूवा फिर फिर पीछे मिलता नहीं है। इस लिये उत्तम पुरुषोंको चाहिये कि जो कुछ कार्य करना हो, शीष्ठही कर लिया करें।''

स्वामीकी आज्ञा प्रमाण दोनों विद्याधर राजा मृगांक और रलचूल अपनी अपनी रनवास सिंहत और योग्य मेंट लेकर तथा पुत्रीको भी साथ लेकर आकाश मार्गसे क्षणमरमें राजगृही आये। राजा श्रेणिक तथा पुरजन लोग स्वामीका आगमन सुनकर अगवानीको आये और सबने परस्पर मेंट मिलाप किया। परस्पर "जुद्दारु" करके कुशल समाचार:

पूछे और मिलकर सबने नगरकी भोर प्रयान किया, सो नगरके लोग बहुत खुशी हुवे।

> " निर्खत कुंबर सबिह हर्पाये, मनहु अंध फिर छोचन पाये "

जब प्रथम राजमहरूमें आये, तो राजा श्रेणिकने कुमारको अर्द्ध सिंहासन पर बैटाया और सबको यथायोग्य स्थान दे सन्मानित किया, तथा कुश्चरुक्षेम पूंछने बाद राजा, स्वामीकी मिष्ट बचनोंमें स्तुति करने रुगे-

"ह कुमार! आपके प्रभावसे हमको अलभ्य वस्तु प्राप्त हुई। धन्य है आपको कि जो कार्य अगम था उसे भी आपने सुगम कर दिया "। तब स्वामीने भी शिष्टाचारपूर्वक यथोचित उत्तर दिया और फिर राजासे सब खगराजा जो आये थे उनका परिचय कराया। सभी परस्पर जुहारु कहके प्रीतिसहित मिले, और स्वामीका उपकार मानने लगे कि आपही के प्रभावसे हम सब मिले हैं, इत्यादि प्रशंसा योग्य बचन कहे, फिर राजाका व्याह राजा मृगांककी पुत्रीके साथ बहुत ही आनन्दसे हुवा। स्वामी उदासीन रूपसे घरमें रहने लगे और अवसर विचारने लगे, कब वह समय आवे कि मैं जिन दिक्षा लेकर इस संसारके झगड़को मिटाऊं। कुछ दिन तक सब लोग रहे और फिर आज्ञा लेकर अपने २ निवास-

स्थानोंको पधार गये। राजा श्रेणिक भी निशंक होकर सुससे काल व्यतीत करने लगे।

इस प्रकार कुछ पिन वीते, कि एक दिन राजा सभामें बैठे थे और बनपालने आकर बिन्ती की-

'हे नाथ! इस नगरके समीप एक महा मुनिनाथ पधारे हैं, जिससे वनकी शोभा अतिशय हो रही है। सर्प और नौला, मूसा और बिलाव, सिंह और अजा आदि जातिविरोधी जीव परस्पर मैत्री भावसे निकट बैटे हैं।" यह समाचार सुन, राजाने वनपालको बहुत द्रव्य देकर संतोषित किया और सब पुरजन सहित कुमार (स्वामी) को लेकर मुनिकी बंदनाको चले। सो जब निकट पहुंचे, तब बाहनसे उत्तरकर पांव पयादे सन्मुख जाकर अष्टांग नमस्कार किया। मुनिने धर्म बृद्धि दी और सबको धर्मका स्वरूप समझाया। तब स्वामीने गुरुकी स्तुतिकर नम्री-भूत हो पूछा—'' हे नाथ! मेरे भवांतर कहो।''

सो वे सुनि अवधिज्ञानी, स्वामीके भवांतर कहने लगे। स्वामीको भवांतर सुनकर अत्यन्त वैराग्य हुवा। सो ठीक है—

" पहिले हि से विरक्त थे, तापर सुन भवसार। और धर्म गुरू जब दियो, फिर को रोकनहार॥"

स्वामी तुरंत ही कहने लगे---

"हे नाथ! मैंने इस थोड़ीसी जिन्दगीमें ही घोर कमींका बंध किया है। यथार्थमें यह संसार मरूस्थल समान असार है और आप कल्पनृक्षके समान सुखदाता हैं। अनादि कालसे मोहनींदमें सोये जीवोंको जगानेवाले हैं। सचे करुणा-सागर आप ही हैं। मुझे भी अपना सेवक बनाईये और दिक्षा देकर भार उतारिये।"

तब स्वामिक बचन सुनकर मुनिवर बोले - '' हे बत्स ! अभी तुम घर जावो, पीछे आना तब दिक्षा देवेंगे।'' तब गुरुके ये बचन सुनकर राजा हिर्षत हुवे और सराहना करने लगे -

धन्य धन्य गुरु राय तुम, सब ही को मुख दैन। परम विवेकी समय लख, कहे उचित ये बैन॥ (बचन)

और उठकर गुरुको नमस्कार कर विदा हो, स्वामीका हाथ पकड़के साथ ही रथेंम बैठालकर नगरको चले। सो यद्यपि स्वामीको नगरमें जाना अच्छा नहीं लगता था, परंतु गुरुजनोंकी आज्ञा भी लोपना उचित नहीं है, ऐसा समझकर नगरकी सोर प्रयान किया। सो ठीक ही है-

" चाहे मन भावे नहीं, तऊं गुरुजनकी सीख। कबहूं मूल नहिं लोपिये, लोपें मांगे भीख॥"

और स्वामी घरको अंथि, माता पिता बहुत खुशी हुवे,

खीर स्नेह कर कहने लगे—" हो पुत्र ! उठो, महलों में अन्दर पधारो और ये भोगोपभोगकी सामग्री तैयार है सो भोगो, तथा हम लोगोंके नेत्रोंको तृप्ति देवो। आपको आनंदित देखकर ही हम लोगोंको आनन्द होता है। सो ठीक है—

> कीड़ा करत बाल लख सोई, मातु पिता मन अति सुख होई। "

तव संसारसे पराङ्मुख स्वामी अपने माता पिताके इन स्नेहयुक्त बचनोंको सनकर बोले-" हे पिता! यह इन्द्री-भाग तो हमने अनादि कालसे भोगा। सो जब ईंद्रादिकी विभवको भोगकर भी तृप्ति नहीं हुई, तब इस श्रुद्ध आयुवाले मनुष्य भवमें क्या ताप्ति होवेगी ! इसमें तो वह अर्प्व काम करना चाहिये जो कि न तिर्थंच,न नारकी और न देव ही कर सक्ते हैं। इन्द्रों विषय तो चारों ही गांतमें प्राप्त हो सक्ते हैं, परंतु अतेन्द्री मृलकी प्राप्तिका साधन सिवाय इस मनुष्य पर्याय भी अन्य किसी भी पर्यायमें नहीं हो सक्ता हैं। इस लिये हे पिता ! अब मुझे शीघ्र ही उस अखंड, अविनाशी, चिर-स्थायी, सचा, आत्मिक मुख प्राप्त करनेकी (जिन दिशा लेनेकी) आज्ञा दिजिये, क्योंकि पथम तो इस कालमें आयु-ही बहुत ही थोड़ी है, और उसमेंसे भी बहुतसा भाग पूर्व आयुका चला गया है। शेष भी पल घड़ी दिन पक्ष ऋतु करके निकलता जा रहा है, और गया हुवा समय फिर नहीं आता

है। इस लिये अन विलम्ब करना उचित नहीं है। आज्ञा दीजिये, मैं आज ही दिक्षा लंगा।''

यद्यपि ये बचन स्वामीके अत्यन्त हितरूप थे और स्वामीको तो क्या संसारी जीवोंको धोखेकी टहीको तोड़कर (संसारके बंधनसे) निकालने वाले थे, परंतु मोहबश ये बचन माता पिताके हृदयमें तीरका काम कर गये। सो ठीक है—

> , " लख न परत हित अनहित कोई। जाके उदय मोह अति होई॥ "

सो स्वामीसे कहने लगे—'' हे पुत्र ! ऐसे बचन क्यों कह रहे हो ? क्योंकि जैसे अंधेको लकड़ीका सहारा होता है, उसीके अनुसार आपका हम लोगोंको सहारा है। यह बाल अवस्था है। अभी आपका शरीर तप करने योग्य नहीं है। कुछ दिन मोग कीजिये पश्चात् योग लिजिये। यद्यपि स्वजन और पुरजन जो लोग इस खबरको सुनकर आये थे, सो सभी नाना प्रकारसे स्वामीको समझाने और विषयों में फंसानेकी चेष्टा करते थे। परंतु कुमार (स्वामी) के चित्त पर कुछ भी असर नहीं कर सक्ता था। सो ठीक है—

" अनुभवके अभ्याससे, रच्यो जो आत्म रंग, कहो ताको त्रैलोकमें, कौन कर सके मंग?"

जब अईदास सेठने देखा कि स्वामी किसी प्रकार भी नहीं मान्ते, तब उन्होंने उन चारों सेठोंको, जो अपनी कन्याएं स्वामीको व्याहना चाहते थे, यह समाचार मेजे। उन लोगोंने ये समाचार सुनकर और अत्यन्त व्याकुल होकर अपनी २ पुत्रीयोंको बुलाकर कहा—''ऐ पुत्रीयों! जंबूकुमार तो विरक्त हुवे हैं और वे दिक्षा आज ही लेना चाहते हैं। इस लिये अब जो हुवा सो हुवा, हम लोग तुम्हारे लिये और कोई उत्तम रूपवान वर सोध लावेंगे।"

तब वे कन्याएं अपने पितावों के इस कुरिसत वाक्यको सुनकर बोली—''हे पिता! या भवमें हमरे पित, हैं गे जंबूस्वामी; और सकल नर आप सम, मानो बच अभिराम। इस लिये अब आप पुनः ये बचन मुंहसे न बोले। बड़े पुरुषों द्वारा कुलीन कन्याएं इन शब्दोंको सुन नहीं सक्ती हैं। प्राण जानेसे भी अत्यन्त दुःखदायक, घृणित् लज्जाजनिक अपशब्द, हे पिता जनो! आपको कहना उचित नहीं है। क्या कुलवान कन्याएं कभी स्वममें भी ऐसा कर सक्ती हैं कि एक पुरुष साथ जब उनका सम्बन्ध निश्चित हो गया और जब उन्होंने उसे अपने मनसे व्याहनेका संकल्प कर लिया, तो फिर किसी दूसरे से संबन्ध की वात चीतको भी कानसे सुने श क्या आपने राजमती आदि सतियोंका चिरल नहीं सुना है शहस लिये और सब कल्पना

को छोड़ दीजिये और इसी समय स्वामी के पास जा कर यह बचन के आइये, कि आप आज तो हमारी कन्यावोंसे व्याह करें और कल पातःकाल दिक्षा लीजिये। इसीमें हम लोग अपने २ कर्मकी परीक्षा करेंगी। जो हमारे उदयमें सुख या दुःख आनेवाला है उसे कीन रोक सक्ता है? बस, अब यही अंतिम उपाय है। आप जावें, देर न करें।"

यद्यपि ये सेठलोग कन्यावों के इस कथन से संतुष्ट नहीं थे, परंतु करे ही क्या ? कुछ वश नहीं रहा । निरुत्तर होकर स्वामी के पास आये और आद्योपांत सब वृतांत कह कर विन्ती की —''हे नाथ! अब हम लोगोंको यही मिक्षा मिलना चाहिये कि आज तो हमारी कन्यावोंको व्याहिये और प्रभात दिक्षा लीजिये। स्वामीको यद्यपि क्षण क्षण मारी हो रहा था, परंतु अत्यन्त नम्र और दुःखित देख स्वामीने कबलः किया और उसी समय बरात लेकर व्याहको चले। सो व्याह कर रामके पहिले ही चारों स्त्रीयोंकी विदा कराकर पीछे लौट आये। गृहव्यविद्या को थे, सो सब हुवे। एक पहर रात्रि जब बीत गई, तब दासीने सेज्या (बिछोना) तैयार की और स्वामी भी यथा-योग्य स्वजनोंसे विदा लेकर पलंग पर जा पड़े। चारों स्त्रियां भी सलाह कर गई और अपनी २ चतुराई से स्वामी का मन चंचल करने ओर स्नी चिरत्र फैलाने लगीं।

सो नारोंमेंसे प्रथम ही प्रमिश्रीने अपना जाल फैलाना

आरंभ किया, कहने लगी—''ए पीतम्! जो आप मेरे कहनेकों न मानोगे, तो मैं अपनी सिलयों में इस तरह कहूंगी कि मेरा पित महा मूर्ल है। मेरी तरफ देखता ही नहीं है। वह श्रृंगार-रस को किछकुल नहीं जानता है। न हास्यरसही उसमें है। कला चतुराई तो समझता नहीं है और कोखशास्त्रका तो नाम-हीं उनने नहीं सुना। नायकामेद तो विचारे क्या समझे! अरी बहनों! उठो, इनके मनहीकी सही। तप करलों जल्दी से, जिसमें स्वर्ग भी मिल जावे। देखों तो इन की बुद्धि कहां गई कि सरोवर (इन्द्री विषय) को छोड़ कर ओसकी बुंद (स्वर्ग) की आश करते हैं! मला, जो गोदका छोड़ कर गर्भ की आस करे वह मूर्ख कैसा? "

तब तीनों बोली-''हे बहिन्! तू कहे जैसा।'' तब पुनः पद्मश्री कहने लगी-''किसी माम में एक क्रिकि काछी रहता था, सो उस के घर एक कमाऊ पुत्र और स्त्री थी। काल पाकर स्त्री मर गई। सो उस काछी ने और व्याह किया। जब वह नई काछिन आई, तो पित से मसन्न न हुई। पितने कारण पूछा, तो कहा कि-''तुम अपने लड़केको मार डालो तो मैं प्रसन्न होऊंगी, क्योंकि जब मेरे उदरसे बालक होगा तब यह उसे दासके समान समझेगा और बहुत दुःस्व देगा, इत्यादि।''

तव काछीने कहा-"प्यारी, जो उसे मारूं, तो राजा

दंड दे, स्वजन और जाति के लोग मुझे पंच बाहर कर दे, इस लिये यह अधमकार्य मैं कैसे करूं ? "

तब स्त्री बोली—''मैं तुमको उपायं बताती हूं, सो करो कि संबेरे आप दो हल लेकर खेतमें जावो और उनमेंसे एक हल पुत्रको दे कर आगे कर देना और मरखाहा बैल अपने हलमें लगा कर आप पीछे पीछे रहो, सो आंख बचा-कर बैल को ढीला कर देना। वह जा कर उसे सींग मार देगा। बस, पीछे से आप उसे मारने लगना और चिला देना, कि दौड़ियो, बैलने मेरे लड़के को मार ड़ाला। इस प्रकार कार्य हो जायगा और कोई भी न जानेगा।"

तव वह कामांध काछी इस बात पर राजी हुवा और यह सब बात किसी तरह उसके पुत्रने सुन ली। जब सबेरा हुवा तो काछीने लड़के को आज्ञा दी। कि हल लेकर खेत जोतने चलो। लड़केने वैसा ही किया। जब इक लेकर खेत में गया, तो धान का फ्ला और फला हुवा खेत जो था उसी में ही हल फेरने लगा। इतने में काछी आया और कोध करने लगा—'अरे मूर्ख! तू ने यह क्या किया कि चार महिने की कमाई खोदी। लड़का बोला—'पिताजी! इसमें क्या धान पोचा अनाज होगा? अब जोत कर गेहं चना बोवेंगे, सो वैशाख-में खाना।"

तब किसान (काछी) बोला-'बेटा! तू अत्यन्त मूर्ल है। हालका पका हुवा खेत तो महीमें मिलाता है और आगेकी आशा करता है। आगे क्या जाने क्या हो?' यह सुन बेटा बोला-''पिताजी! ठींक है, फिर मुझे मार कर आपको पुत्र होगा या नहीं, या कैसा होगा इसका आपने क्या भरोसा कर लिया है?" यह सुन काछी लाजित हुवा और दोनों मिलकर घर गये।" इसलिये स्वामी! प्रसन्न होवो। क्यों हंसी कराते हो?

इस प्रकार पद्मश्री जब अपनी चतुराई कर चुकी, तब स्वामीने कहा—"ए सुन्दरी! सुनो, एक महा नदी के तट कोई हाथी मरा पड़ा था। उसे बहुत से कौवे नौचकर खा रहे थे। अचानक ठहर आनेसे वह कठेवर पानीपर वहने लगा, सो बहुत से कौवे तो उड़ गये। परंतु एक अतिशय लोगी कौबा उसे खाता हुवा वहने लगा। इसी प्रकार वह दश बारह कोश तक निकल गया। इतनेमें एक बड़ा पगर निकला और उस कठेवर को निगल गया। तब वह लोभी कौवा उड़ा और चाहा कि निकल जांय, पर जावे कहां? चारों ओर पानी ही पानी भर रहा था, सो बहुत इधर उधर भटका। निदान लाचार हो उसी नदी के प्रवाहमें गिर कर वह गया। सो ए सुन्दरी! यदि वह कौवा अधिक लोभ न करता और दूसरे कौवोंके समान डड़ गया होता तो क्यों प्राण खोता?

" वायस जो तृष्णा करी, बूढ़ो सागर मांह। मो बूढ़तको काढ़ है, सो तुम देहु बताय॥" यह कथा सुन पद्मश्री निरुत्तर हुई। तब कनकश्री-दूसरी स्त्री कहने लगी-'' हे नाथ! सुनो, एक पहाड़ पर कोई बन्दर रहता था, सो एक समय अचानक पांव चूक जानेसे नीचे पत्थर पर गिरकर मर गया और कर्म संयोग विद्याधर हुवा। सो एक दिन मुनिके पास जाकर अपने भवांतर पूछे। सो मुनिने पूर्व वृतांत कह दिया। सुनकर वह विद्याधर घर गया और स्त्रीसे सब हाल सुनाकर कहने लगा कि एक वस्त पहाड़ परसे गिरा था सो बंदरसे मनुष्य हुवा हूं और अब जो गिरूंगा तो देव होऊंगा। स्त्रीने बहुत समझाया पर वह मूर्ख ना समझा। हठ करगया और पर्वतसं गिर पड़ा। सो-

" खग हठ कर गिरिसे गिरो, बन्दर हुवो निदान ।

त्यों स्वामी हठ करत हो, आगे दुःख निदान ॥ " .
सो " हे नाथ ! हठ भली नहीं हैं, प्रसन्न होवो । "

तब स्वामी बोले-'' सुनो ! विद्याचल पर्वत पर एक बंदर रहता था। सो बड़ा कामी, अपने सब साथियोंको मारकर अकेला विषयाशक्त हो बनमें रहने लगा। जो कुछ सन्तान होती थी उसे भी तुरंत ही मार डालता था। सो किसी बंदरीसे एक बन्दर हो गया और उसकी खबर बूढ़े बन्दरको न होने पाई। जब वह बन्दर जवान हुवा तब यह किमी बन्दर बूढ़ा हुवा, शा कि गईं, सो किसी समय वे दोनों आपसमें लड़ गये, सो वृद्ध बन्दर हार कर भागा और प्यांस लगनेसे पानी पीनेको दल दलमें बुसा, सो कींचमें फंसकर वहीं मर गया। सो ऐ सुन्दरी!

" कपि तृष्णा कर भोगकी, पायो दुःख अकत्थ्या

में चहुं गति जत्र दृषि हों, काढ्न को समरत्थ ॥ " यह कथा सुनकर जब कनकश्री निरुत्तर भई, तो विनयश्री तीसरी स्त्री कहने लगी-" हे स्वामी! सानिये। किसी ग्राममें काठ वेचनेवालां(लकड़हारा) रहता था, जिसने अतिशय परिश्रम करके दिन दिनभर भूखा मर मरके एक अंगुठी बनवाई और उसे यह सोचकर जमीनमें गाढ़ दी कि विपत्तिमें काम आवेगी । एक दिनकी बात है कि कोई बटोही उसके पास कुछ द्रव्य था, सो परदेश जाते समय ऐसे ही विचारसे अपना द्रव्य उसी जंगलमें गांद कर चला गया। उसे इस लकडहारेने देखकर खोदा तो बहुत द्रव्य था सो पसन होकर उसीके साथ अपनी अंगूठी भी रखकर गाइ दिया। उसे गाढ़ते हुवे किसी और ही बटोहीने देखकर वह द्रव्य वहांसे उलाड़ ली और ले गया। सो फिर जब वह लक्ड़हारा वहां आया और भूमि खुदी हुई देखी, पर द्रव्य न पाया सो हाय हाय करने और पछताने लगा कि वह लक्ष्मी गई सो गई और मेरी गांठकी भी साथ ले गई। सो ठीक है-

> " जो नर बहु तृष्णा करें, चोरें परकी वित्त । सो सो बेटें आपनो, साथिंई परकी वित्त ॥"

इस प्रकार हे स्वामी !

" परिपूरण धन होत भी, भोगो दुःख अपार । तिस सम नाथ न कीजिये, करूं विनय हितकार॥"

यह वार्ता सुनकर स्वाभी बोले -- " ऐ सुन्दरी ! सुनो, एक भयानक बनमें एक बटोही चला जा रहा था, सो उसे हाथीने देखा और वह उसके पीछे लगा सो भागते २ एक कुवेके किनारे झाड देख उसकी जड़ पकड़ कर कुवेमें लटक रहा । उस कुवेके नीचे तलीमें एक अजगर मूंह खोले बैठा था। बगलमें चारों तर्फ चार सांप फण उठाये हुवे फुसकारते थे । जडको मुसे सफ़ेद और काले दो रंगके काट रहे थे। झाडपर मध-मिविख्योंका छाता लग रहा था सो हाथीने आकर झाड़को हलाया और मिक्खियां उड कर बटोहीं के शरीरसे चिपट गई। इतनेमें एक मधु (शहद) की बूंद उस बटोही के मूंहमें पड़ गई सो उसे बड़े प्रेमसे सब दु:ख भूलकर चांटने लगा। इत-नेमें एक विद्याधर आया और समझाकर कहने लगा-हो बन्धू ! तू कहे तो मैं तुझे इस दु: खकूपसे निकालं। तन बटोही बोला-'मित्र! बात तो भली है, परंतु एक बृंद और आवे फिर तुम्हारे साथ चखंगा ।' ऐसा कह फिर ऊपरको, बूंदकी ओर देखने लगा। यहां विद्याधर भी अपने मार्ग लगे। वहां चूहोंने ़ जड़ कतर डाली सो वह बटोही बातकी बातमें अजगरके मुखमें जा पडा। सो ऐ सुन्दरी!

पंथी इन्द्री विषय वश, अजगर मुख गयो सीय।"
मैं जु पढ़ू भवकूपेंग, तो काढ़ेगा कोय।।"
भव बन, पंथी जीव, गज काल, सर्प गित जान।
कुवा गोत्र, मांखी स्वजन, आयू जड़ पिहचान।।
निगोद अजगर है महां, घोर दुःखकी खान।
विषय स्वाद मधु बूंद ज्यों, सेवत जीव अज्ञान।।
" सम्यक् रत्नत्रय सिहत, संवर करें निदान्।
विनयश्री इम जानियों, सोई पुरुष प्रधान।।"

यह कथा मुन विनयश्री निरुत्तर हुई, तब चौथी रूपश्री कहने लगी - 'स्वामी! आपने हमारी तीनों बिहनोंको ठग लिया। अब मुझे ठगो तब आपकी चतुराई है। इस प्रकार गर्वयुक्त हो कहने लगी-हे नाथ! सुनो, जब दो चार वरस पानी वरसा, तो बिल वगैरः में पानी भर गया, सो एक बिलवासी जीव दुःखी होकर निकल कर भागा। उसे देख कर एक सांप पीछे लगा। जब वह जीव बिलमें घुसा, तो साथ ही वह सांप भी घुसा और जाते ही उस जीवको अपना भक्ष्य बनाया। परंतु इतनेसे उस सांपकी तृष्णा न मिटी, तब वह इधर उधर और जानवरोंकी खोज करने लगा कि अचानक वहां नौला मिल गया और सांपको पकड़ कर टुकड़े टुकड़े कर डाला। सो हे स्वामी—

" नाग लोभ अतिशय कियो, खोये अपने प्राण । तातें इट स्वामी तजो, तुम है दया निधान "॥

ता स्वामी यह वार्ता सुन कहने छो--" ऐ संदरी! किसी वनमें एक भीदड़ बहुत मूखा फिरता था, सो नगरके समीग किसी मरे हुवे बैछके सड़े कछेदरको देखकर मक्षण करने छगा। सो खाते र सबेश हो गया और नगर छोक सब बाहर निकले, पंतु वह गीदड़ अति छोभी, तृष्णावश वहां बैठा खाता ही रहा। नगरपासियोंने उसे खाते देखा तो उन छोगोंको औपिधकी याद आ गई। सो तुरंत जाकर गीदड़को पकड़ लिया। अब क्या है! किसीने पूंछ काट छी, किसीने कान काट छिये, किसीने दांत उखाड़ छिये। जैसे वैसे जब इन छोगोंने उसे छोड़ा तो कुत्तोंने पीछा छिया और चींथ र कर उसे मार डाला। सो ऐ सुंदरी! जो वह गीदड़ भूखके अनुसार खा करके कहीं भाग गया होता और तृष्णा न करता, तो अपने प्राण बचा सक्ता था परंतु—

" जैसे वह गीदड़ मुवो, तृष्णा वश निर्धार । तैसे मुझ भव जलधिसे, कौन उतारे पार ॥ "

इस प्रकार स्वामीने उन चारों स्त्रियोंको निरुत्तर किया और यहां सवेरेका वरूत हुवा । सब जीव , उठ २ कर अपने काममें लगने लगे, परंतु स्वामीकी माताको निद्रा कहां ? सो चिंतातुर बैठी थी, इतनेमें दरवाजेके निकट एक चोरको खड़ा देखा सो माताने पूछा-" ऐ माई ! तू कौन है और किस हेत यहां आया है ? "

तत्र चोर बोला-''हे माता ! मैं चोर हूं और आपके घरसे बहुत द्रव्य कई बार चुरा ले गया हूं। मेरा नाम विद्युतचर है। मैं राजपुत्र हूं परंतु बाल्यावस्थासे चोरीकी कुटेव है। इस लिये देश छोड़कर यहां आया हूं।''

तय माता बोली- '' हो भाई! ये सब धन संपिति रत्नराधि है। इनमेंसे जितना चाहो ले जावो। '' चोरने कहा--'' ऐ माता! तू क्षणेक घरमें जाति है, और क्षणेक आंगणमें आती है तथा इस तरह बिछकुल निष्पेह होकर द्वाय ले जानेकी आज़ा दे दी, सो कारण क्या?''

तद माताने कहा--'' माई ! पातःकाल मेरा पुत्र दिशा ले जावेगा और ये चारों उसकी स्त्रियां हैं सो समझा रही हैं। कल ही ब्याह हुवा है, आज ही दिश्चा लेगा। फिर इस द्रव्यको कौन खावेगा, सो तू भला आया। अब इसे ले जा, यह भार-रूप दिख रहा है। में इसी चिंतामें बाहर जाती हूं, भीतर आती हूं। कहीं भी चैन नहीं पड़ता है। ''

चीर बोला--'' माता ! मुझे अब धनकी इच्छा नहीं है। आप अपने पुत्रसे मेरी भेंट करा देवो । मैं उन्हें बनमें जानेसे रोक्तंगा, और न मानेंगे तो जो उनकी गति सो मेरी भी होगी। ''

यह सुन गद गद होकर माता बोली--'' बेटा! जो तुम यह कार्य करो तो आधी द्रव्य तुमको दूंगी। तुम शीघ उपाय करो। '' ऐसी बात कह कर माता कुमारके महलमें गई और दरबाजा खड़खड़ाया। स्वामीने माताका आगमन जानकर किवाड़ खोले और नम्र होय पूछने लगे-'हे माता! बिना अवसर परिश्रम करनेका प्रयोजन क्या है? ''

तब बात बनाकर माताने कहा—''बेटा! तुम्हारा मातुछ (मामा) बारह वर्षसे विदेश गया था सो लग्नेक समाचार सुनकर आपसे मिलनेको आया है। कहो तो यहां बुलाऊं। '' स्वामी बोले—'' सहर्ष यहां बुलाईये, मुझमें उनमें पर्दा क्या है ं ''

बस, माताने मामा (विद्युतचर चोर) को बुलाया। सो चारों स्त्रियां तो अलग हो गईं और इनसे बातचीत होने लगी। प्रथम ही परस्पर जुहारु करके कुशलक्षेम पूछी, परचात् मामा अनेक प्रकारकी बातें बनावनाकर स्वामीके चित्तको फिराना चाहता था। कभी देशकी, कभी द्रव्यकी, कभी स्त्रियोंकी, कभी युद्धकी, कभी भोजनकी, इस प्रकार चतुराईसे नाना कथाएं और अज़ीब कई देशोंकी बोलियां सुनाया करता। परंतु जैसे चिकने घड़ेपर पानी नहीं ठहरता, स्वामीके चित्तपरभी उसी प्रकार कुछभी असर न होता था। उसने रावण वगैरः अनेक प्रकार केड देशों तो संसारमें और बहुतसे लोग हैं, सो कौन किसे समझाने जाता है ? परंतु तुम हमारे घरके छड़के हो, सो गुरु जर्नोका कहना मानना ही उचित है। देखो, जो बहुत नृष्णा करता है वह अवश्य दुःख पाता है।

सुनो, एक कथा कहता हूं कि जंगलमें एक ऊंट चरनेके लिये गया था। सो कुवेके निकट एक वृक्षको देखकर पत्ती तोड़ लोड़ खाने लगा। खाते खाते ज्योंही पत्ती तोड़नेको ऊपरकी ओर मुंह किया कि अचानक झाड़परसे मधुके छातेमेंसे मधुकी बूंद आकर गिरी, सो मीटा मीटा म्वाद अच्छा लगा, सो ऊपरको इच्छुक होयकर देखने लगा। परंतु जब बहुत बख्त तक बूंद न आई, तो मुंह ऊपरको बढ़ाया, परंतु छाता ऊंचा होनेसे मुंह वहां तक न पहुंचा। तब ऊपरको उछाट मारी सो उछलते ही नीचं कुवेमें जा।गिरा और वहींपर तड़फ तड़फ कर मर गया, तासे हे बाल!

तृष्णा परभवकी तजो, भोगो सुख भरप्र । वर्तमान तज आगवत, देखें सो नर क्रूर ॥ तन धन योवन सुहृदजन, घर सुन्दरि वर नार । ऐसा सुख फिर नहिं मिले, करें कोटी उपचार ॥ "

तब म्वामीने कहा—" मामा सुनो, एक कथा कहता हं, कि एक सेठ परदेश जा रहा था। राहमें प्यास लगी, सो आतुर होकर एक वृक्षके नीचे जा बैठा। वहां पर चोरोंने घेरा और सब धन छंड लिया, सो प्रथम तो प्यास और फिर धन खंद गया, दुहरा दुःख । इतनेमें निद्रा आ गई सो सो गया । स्वमनें एक निर्मल जलका भरा गंभीर समुद्र देखा, सो तुरंत पानी पनिके लिये जीभ चलाने लगा। इतनेमें नींद खुली तो वहां कुछ भी न देखा. विह्वल हो इधर उधर भटकने लगा, परंतु पानी न मिलनेसे वहुत ही दुःखी हो गया। सो ऐ मामा ! ये स्वमके समान इन्द्री भोग हैं । इनमें सुख कहां हैं ? इस प्रकार स्वामीने और भी अनेक प्रकार कथा कहकर संसारकी असारता पर्णन की।

तव मामा कहने लगे- हे नाथ! क्यों हम लोगोंको कुड़ कुड़ कराते हो ! शांत चित्त होकर घर रहो । ऐसा कहकर अपनी पगड़ी उतारकर कुमार (स्वामी) के सन्मुख रख दी और मम्तक झुकाकर नम्र हो कहने लगा, - तुमको तुमारी माताकी दुवाई (कसम) है । अरे! मेरे आनेकी लाज तो रख लीजिये। पाता पितादि गुरुननोंके चचनानुमार चलना यही कुलीनोंका कर्तव्य है । परंतु यहां तो वही दशा थी--

" ज्यों चिकने घट ऊपरे, नीरवृंद न रहाय। त्यों स्वामीका अचल मन, कोई न सकत चलाय॥"

सो जब बहुत समय हो गया और सबेरा हुवा, तक स्वामीने कहा-हे स्वजनवर्गी! पत्थरपर कमल, जलमाहिं माखन और बालुमहिं जेसे तेल पानेकी इच्छा करना व्यर्थ है, उसी प्रकार अब बीतगगरंगके रंगे हुवे पुरुषको (मुझे) रागी बनाना असंभव है । ये तीन लोकोंकी बस्तु-एं मुझे तुगके समान तुच्छ दिख रही हैं, ऋौर विषयभाग काले नाग समान भयंकर माद्म होते हैं। ये रागरूप बचन विपेले तीरके समान है। घर काशागार (जेल) के सदश है। स्त्री कठिन बेडी है। रांसार बडा भारी भयानक बन है। उसमें स्वार्थी जीव, सिंह व्यावादिके सदय विचर रहे हैं। इस लिये जानवृक्षकर ऐसे भयंकर स्थानमें रहना बुद्धिमानोंको उचित नहीं है। समय पाकर व्यर्थ सो देना उचित नहीं। सच्चे माता पिता व गुरुजन वे ही हैं, जो अपनी सन्तानको जच्च स्थानपर देखकर खुशी होते हैं, और जो उन्हें फंसाकर कुग-तिमें पहुंचाते हैं वे हितृ नहीं, उन्हें शत्रु कहना चाहिये। इस लिये हे गुरुजनो ! आप लोगोंका कर्तव्य हैं कि अव मुझे और अधिक इस विश्यमें लाचार न करें और न मेरा यह अमोल्य समय व्यर्थ गुमार्वे । सो जब दिद्युतचरने ये बचन सुने और देखा-अब समझाना व्यर्ध है, कुछ सार नहीं निक-लेगा, तब अपना परिचय दे कहने लगा---

" हे स्वामी! मैं आपसे बहुत झूट बोला। मैं हिस्थिना-पुरके राजा दुरदून्दका पुत्र हूं। बाल्यावस्थासे चेरि सीखा, सो पिताने देशसे निकाल दिया, तब बहुत देशों में जा जाकर चोरी की और वेश्याके यहां देता रहा। सो हे नाथ! आज चोरी निमित्त यहां आया था, परंतु यह कौतुक देखकर चोरी करना भूल गया, और अब अतिशय विरक्त हुवा हूं। बड़े पुरुष जिस मार्ग चले, उसी मार्ग चलना श्रेष्ठ हैं। अब हे स्वामी! आपसे एक बचन मांगता हूं सो दीजिये अर्थात् मुझ दीनको भी चरणसेवक बना लीजिये--अर्थात् साथ ले चलिये। "

तब स्वामाने यह कब्ल किया और तुरंत ही उठकर खड़े हो गये। यह देख सब लोग विलियत बदन हुवे, परंतु चित्राम सरीखे रह गये। कुछ मृंहसे शब्द नहीं निकलता था। सबके मनेंभे यही लग रही थी कि कुंवर घरहीमें रहें और दिक्षा न लेवें। नगरभरमें क्षोभ हो गया। सब लोग राजा अजा दौड़े हुवे आये। नरनारियोंकी अपार भीड़ हो गई। लोग नाना तरहके विचारोंकी कल्पना करने लगे। कोई कहते—अहो ! धन्य है यह कुमार जो विषय से मृंह मोड़, संसार से नाता तोड़ चले। कोई कहते—भाई कुमारका शरीर तो केलेके झाड़ सरीख कोमल है और यह जिनेश्वरी दिक्षा खड़गकी धार है। किस प्रकार पार होगी ? कोई माताकी दशा देख कहते थे—

" एक पूत जन्मोरी माय। घर सुनो कर तपको जाय॥ "

इत्यादि मनके मुताबिक बोलते थे, परंतु स्वामीका ध्यान तो बनमें मुनिके चरणकमलेंमें लग रहा था । सब लोग क्या करते हैं और कहते हैं, इस ओर कुछ भी ध्यान नहीं था, सो जब स्वामीके प्रयान करनेका निश्चय ही हो गया तब राजाने रक्षजड़ित पाछकी मंगाई और स्वामीको स्नान कराकर केशर चन्दनादि सुगंधित पदार्थोंसे विलेपन किया तथा पाटम्ब-रादि उत्तमोत्तम वस्त्र और सर्व आभूषण पहिराये। अहा! इस समय स्वामीके शरीरकी कांति अपूर्व थी। सूर्य भी शरमाजाता था। सो राजाने स्वामीको पालकीपर चढ़ाकर एक तर्फ आप स्वयं लगे, दृसरी ओर सेठ लग गये।

इस प्रकार पालकी लेकर चले। आगे आगे बाजे बजते हुवे चले जा रहेथे। इस समय माताने जाकर ये समाचार बहुवोंसे कह दिये, सो सुन्ते मूर्छित हुईं। जब साखियोंने शीतो-पचार कर मूर्छा दूर की, तब वे चारों अपनी सुध भूलकर गिर पड़तीं दौड़ी, और स्वामीकी पालकोंके चारों पायें चारोंने पकड़ लिये, बोली—

> '' सुनो प्रसु गुण खान, कीनो बहुत मुलाहजो। अब हम तर्जे सुप्राण, जो आगे को चाल हो॥ ''

यह सुनकर और उन क्षित्रोंकी यह दशा देखकर स्वामीने पालकी ठहरा दी और दयाछ चित्त हो अमृत बचनोंसे प्रिय बोलीमें समझाने लगे—''ऐ सुन्दिरियों ! बिचारों, यह जगत् क्या है और किसके पिता पुत्र है ! किसकी माता ग्रीर किसकी सी ! यह तो सब अनादि कर्मकी सन्तिति है। अनेक जन्मोंमें

अनेकानेक संबंध हुवे हैं। जिनका कुछभी पारावार नहीं है। सो मैं मोहवश इस संसारमें अनादि कालसे अनेकवार जन्म मरण किया, परंतु किसीमें बचानेकी समर्थ नहीं हुई। अब यह अच्छा समय है, कि जिसमें इन चार गतिकी बेड़ी छूट सक्ती है। सो अब विष्न मत करो। मोह वश अपना और हमारा बिगाड़ मत करो। चलो, तुम भी गुरुके पास चलकर इस पराधीन पर्यायसे छूटकर स्वाधीन सच्चे मुख पानेका उपाय पूछो"।

यह सुनकर माता और चारों स्त्रियोंका चित्त फिर गया, पालकी छोड़ दी। सो चलते चलते जिस बनमें सुधर्मस्वाभी तप कर रहे थे पहुंचे. और विनय सहित अष्टांग नमस्कार कर बैठे। मुनिनाथने धर्म बृद्धि दी।

तव म्वामीने हाथ जोड़कर प्रार्थना की-- हे नाथ ! इस अगम अथाह अतट संसारसे पार उतारीये ।

तब गुरू बोले- ' हो कुमार ! अब तृम भेषको छोड देवो।

यह सुन स्वामीने मुदित मन होकर तुरंत ही वस्तादि आभूषण उतार दिये और अपने कोमल करोंसे केशोंको घासकी तरह उखाड़ डाले और गुरुके सन्मुख नम्रीभूत हो वत याचना की। सो गुरुजी परम दयाल कर्म शत्रुवोंसे छुड़ानेवाले कुमार (स्वामी)को दिक्षा देकर मुनियोंके आचारका ब्यौरा समझाने लगे, सो सुनकर स्वामोकी माता जिनमती और चारों क्रियां भी भवभोगसे विरक्त हुई और पांचाने गुरु समीप अर्जिकाके तर लिये। विद्युत चरने भी उसी समय समस्त परिम्नहका त्याग कर मुनित्रत लिया, और नगरके नरनारियोंने योग्य किसीने मुनित्रत, किसीने श्रावकत्रत, शक्तंयनुसार लिये । और फिर राजा तथा अन्यान्य गृहस्थ अपने अपने स्थानको गये।

अब स्वामी तपश्चरण करने लगे। जब उपवास पूर्ण हुवा तब गुरु-की आज्ञा लेकर नगरकी ओर मिक्षाके अर्थ पथारे। सो नगर-के नरनारी देखनेको उठे। कोई कहे अरी सखी, यह वहीं वालक है, जो राजाका पट्टबद्ध हाथी छूटा सो पकड़ लाया था। कोई कहे—यह वही कुमार है, जो रलचूलको बांधकर मृगांकको छुड़ाकर, उसकी पुत्री श्रीणिक राजाको परणवाई। कोई कहे-यह वह कुंवर है जिसने व्याहके दृसरेही दिन देवांगना समान चारों खी त्याग कर दी थी॥ परंतु स्वामी तो नीची दृष्टि किये जूड़ा प्रमाण मृमि शोधते हुवे चले जा रहे थे, सो जिन-दास सेटने पड़गाह कर नवधा भक्ति सहित आहार दिया। तब स्वामीने अक्षय निधि कह दिया, सो देवनने पंचाचार्ज किये।

इस प्रकार आहार ले कर बनमें गये और दिनोंदिन उम उम तप करने लगे, सो शुक्क ध्यानके प्रभावसे केवलज्ञान आप्त हुवा।

अहा! वह दिन (ज्येष्ठ सुदी ७) कैसाही उत्तम था कि जंबस्वामीको केवळज्ञान हुवा और सुधमेस्वामीको निर्वाणपद भाप्त हुवा। धन्य हैं वे जीव जिनको ऐसा अवसर देखनेको मिले। फिर स्वामीने कईएक दिन विहारकर अनेक भव्य जीवों-को प्रतिबोध किया और स्वर्ग नरकादि चारों गतियोंके दुःख-सुख तथा मुनि श्रावकके वर्त, तत्वका स्वरूप, हेय ज्ञेय उपादेय आदिका स्वरूप भले प्रकार समझाया। और विहार करते २ मथुरा नगरी आये, सो वहांके उद्यानमें श्रेष अत्राति कर्म नाभ कर परमपदको पाप्त करते हुवे। और अईदास सेठ सन्यास मरण कर छठवें स्वर्ग देव हुवे। जिनमती सेठानी भी स्वी लिंग छेदकर उसी स्वर्गमें देव हुवे। चारों पन्ननी आदि स्वियों-ने भी तपके प्रभावसे स्वी लिंग छेद उसी ब्रह्मोतर स्वर्गमें देव पर्याय पाई।

विद्युतचर नामके मुनिराय महा तपश्ची विहार करते करते मथुराके बनमें आये. सो एक वनदेवी आकर बोळी--'हे स्वामी! इस वनमें एक दानव रहता है सो बड़ा दुष्ट स्वभावी है. और जो कोई यहां रहता है उसे रात्रिको आकर सपरिवार घोर दुःख देता है। इस लिये हे स्वामी! आप कृपाकर यहांसे अन्य क्षेत्रमें ध्यान घरें। तब स्वामी विद्युतचर कहने लगे कि जो डरसे कायर हैं, उन मुनियोंको सिंहवृत्य जो गुण, जिससे तप व्रतकी रक्षा होती है, नष्ट हो जाता है और स्यार वृत्य-से वे तपसे अष्ट हो नीच गतिको पाते हैं। आज तो हमारे पितज्ञा है सो यहीं ध्यान करेंगे। जो होनहार होगी सो होगी। ऐसा कह योग ध्यान घरा। जब आधी रात बीत गई, तब वह दानव आया और घोर उपसर्ग करने लगा। नाना प्रकार रूप

f,

धरधरकर डरावने लगा। इस समय स्वामीने घोर उपसर्ग जान कर सन्धास धारण किया। सो वह दानव जब थक गया और स्वामीको न चला सका, तब अपनी माया संकोचकर स्वामीके पास समा मांगकर घरको चला गया।

जब सबेरा हुवा तो नगर नरनारी समाचार सुनकर देखने आये मस्तक नवाए, परंतु स्वामी तो मेरुके समान अचल ध्यानमें मीन सहित तिष्ठे रहे।

सो वे विद्युतचर महामुनिराये बारइ वर्ष तक तपश्चरण कर अंतर्ने समाधिमरण कर सर्वायसिद्धिमें अहमिन्द्र हुवे। वहांसे चय मंनुंद्य जन्म घर शिवपुरको जार्नेगे, और मुनियोंने जैसार तप किया उस प्रकार उत्तम गतिको प्राप्त हुवे । सो इस प्रकार वे ब्राह्मण के पुत्र भिष्यात्वी जिन धर्भके प्रभावसे मोक्ष और सर्वार्थ सिद्धिको प्राप्त हुवे । सो देखो भाई ! भवदेव जो छाटा माई था उसने बड़े माई का मान रखनेके लिये भीर वे शेठकी चारों स्त्रियां जो पतिके बावले होजानेंसे और पतिके द्वारा नाक कान आदि आंगोपांग छिदनेसे दुःखित हो अर्जि-का हो गई थी, सो भी इस जिन धर्मके प्रभावसे भवदेव तो सवार्थिसिद्धि और वे चारों स्त्रियां छठवें स्वर्गमें स्त्रीलिंग छेदकर देव हुईं। और बड़े भाई भावदेव जंबूस्वामी होकर मोक्ष गये। सो देखो, जो भय, लजा व मानवश भी धर्म अंगीकार करते हुवे, वे भी नरसुरके उत्तम सुख भोगकर सद्गतिको पाप्त हुवे, तो जो भन्यजीव सच्चे मनसे व्रत पाले और भावना भावे उसे क्यों ना उत्तर्म गति पाप्त हो ? अर्थात् अवस्य हो ।

इस लिये हे भव्य जीवों ! स्वपर पहिचान कर इस धर्म-को धारो और स्वपर कल्याण करो । इस प्रकार यह पुण्योत्या-दक कथा पूर्ण हुई । जो भव्य मन वचनकाय कर पढ़ें, सुनावें, सुने, उनके अशुभ कमोंका क्षय हो । ॐ शांति शांति शांति।

जंब्र्स्वामी चिरत जो, पढ़े सुने मन लाय।

मन वांछित सुख मोगके, अनुक्रम शिवपुर जाय॥

संस्कृतसे भाषा करी, धर्मबुद्धि जिनदास।
लमेचू नाथूराम पुनि, छंदबद्ध की तास॥

किसनदास सुत मूळचंद, करी प्रेरणा सार।

जंब्र्स्वामी चिरतकी, करी बचानिका सार॥

तत्र तिनके आदेशसे, भाषा सरल विचार।

लघुमति नाथुराम सुत, दीपचंद परवार॥

जगत राग अरु द्वेष वश, चहुं गित अमे सदीव।

पावे सम्यक् रल जो, काटे कर्म अतीव॥

गत संवत निर्वाणको, महावीर जिनराय।

एकम श्रावण ग्रुक्कको, करी पूर्ण हर्षाय॥

अंतिम है इक प्रार्थना, सुनो सुधी नरनार।

जो हित चाहो तो करो, स्वाध्याय परचार॥



१७.	श्री जीवंधर स्वामी चरित्र (गुजराती भाषा. बालगोध
	र्लीपि. प्रति १६००) ।
	शुं इश्वर जगत्कर्ता छे ? (गुजराती २०००) अमूल्य
80.	श्री जैन सिद्धांत प्रवेशिका (पं. गोपालदासजी बरैय्या
	कृत. गुजराती भाषा. बालबोध लीपि प्रति १६००)०
₹0.	रक्षा बंधन कथा (सल्हा पृजन सहित. गुजरार्त
	भाषा. बालबोघ लीपि. प्रति १५००) ०)-।
२१.	पुत्रीको माताका सीम्वापन (हिंदी १०००) ०)।
२२.	श्री महावीर चरित्र (निर्वाण कांड भाषा-गाथा औ
	निर्वाण पूजन सहित. हिंदी भाषा. प्रति २०००)०)।
२३.	श्रीकुंदकुंदाचार्य चरित्र (२४०० वर्ष पूर्वेनो जैन इति
	हास. गुजराती भाषा बालबोध लीपि. प्रति १७००)०)≡
₹४.	श्राविका बोध स्तवनावली (गुजराती-हिंदी. परि
	२०००)
२्५.	आपणे आपणी स्थितिमां शुं संतोष राखवा जोइए
	(गुजराती भाषा- प्रति २०००) ०)=
२६.	श्री श्रीपाल चरित्र (हिंदी भाषा. पृष्ठ २०० कपडे़की
	पकी जिल्द और सोनेरी नांव सहित प्र.२०००) ?)=
२७.	श्री जम्बुस्वामी चरित्र (हिंदी भाषा प्रति २०००)।
	मिलनेका पता—
	 ₹ ₹ ₹ ₹ ₹ ₹ ₹ ₹ ₹ ₹ ₹ ₹ ₹

मेनेजर, दिगंबर जैन पुस्तकालय, चंदावाडी--सृरत.



स्यतः खपाठीआ चकला रेप्ड पर अनिला भा, खु, अ, ना जैन प्रीस्टॉन-प्रेसमां महमाह भारत्येत छाप्य,

सीताचरित



दयाचन्द्र जन, बी. ए.

多射 **多**

॥ सीताचरित ॥

~~()*()**~**

अर्थात्

जगनविष्यान राघोषंश तिलक महाराज श्रीरामचंदर्ज की पनिवता भार्या श्रीमती जनकनन्दिनी जानकीजी का सांचिप्त चरित

लेखक व प्रकाशक

वावृ दयाचन्द्र जी गोयलीय, बी ए

लखनऊ

प्रथमाद्यति] सन् १९१४ ई०

Printed by B. Jain Press, Ya'

॥ प्रस्तावना ॥

महाराज रामचन्द्रजी का यशस्त्री नाम कौन नहीं जानता।
वे किसके पूज्य आराध्य देव नहीं हैं। भारत का बच्चा२उन
के नाम से परिचित है। प्रत्येक भारतवासी के घर में उनकी
नित्यक्षः पूजा बन्द्रना की जाती है उनके अलौकिक गुणों और
उपकारों से समस्त भारतभूमि गूंज रही है। यद्यपि उनको
हजारों वर्ष होगए, परन्तु आजतक उनकी विमल की ति
उसी मकार विस्तृत है। उन्हीं की साध्वी की सित सीताजी
(जानकी जी) का यह संज्ञिष्त चरित है।

भिय बहनो ! सीताजी का चरित केवड एक पनोरंजक कथा वा उपन्यासही नहींहै किंतु नीति और शिक्षा का एक 'गहैं । उनके चरितकी एक एक घटना उपदेश से भरपूर 'ने एक तेजस्वी पराक्रमी राजा की पुत्री और एक य राजा की पुत्रबध होकर वे कार्य किए कि पात्र उनको अम्बे, माते कहकर पुकारता अमें स्थिपोंमें सबसे उच्चासन सीता जन्म छेकर संसार को आ- वश्यकता है-जन सबकी परिपूर्णता सीताजी में थी। यथिं योरप श्रादि देशों में श्रनेक ख़ियां हुई, परंतु कोई भी सीता जी की समानता नहीं करसकी। सीताजीने भारतवर्ष में जन्म लेकर भारतवर्षके नाम श्रीर गौरव को संसार के इति-हास में सदैव के लिए श्रंकित करिंद्या। जवतक इस पृथ्वी पर चन्द्र और सूर्य का श्काश रहेगा, सीताजीके श्रलौकिक गुणों के कारण समस्त विश्वभंडल में भारत भूमि का मस्तक ऊंचा रहेगा।

सीताजी ने अपने उदाहरण से सम्पूर्ण जगत को बता दिया कि पतित्रत धर्म इसे कहते हैं। जिस मुकुमारी जनक- निन्दिनी ने कभी घर से बाहर पैर भी न रक्ला था, जिस ने कभी भूख प्यास की बेटना का नाम भी न सुना था— उसने पति के साथ जंगलों में अनेक कटों को सहर्ष सहन किया, कठिन भूमि पर चलना स्वीकार किया। कई कई दिन तक बिना खाए पीए रहना गवारा किया, परंतु पति सेवा से च्लामात्र के लिए भी मुँह न मोड़ा। पति देव का मुख सरोज देखतेही वह सब कटों को भूलजाती थी और एक दम उसके शरीर में आन्हाद हो आजा था।

जब दुष्ट रावण सीतांजी को हरकर लेगया और उनके शक्ति भर पयन करने पर भी कुछ फल न हुआ तो इस पतिवता देवी ने आहार जल का त्याग कर दिया और टद मतिज्ञा करली कि जब तक औराम की कुशल क्षेम के समाचार न सुनूंगी श्राहार जल का स्पर्श भी न करूंगी । रावण ने कितना समभाया कितना रिभाया और कितना लोभ दिखाया, परंतु धन्य है, उस पतित्रता साध्वी को कि जिसने आंखभी उठाकर उसकी तरफ नहीं देखा और वे श्रकटय उत्तर दिए कि रावण का मुंह बंद होगया और वह अपनासा मुंह छेकर रहगया । फिर जब रामचन्द्रजी ने लोकापबाद के भय से सीताजी को निर्जन बन में निकाल दिया तब उन्हें अनेक घोर कहोंको सहन करना पड़ा. परंतु उन्हों ने कभी स्वप्नमें भी रामचन्द्रजी को उलाहना नहीं दिया। वे सदा उन्हीं का स्मरण करती रहीं और यही कहती रहीं कि इसमें रामचन्दजी का कोई दोष नहीं है। यह सब मेरे अशुभ कर्मों का फल है। मैंने पूर्व जन्म में अवश्य कुछ बुरे काम किए हैं कि जिनके ये फल भोग रही हूं। पश्चान् जब लव, अंक्रुश का रामचन्द्रजी से युद्ध हुआ तो श्रीरामने उनके शील की परीचा करने के लिए उनको जलते हुए अग्नि कुंड में से निकलने का हुकुम दिया, तो वह शील संदरी तत्काल आराध्य देव का स्मरण करके यह कहकर अग्नि-कुंड में कृदपड़ी कि यदि मैंने स्वम में भी रामचन्द्रजी को छोड़ कर और किसी का ध्यान किया हो, तो मैं इस अगिन में भस्म होजाऊं। सीताजी साज्ञात् शीलकी मूर्ति थीं। उनके अखंड शीलके प्रभाव से वह महान जाञ्चन्यमान अग्निकुंड शीतल जलपय होगया और देवताओं ने त्राकर उनकी रचाकी।

बहनो ! बिचार करो, सीताजी को कितने कष्ट सहने पहे, कितनी आपत्तियों का सामना करना पढ़ा घर बार छ्टा, मित्र सम्बन्धी कूटे, देश प्राम कूटा, स्वयं पति देव कूटे, दूसरे की क़ैद में पड़ना पड़ा, तिस पर भी उन्हों ने किस प्रकार पतिब्रत धर्म का पालन किया और शीलकी रत्ताकी। वास्तव में संसार में स्त्री के लिए शील से बढ़कर और कोई उत्तम बस्तु नहीं । शीलही स्त्रीका रूप है, शीलही आभूषणहै, ऋौर शीलही शृंगार है। शीलही जीना और शीलही मरना है। चाहे और सर्वस्व चलाजाय, परंतु यदि शील बच जाय तो कुछ भी गया नहीं समभाना चाहिए । यही अमृन्य शिला सीताजी के जीवन से मिलती है। जिस तरह सीताजी ने सव सुखों पर धूल डालकर, पति के साथ जंगल पहाड़ों में ्र श्रेर, बाघ, स्याल प्रभृति का सामना करते हुए कंकर पत्थरों की ठोकर खाकर कांटों पर चलना स्वीकार किया, इसी प्रकार आपका भी धर्म है कि आपत्ति आने पर भी पतिकी सेवा से विमुख न होओ । वह जिस दशा में हो उसीमें अपना सौभाग्य समभो । चाहे कुछ हो, प्राण रहें या जायँ, मरते २ शील की रचा करो । तथा पति चाहे कितनाही रुष्ट होजाय, चोह कितनाही दण्ड वह दे, परंतु कभी उसकी निंदा न करो । सदा इष्टदेव की समान उसकी आराधना करो । ऋहर्निश उसी का स्मरण करती रहो । विश्वास रक्खों कि जो ख़ियां पतिव्रत धर्म का पालन करती हैं, देव सदा उनकी रचा करते हैं।

एक बात और ग्रहण करने योग्य है। सीताजीका स्व-भाव बड़ा कोमल था। सदा उनके मुख मंडल से प्रसन्नता भारतकती थी। वे भूलकर भी कोध करना नहीं जानती थीं। इसी कारण सब कोई उनसे भगिनी के समान प्रेम करतेथे। बहनो ! त्रापको भी यह गुण अवश्य ग्रहण करना चाहिए। संसारमें उन्हीं की प्रशंसा होतीहै जिनका स्वभाव नम्र होता है। त्रापने तो अपने पराये भी उनसे निस्वार्थ प्रेम करने लग जाते हैं।

बहनो ! यह चरित हमने केवल आप के लाभार्थ लिखा है। इसे पढ़कर यदि आपने कुछ भी लाभ उठाया तो हम अपने परिश्रम को सफल समभोंगे और शीध अन्य पतिव्रता देवियों के चरित भी आपके सन्मुख उपस्थित करेंगे।

इस पुस्तक के संशोधन में हमें अपने मित्र श्रीयुत पं॰ नाथुरामजी प्रेमी, बम्बई, तथा लाला भगवानदासजी जैन मा-लिक जैन प्रेस अहियागंज, लखनऊ से बहुत सहायता मिली है। अतएव हम दोनों महानुभावों के अत्यंत श्राभारी हैं।

लखनऊ १∍–८–१४

दयाचन्द्र गोयलीय



अ पहला परिच्छेद अ

मुं के के के के के मिल्य में अनेक देश हैं। उन्हों में से एक मैं बिल के पूर्व के मिल्य देश हैं। यह माचीन कालसे अनेक ऐतिहासिक घटनाओं के कारण जगत् मिसद्ध है। आवाल दृद्ध सर्वही इसके नाम से परिचित हैं। इसमें ही मिथिलापुर नाम का एक नगर था जो हर मकार की धन धान्यादि सम्पदाओं से भरपूर और प्रकृति की विल्वाण शोभाओं से विभूषित था। यहां किसी समय विश्वविख्यात राजा जनक राज्य करते थे। उनके ऐश्वर्धकी कोई सीमा न थी। वे बड़े सत्यवादी, प्रतापी और प्रजाहितेषी थे। उनकी पर्रानी श्रीमती विदेहा देवी भी रूप गुण में सब प्रकार से उनके अनुरूपही थीं। उनके अलीकिक गुणों और शील स्वभाव के कारण प्रजा उन्हें माता पिता तुन्य मानती थी।

पूर्व पुष्य के उदय से रानी बिदेहा ने गर्भ धारण किया । क्रम २ से नौ मास न्यतीत होने पर सर्वीग सुन्दर पुत्र पुत्री का जन्म हुआ, परन्तु देव योग से जन्मान्तर के एक वैरी दैत्यने अपना बदला लेने के अभिमायसे पुत्र को उसी रात्रि में हरण करिलया । दैत्य को उस पर इतना कोध आया कि उसे आकाश से पृथ्वी पर पटक कर अपने स्थान को चला गया। रथनुपुर के राजा चन्द्रगति ने जो अपनी भाणप्यारी सहित आकाश में विचर रहा था बालक को आकाश से पृथ्वी पर गिरते देख तत्काल नीचे आया और बालक को उठाकर अपने घर लेगया। इस मनोज्ञ बालक को पाकर राजा, रानी दोनों को अपार आनन्द हुआ। उन्हों ने महान उत्सव मनाया और उस देवोपनीत रत्नों के कुएडल की किरणों से मिरडत पुत्र का नाम प्रभामंडल (भामंडल) रक्ता।

🕸 दूसरा परिच्बेद 🏶

जि के ब सबेरा हुआ और विदेहा ने अपने पाण प्यारे जि के ब सबेरा हुआ और विदेहा ने अपने पाण प्यारे पत्र को अपने पास न पाया तव उसके बदन में सजाटा छा गया। ऊपर का दम ऊपर नीचे का नीचे रह गया। थोड़ी देर में होश आने पर वह गला फाड़ २ कर चिल्लाने लगी और हाय! हाय! कर गगन मंडलको कं-पाने लगी। जनक महाराज ने बहुत कुछ समकाया पर उस अबला का दु:ख दूर न हुआ। राजा ने पुत्र की खोज में चारों तरफ तेज युइसवारों को दौड़ाया, अपने मित्र सम्बन्धी राजा महाराजाओं को समाचार भिजवाया, पर कहीं भी.
पुत्र का पता न पाया । लाचार होकर शोकातुर दम्पति
पुत्री परही संतोष करके बैठरहे। उसी को लाड प्यारसे पालने लगे । थोड़े ही दिनों में मनोहारिणी जानकी ने अपनी
बाल लीला से पुत्र का शोक भुला दिया। पुत्री क्या थी?
मानों रूप लावएय की खानि थी। स्वर्ग से साम्नात् देव
कन्याही भूमंडल पर उतर आई थी। शिरसे लेकर नख तक
उसका एक एक अंग अनुपम सौन्दर्य का एक आदर्श चित्र
था। यह कमलनयनी मृगलोचनी कोमलाङ्गिनी, लच्मी स्वरूपा कन्या शुक्रपत्त की शशि कला की समान दिनों दिन
बढ़ने लगी। कमशः इसने यौवनावस्था में पग रक्खा। अब
तो इसके अंग मत्यंग की शोभा और भी बढ़गई। यह अपने
रूप लावएय से कामदेव की स्वी रित और इन्द्रकी इन्द्रानी
को भी लजाने लगी।

श्रव माता, पिता की विवाह की चंता हुई । वे रात दिन यही सोचा करते थे कि इसके योग्य कौनसा राजकुमार है। सोचते सोचते राजा जनक ने विचार किया कि इस समय श्रयोध्याके राजा दशरथ मेरे सबसे बड़े मित्रहें। उनके राम, लच्मण पुत्रहें, जिनमें राम सर्व गुण सम्पन, बढ़े साहसी श्रूर वीर हैं। उन्होंने श्रभी मुक्ते शतुओं के जीतने में बड़ी सहायता दी है। अतएव में उन्हीं के साथ अपनी पुत्री का विवाह करूंगा। महाराज ने श्रपना यह संकल्प अपनी रानी पर भी मकट करदिया।

🕸 तीसरा परिच्छेद 🏶

जिस समय नारद्जी सीता के महल में पहुंचे, उस समय वह द्र्पण में अपना मुख देख रही थी। उसमें नारद्जी की भयंकर जटा का पितिविम्न देखकर वह भयभीत होकर घर के अन्दर घुसने लगी। नारद्जी भी उसके पीछे चले, पर हारपाल के रोकने पर पीछे हट गये। इस अनादर को सीता का किया हुआ समभकर ने मनमें खेदखिन होतेहुए कैलाश पर्वत की ओर चल दिये।

बहां जाकर उन्हों ने विचार किया कि इस पापिनी जनक सुता ने मेरा घोर अपमान किया । मैं इस से अवश्य बदला सूगा । यह दुष्टिनी मेरे आगे कहां बचेगी ? यह जहां जहां जायगी बहांही कप्टों में डालकर इसके इस कृत्यका मज़ा चलाऊंगा। ऐसा विचार कर नारदजी ने सीताका एक चित्र पट बनाया और उसे वे रथनूपुर उसके भाई भामंडलके पास लगये। भामंडल यह नहीं जानता था कि यह मेरी बहनका चित्र है। चित्र बहुतही सुन्दर बना था। उसे देखकर सा-चात् सजीव सीता का भ्रम होताथा। वह उसे देखतेही काम के बाण से घायल होगया। किसका खाना, किसका पीना सब भूलगया। रात दिन सीताकी चाह में उन्मच रहनेलगा।

उसकी यह दशा देखकर चन्द्रगति विद्याधर ने पुत्र को धैर्य दिया और कहा. बेटा ! क्यों विकल हो रहा है ? बि-पाद को दूर करदे । तू विद्याधरों की अत्यन्त रूपवती क-न्याओं को छोड़कर भूमिगोचिरियों से सम्बन्ध करता है । यह हमारे कुल और जाति के बिये लज्जा की बात है । अस्तु, यदि तेरे मन में सीताही बसी है तो क्या चिन्ता है, अभी उसके पिता को बुलाकर सब ठीक किये देताहूं ।

विद्याधर राजा ने तत्काल अपने दूत को बुलाकर और सब हाल उसे अच्छी तरह समभाकर मिथिलापुरी की ओर रवाना करदिया। दूत वहां गया और अपनी विद्या के बल से महाराज जनक को आकाश मार्ग से रथनुपुर में ले आया। चन्द्रगति ने राजा जनक का बड़े आदर सत्कार से स्वागत किया। दोनों एक दूसरे से मिलकर बड़े आनिन्दत हुए। अवसर पाकर चन्द्रगति ने कहा कि मित्रवर मैंने सुना है ाक आपकी कन्या सीता सर्वगुण सम्पन्न, और सुन्दरी है। अतएव आप उसका मेरे पुत्र भामंडल के साथ सम्बन्ध कर दीजिए। आपको ऐसा वर मिलना काउन है। जनक ने उत्तर दिया, हे विद्याधरपति! आपका कहना शिर माथे पर है, परन्तु मैंने उसे अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र श्री रामचन्द्रजी को देनी करदी है। इसपर विद्याधर अपनी मर्शसा और भूमिगांचिरियों की निन्दा करनेलगे, िक कहां हम विद्याधर और कहां वे रंक भूमिगोचरी। हे जनक! तुम्हारी बुद्धि कहां चली गई? कुछ तो विवेक से कामलो । यह तुम्हारा बहा भाग्य है कि विद्याधरों के साथ तुम्हारा सम्बंध होता है, पर जनक ने एक न मानी। वे राम की ही श्रांसा करते रहे।

जब चन्द्रगति ने देखा कि जनक किसी तरह नहीं मानता तब उसने अपन विधाधरों से सलाह करके जनक राज से कहा कि तुम दृथाही, राम लच्मण की मशंसा करते हो, उन के बल पराक्रम को तुम जानते नहीं। इसलिए हम देवों द्वारा पूज्यनीय बजाबर्त, और सागरावर्त, दो धनुष देते हैं, यदि राम लच्मण इनको चढ़ा देवें, तो हम उनकी शक्ति जानें। तब आप उन्हें अपनी कन्या खुशी से दे दें, हम कुछ न कहेंगे, अन्यथा हम तुम्हारी कन्या को ज़बर्दस्ती ले आवेंगे, और तुम देखते के देखतेही रह जाओंगे। जनक महाराजने यह बात स्वीकार करली। वे धनुष और विद्याधरोंको लेकर मिथिलापुर चले आये । जब महाराज ने नगर प्रवेश किया तब अनेक मंगलाचार गाये गये । सब कोई भेट लेलेकर सन्मुख उपस्थित हुए ।

विद्याधरों ने नगर बाहर आयुधशाला बनाई और वहां उन्होंने दोनों भयंकर धनुषों को रखदिया।

राजा जनक ने बात तो स्वीकार करही ली थी, परन्तु उन्हें अन्तरंग में बड़ी चिन्ता हो रही थी। वे धनुषों को देखकर भय से कम्पित हो रहेथे।

🕸 चौथा परिच्छेद 🏶

ये ये को वलाकर स्वयम्बर रचना की आज्ञा दी। बातकी बात में राजकुमारी के स्वयम्बर की बात सारे नगर में फैलगई। सर्व साधारण की उत्सुकता स्वयम्बर देखनेके लिए शनैः शनैः बदने लगी। देश देशान्तरों से आये हुए राजा महाराजाओं से सारा शहर भरगया, नगर के चारों ओर हज़ारों डेरे, तम्ब बात की बात में दिखलाई देने लगे। अयोध्या के महाराजा दशरथ भी अपने चारों राजकुमारों सिहत वहाँ पधारे और स्वयम्बर के दिनकी मतीज्ञा करने लगे।

त्राज स्वयम्बर का दिन है। जिधर देखो उधरही फ़ुंड

के भुंड लोगोंके दिखाई देते हैं। निमंत्रित राजा महाराजा सज धजकर स्वयम्बर मएडप की ओर आरहे हैं। नगर की सौभाग्यवती स्त्रियां अपने अपने कोठाँ पर चढ़ी फूलों की वर्षा करतीं और नाना प्रकार के कीड़ा कौतुक कर रही हैं। कोई हँस रही हैं. कोई गारही है कोई अपनी सहेली से बातें कर रही हैं। राजकुमारों के रूप, रंग, अस्न, वस्त्र उनके आलोच्य विषय हो रहे हैं।

अव स्वयम्बर का समय आ गया। शंखध्विन से सारा
मग्रहल गूंज उठा। क्षियां मंगल गीत गाने लगीं, भाति भाति
के बाजे बजने लगे। बन्दीजन उच्च स्वरसे यश गान गाने
लगे और जय जय शब्द का उच्चारण करने लगे। भारत के सभी निमंत्रित राजे महाराजे एक पंक्ति में कुमारी के
महल के सामने विराजमान थे। सभा के चारों ओर दर्शकों
की अथाह भीड़ थी। कान पड़ा शब्द सुनाई न देता था।
सभी की दृष्टि जानकी पर लगी हुई थी। एक खोजा जो
सबसे परिचित था, हाथ में एक बेत लिये हुए इशारा कर
करके कुमारी को हर एक राजकुमार का गुण सुनाता
जाता था।

हे राजदुलारी, तुम्हारे पिताजी के बुलाये हुए भारत के सभी प्रधान प्रधान राजा इस स्वयम्बर सभा में प्रधारे हैं। ये अग, बंग, कार्लिंग, कौशल, पांचाल, मगध, काशी, गां- धार आदि देश देशों के अधिपति तुम्हारे अनुपम सौंदर्य को सुनकर तुम्हारे 'पाणिष्रहणके इच्छुक होकर आयेहें। इन में से जो कोई आयुधशाला में रक्खे द्वप बज़ावर्त, सागरा-वर्त, धनुषों को चढ़ा देगा, वही तुम्हारा पति होगा।

जनकनंदिनीने सबकी ओर देखते हुए अपमे मनमें विचार किया कि यद्यपि राजपुत्र तो सभी सुभग और सुन्दर हैं। परन्तु इन सब में दशरथ सुत रामचन्द्रजीही शिरोमणि हैं। देखिये, भाग्य में क्या बदा है ? धनुष चढ़ालें. तभी मनेा-कामना पूर्ण हो। सीता ज्यों ज्यों राम को देखती थी, उसके सारे शरीर में रोमाञ्च हो आता था। सबकी दृष्टि जानकी पर थी, पर जानकी की दृष्टि केवल राम पर थी। वह उन्हें निर्निमेष दृष्टि से टकटकी लगाये हुए देख रही थी।

जनक महाराज का इशारा पातेही सब राजा महाराजा खड़े होगये और आयुधशाला की ओर जाने लगे। धनुष्यों को देखतेही बड़े बड़े पराकमी पीछे हट गये। किसी का साहस नहीं हुआ जो उनको हाथ लगाने। किसी किसी ने उद्योग भी किया, परन्तु उन्हें अपना मुंह लेकर पीछे हट जाना पड़ा। अन्त में श्रीराम ने वीरतासे आगे बढ़कर बात की बात में वज़ावर्त को तान दिया। लच्मण भी अपना पराक्रम दिखलाने के लिये आगे बढ़े और उन्हों ने दूसरे धनुष्य सागरावर्त को उठाकर खेंच लिया।

धनुष् चढ़ातेही सीता हाथ में वरमाला लिए शिघता से आने बढ़ी और उसने उसे प्रफुद्ध मन से अपने प्राण प्यारे श्रीराम के गले में डालदी । बस अब क्या था ? स-खियां मंगल गीत गाने लगीं, बाजे वजने लगे पुष्पद्वाष्टि होने लगी, चारों ओर से जय जय शब्द होने लगे और आकाश में देवगण धन्य धन्य कहने लगे ।

इस अपूर्व दृश्य को देखकर जनक, दृशस्य तथा उनके सम्बन्धी बहुतही आनन्दित हुए ! सीता राम का जोड़ा ऐसा माल्म होता था मानो चाँद और सूरज दोनों एक साथ पृथ्वी पर उत्तर आये हैं।

विधि अनुसार विवाह संस्कार हुआ और दशरथ बड़े आनन्द मंगल के साथ पुत्र बधू सहित अयोध्या को रवाना हुए। जब यह शुभ संवाद अयोध्यावासियों ने सुना, तब वे हर्ष के मारे अंग में फूले न समाये। घर घर आनन्द मंगल होने लगे। बड़ी धूम धाम से नवीन वर बधू का स्वागत किया गया। इस समय मत्येक के हृदयमें रामकी वीरताका चित्र धूम रहा था।

🕸 पांचवां परिच्छेद 🕸

था। जिन सुखों के लिए विवाह किया जाता है वे सब उन्हें भाष्त थे।

इन मुखों को भोगते हुए इनका जीवन आनन्द पूर्वक व्यतीत होने लगा, परन्तु जब भामंडल को यह समाचार पहुँचे तब उसका सारा शरीर कांपने लगा। वह ठंडी साँस भरकर कहने लगा-" इस हृदय विदारक घटना ने तो मेरी रही सही आशाओं की एकदम इतिशी कर्दी। हा! अब मैं कहां जाऊं: क्या करूं। वह मेरे मन को हरण करने वाली, मेरे नेत्रों में वास करने वाली जानकी क्या सचकुच राम को मिलगई ? चाहे कुछ हो, प्राण रहें या जाएँ पर मैं सीता को राम के भवन में से निकाल कर लाऊंगा। ऐसा दढ़ विचार करके भामंदल ने अयोध्या का रास्ता लिया । वह अनेक ्बन, उपवन, नदी सरोवरों को पार करता हुआ सीता की चाह में जा रहा था. परन्तु दैव ! तू प्रवल है, तेरे आगे पुरू-षार्थ सिर भुकाता है। कहां तो भाषपडल सीता को अर्थी-गिनी बनाने के लिए जा रहा था और कहां उसे रास्ते मेंही एक शहरके देखतेही जातिस्मरण हो आया और वह तत्काल विचारने लगा । रे आत्मन्, तू क्यों मूढ़ हुआ है, तेरी स-मभ पर क्या पत्थर पड़े हैं। अरे पापी, जिसकी धुन में तू पागल हुआ वन बन की राख छानता फिरता है. वह ती ं तेरी मां जाई बहिन है । इस पकार भामएडल अपने को धिकारता हुआ लौट आया)

राजा चन्द्रगित ने यह बात सुनतेही संसार को सणभंगुर जानकर त्याग दिया और मुनि महाराज के निकट जाकर दीक्षा छेली। इस सभामें दैव योगसे महाराज दशरथभी पुत्र सित मौजूद थे। मुनि महराज का उपदेश सुनकर और अपने पूर्वभवों का हाल जानकर सब गछे लग लग मिले। सीता भाई को देखतेही भेम के आंसू बहाती हुई उसकी छाती से चिपट गई। महाराज जनक और महारानी विदेहा दोनों अपने विद्धरे हुए लाल को पाकर हर्ष के मारे अंग में फूले नहीं समाये।

अ इठा परिच्छेद अ

कि दे कि व की महिमा अपरम्पारहै। वह जो कुछ न करे कि कि कि थे। हो । सीता जी को अभी मुख बैन से रहते हुए कुछ देर न हुई थी। कि एक नवीन घटना उपस्थित हो गई। एक दिन महाराज दशरथ ने संसार से विरक्त होकर जिन दीचा छेने का संकन्प किया, उनको देखकर भरत भी जिन दीचा के लिए उधमी होगया। "हाय पति तो दीचा छेतेही हैं. क्या पुत्र भी इस नव यौवन अवस्था में दुर्बर तप करेगा? फिर मेरी कौन सुधि लेगा? मैं किस के आअय नहुंगी?" ऐसा सोचकर महाराजी के कई ने महाराज से प्रारंग की कि माणनाथ! आप को याद होगा, आपने मेरी

युद्धस्थल की चतुराई से मसन्न होकर मनचाहा गाँगने के लिए बचन दिया था। सो श्रव कृपा करके उस चचन की पूरा कर दीनियेगा। महाराज दशरथने सहये उत्तर दिया, निये, निश्चय से मैं तुम्हारा ऋगी हूँ, जो चाहो गाँगो। केकई ने नीची दृष्टि करके कहा कि राजगदी भरत को भिले।

यथि यह बचन न्याय विरुद्ध और लोक विपरीत था कि बड़े पुत्र के होते हुए राजमही छोटे को मिले, परन्तु राजा दशरथ ने यह विचार करके कि "रघुकुल रीति सदा चिक्ठ छाई। माण जाहिं पर बचन न जाई"। भरतको राज तिलक देना स्वीकार करिलया। रामचन्द्रजी इस समाचार को सुन-कर तिनक भी दिलगीर न हुए। उन्टा उन्होंने भरत को अममभा बुभाकर राज्यभार संभालने के लिए तैय्यार कर दिया। भरत पहले सेही भोग विलासों से उदासीन होरहा था। श्रव तो उसकी उदासीनता की सीमा न रही। वह बार बार श्रपने को धिकारने लगा, परन्तु सबके और वि-शेषकर रामचन्द्रजी के श्राग्रह से विवश हो उसे राज्य का कार्य्य लेनाही पड़ा।

श्रीरामचन्द्रजी ने यह ही नहीं किया, किन्तु उन्हों ने इह निचारकर कि यदि मैं यहीं अयोध्या में रहूंगा तो मेरे रहते हुए लोग भरत की आज्ञा का शितपालन न करेंगे, उसका महत्व और ऐश्वर्य जगत् में विस्तरित न होगा श्रयोध्या से बाहर दिलिण देश को जाने का दृढ़ संकल्प कर-ि श्रिया श्रीर वे थनुष वाण हाथमें लेकर चलने को उधमी हो गए। यह समाचार सुनकर लच्मण दौड़ा हुआ आया और भाई के साथ चलने के लिये तैय्यार होगया। रामचन्द्रजीने -हज़ार समभाया पर उसने एक नमानी।

जब पित गमन के हृदय विदारक समाचार जानकी को मिले तब उसकी जो दशा हुई, लेखनी द्वारा उसका मगट करना मनुष्य की शक्ति से बाहर है। यह बात आबाल हुद्ध किसी से छिपो नहीं कि संसारमें सच्चिरित्रता और पितृत्रता में कोई भी ली सीता की समानता नहीं करसकती। उसके शिल और पितृत्रत धर्म की देवता तक मुक्त कंठ से पशंसा करते थे। अपने आराध्य देव प्राणनाथ को बन जाते सुन कर बह एकदम अचेत होकर पृथ्वी पर गिरपड़ी। अनेक शीतोपचार करने पर होश में आई और पित के संग चलने के लिए खड़ी होगई।

भेम के भेरे हुए श्रीरामचन्द्रजी भी वहाँ आ पहुँचे और जानकी को छाती से लगाकर कहने लगे, प्राणप्यारी ! पूज्य पिताजी ने भरत को राजगद्दी दी है, अतएव मैं कुछ काल के लिये दिचण की ओर जाता हूँ । जब भरत का राज्य यहां निष्कंटक जम जायगा, तब लीट आऊँगा । इतने समय तक तुम यहाँ सुखपूर्वक माता के पास रहो, कोई विन्ता न करो, में बहुत शीघ तुम से आकर मिलूँगा।

सीता-प्राण नाथ आप क्या कहते हैं ? मेरी समभ में कुछ नहीं आता। आप जंगल में जायँ और मैं सुखपूर्वक घर पर रहूं। क्या यह सम्भव है ? नाथ! सुख शब्द का प्रयोगही पति के संग है। पति के बिना यह रमणीय संसार श्मशान भूमि के समान है। करुणानिधान आपके बिना यह महल मकान मुभे भयंकर बनके समान प्रतीत होते हैं। आपके बिना मेरे लिए सारी पृथ्वी शृन्य है। यह कदापि नहीं होसकता कि आप जायँ और मै यहां रहूं। मैं आपके संग चलूंगी। इसमेंही मेरा सौभाग्य है। करुणाकर मुभ पर द्या करो।

राम - पाणबल्लभे ! मार्ग बड़ा कठिन है । तुमने कभी घरसे बाहर पैर भी नहीं रक्खा । तुम किस तरह रास्ते के कहीं को सहन करोगी । ठौर ठौर पर सिंह ज्याघ्र मिलेंगे, तुम उन्हें कैसे देख सकोगी ? तुमने भीष्म श्रीर शीत ऋतु को जाना नहीं, तुम कैसे गर्मी, सर्दी को सहन करोगी । तुम ने कभी रेशमी मखमली फर्श परसे पैर नहीं उतारा, अब तुम किस तरह कठिन कंकर पत्थरों में चलोगी । पग पग पर पैरों में कांटे चुभेंगे, चलते चलते खाले पड़जावेंगे । पिये, तुम्हारा यह शरीर इस योग्य नहीं । मेरा कहा मानो

घरपर रहो । दिन जाते देर नहीं लगती । मैं जन्द वापिस आजाऊँगा ।

जानकी-प्राण प्यारे, आपके बिना मुक्ते स्वप्न में भी
मुख नहीं। सारे मुख आपके साथ हैं आप मेरी कोई विता
न करें। आपके चरणकमल में निवास करते हुए मेरे सारे
दुःख मुख में परिणत होजायँगे। मैं रास्ते के कहों को सहर्ष
सहन कर सकूँगी, पर दयालुनाथ, आपके वियोग के असब
दुःख को त्तण भर भी सहन नहीं कर सकूँगी। आपके विना
मेरा जीवन व्यर्थ है। नाथ, मुक्तपर दया करो। मुक्ते जीबन दान दे अपने साथ ले चलो।

राम-११ये मेरा कहा मानलो, घर पर रहो, इसी में मेरा तुम्हारा दोनों का कल्याण है। अन्यथा मेरी लोक में निन्दा होगी। तुम न्यर्थ कष्ट उटाओगी और तुम्हें कष्ट स-हते देखकर मेरा चित सदा व्याकुल रहेगा। यहाँ घर पर सास तुम्हें लाइ प्यार से रक्खेंगी।

सीता-स्वामिन, धुभे दुःख यत दीजिये। मेरा हृदय फटा जाता है। आपके विना माता, पिता, भगिनी आता, सास. रवसुर मेरा कोई शरण नहीं। शाणाधार, मुभे इस संसार में एक आपही शरण हैं। क्या आप सुभे अशरण कें इकर जायँगे ? इदयेश्वर, क्यों सुभे जीतेजी शोकसागर

में पटकते हो ? मैं सबकुछ सहलूँगी, पर आपका वियोग नहीं सह सक्गी।

रामचंद्र-प्यारी में फिर कहता हूँ। जंगल के कष्ट तुमसे सहे न जावँगे। पैदल तुमसे चला न जायगा। फल फूल खाने को मिलेंगे। तुम्हारा स्वभाव अति मृदृ है। तुम जंगल के निशाचरादिक देखकर भयभीत होजाओगी। हट को छो इकर तानिक विचार से काम लो। यहाँ तुमको स्वमः में भी कष्ट न हेगा।

सीता-नाथ! यह सब कुछ सच है। पर मैं इन कर्छों की कुछ भी परवा नहीं करती। नहाँ आप होंगे. वहां मुक्ते कोई कर्छ न होगा। मैं बार बार हाथ जोड़कर प्रार्थना करती हूं। मुक्तपर द्या करो। दयालु प्रभो. आपकी दया जगत् पसिद है,। फिर मेरे लिये क्यों कठोर हो रहेहो। क्या मुक्त से नेह तोड़ दिया? क्या आपको मुक्त से मेम नहीं रहा?

रामचन्द्रजीने सीताजी को बहुत कुछ समभाया, पर वह पतिवृता अपने धर्म से एक पग पीछे न हटी। वह जनकनं-दिनी जानकी जिसने पिता के घर एक पेर भी खाली भूमि पर न रक्खा था और पतिके घर धूप तक भी नहीं देखी थी. अब पति के साथ बन चलने के लिए खड़ी है। म्बर्ग समान भोग विलासों को जलांजली देने के लिए तैयार है, पर पति का संग नहीं छोड़ती। सुखमें सब कोई साथी हैं, पर सीता दुख में उपस्थितहै । पतिही उसका रूपहैं, पतिही उसका भूषणहैं, पतिही उसका धर्म हैं, पतिही उसका आराध्य देव हैं, यहां तक कि पतिही उसका सर्वस्य हैं । पतिके सुख में सुख और दुख में दुख समभाना यही सचा पतिवृत धर्म है

श्रंतमें रामचन्द्रजी ने लाचार हांकर संग चलने की आज्ञा देदी। श्रवतो सीता श्रंगमें फूली न समाई। दौड़ी हुई अपनी सास के पास श्राई और उनसे श्राज्ञा माँगने लगी।

कौश्वल्या रोने लगी और पुत्रवधू को छाती से लगाकर कहने लगी। हे चन्द्रमुखे! क्या तू भी जाती है ? अब इस अवधपुरी में कौन रहेगा? तुम्हें देखकरही संतोष करती, पर हाय! अब तो जीतेजी मरचुकी। राजदुलारी! तुम्हारा यह सुंदर शरीर जंगल के घोर दुख सहने के याग्य नहीं है। शाण प्यारी तुम तो यहां रहो। हा देव!मेरी मृत्यु क्यों नहीं आजाती। मैं इनके वियोग में किस तरह तहफ तहफ कर दिन कार्युगी।

सीता-माता इसमें किसी का दोप नहीं, यह हमारे पूर्व अग्रुभ कमें का फल है। आप विपाद न करें। कर्म बलवान् हैं। किसी का टाला टलता नहीं। अब मुक्ते आशीर्वाद दी-जिये, यदि जीवित रही, तो फिर आन मिलंगी

यह कहकर सीता राने लगी।

कौशल्या-लाइली क्यों रोती है ? आज का दिव मुक्ते देखना था। मेरे भाग्य में यही बदा था। तुम सदा पति की सेवा करती रहना। पातिवत धर्म को अपना धर्म सम-भना। संसार में वेही ख़ियां यश पाती हैं, उन्हीं की जगत् मशंसा करता है जो पातिवत धर्म का पालन करती हैं। तुम शीघ वनसे वापिस आना। मैं एक एक समय कष्ट से वि-ताऊंगी। हा! अब मेरा घर शून्य होगया।

त्वचमण भी चलने को तैयार होगया। सारी अयोध्या
में शोक छागया। घर घर में रोना रुहाट मचगया।
हाट बाज़ार बंद होगये। राम लच्मण सीता तीनों ने माता
पिता तथा कुटुम्बी जनों से खाज़ा लेकर नगर से बाहर
मस्थान किया। सारे नगर निवासी गला फाड़ फाड़ कर
रोने लगे। हज़ारों नरनारी उनके संग चलने लगे। राम
मना करते थे, पर लोग न मानते थे। बड़ी कठनाई से बहुत
दूर जाकर उन्हें समभा धुभाकर विदा किया।

🟶 सातवां परिच्छेद 🏶

 देवी जानकी असह कल्टों को सहती हुई कँकरीले रास्तों में जारही है, परन्तु पति के प्रेमवश उसके मुख कमल पर तिनक भी खेद नहीं। जब कभी शरीर सम्बन्धी अधिक कष्ट होता था. प्राणनाथ की ओर दिष्ट प्रसारतेही वह सब दुःख भूल जाती थी और उसके चेहरे से पूर्ववत् प्रसक्ता भलकने लगती थी। इसी तरह तीनों धीरे धीरे चलते, रमणीक वनों में विश्राम लेते, जंगल के कन्द्रमूल फलों को खाते रसभरी बातें करते, मार्ग में असहाय पुरुषों की सहायता करते और अपने बल पराक्रम से उनके कष्ट निवारण करते हुए बहुत दूर निकल गये और नासिक के समीप दएडक बन में जा पहुँचे।

यहां का जल वायु अति उत्तम है। प्रकृति की छटा अदभृत है। स्थान स्थान पर पानी के भरने बहरहे हैं। पत्ती
गण मीठे स्वर से कल नाद कर रहे हैं। ज्योंही यहां ठहर
कर जानकी ने तरह तरहके फलों का मिष्ट स्वादिष्ट भोजन
तैयार किया। उसी समय भाग्यवश दो चारण ऋदि के धारी
मुनि महाराज भी आगये। जानकीने बढ़ी भिक्तिसे उनको
भोजन कराया।

इसही समय एक पन्नी हुन्न पर से मुनियों के चरणों में आपड़ा। मुनि महाराई ने उसके पूर्व भवका हाल सुनाकर उसको आवक के बत धारण कराये और उसे रामचन्द्रजी के पास बोहकर आप आकाशमार्ग से विहार करगए। राम, जानकी इस पत्ती को जटायु कहकर पुकारने छंगे। जानकी इसे बहुतही प्यार करने छगी और हर समय इसे अपने पास रखने लगी।

🕸 आठवां परिच्छेद 🏶

र्र्ह्ण ए हैं क दिन लच्मण बन में इथर उधर सैर करता क्रिक्किक्कि फिर रहाथा। अकस्मात् उसकी दृष्टि ' सूर्य-हास्य ' नामक शकाशमान खह्नपर पड़ी । उसे लंकाधिपति रावण का भानेज शम्बुक एक बांस के बीड़े में १२ वर्ष से सिद्ध कररहा था । इसे देखतेही लच्मण ने उछलकर खड़म को लेलिया और परीचार्थ उसी बीडे पर चलादिया जिससे सारा वीड़ा एकही हाथ में साफ होगया और उसके ै साथही खद्ग के अभिलापी शम्बूक का शिर भी धड़ से जुदा होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। लच्मण खड़ग को लेकर अपने डेरे पर चला आया । इथर शम्बूक की माता चन्द्र-नखा (सूर्पनखा) जो शम्बूक के लिए भोजन लेकर आई थी, अपने पुत्र का शिर कटा देखकर बेहोश होगई । बहुत देर में सचेत होकर हाहाकार करतीहुई घातक की खोज में इधर उधर जंगल में भटकने लगी । हाय प्रापी काल ! तुभी मेरा ्रही पुत्र भक्तण करना था। मैंने तेरा क्या विगादा था ? हा मेरे प्यारे लाल ! तू अपनी माता को छोड़कर कहां चलागया ? कौन दुष्ट तेरे खूनका प्यासा था?

इस मकार चन्द्रनला विलाप करती फिर रही थी कि उसकी इप्टि राम लच्मण पर पद्गई। इन्हें देखतेही वह तमाम शोक भूलगई और काम के वाण से घायल होगई। अव सर पाकर उसने इन दोनों भाइयों से अपनी मनोकामना पूर्ण करने की पार्थना की, परन्तु इन्होंने मौन धारण कर खिया और कोई भा उत्तर न दिया। यह देखकर और अपनी दाल गलती न देखकर चन्द्रनखा बुरा हाल बनाकर होती पीटती अपने पति खरद्षण के पास गई और कहने खमी कि नाथ, आप के राज्य में एक दुष्ट ने मेरे पुत्र को मारकर खद्ग रत्न ले लिया और उसी पापी ने मुक्ते ब-लात्कार पकड़कर मेरे शील को भंग करना चाहा, परन्तु पूर्व पुरुष के उदय से और कुल देवी के प्रसाद से में शील बनाकर यहां वचआई।

यह बात सुनतेही अलंकाधिपति स्वरद्वण कोध के मार् लाक ताता हो गया। उसने तत्कालही रावण को पत्र लिखा और बहुत बड़ी सेना लेकर राम लच्मण पर चढ़गया।

चारों तरफ से सेना को आती देखकर सीता रामचन्द्र जीसे कइनेलगी-नाथ! देखो यह सेना हमारी ओर आरही है, लच्मण किसी को मारकर खड्ग लेखाये हैं, उसके का-रण अथवा उस दुष्टा व्यभिचारिणी श्ली की कृपासे यह उपदव हुआ जान पड़ना है। राम-(धनुष चढ़ाकर) प्यारी ढरो पत, कोई चिता नहीं। सेना आती है, तो आने दो।

लद्मण-(तीर कमान हाथ में छेकर) पूज्य भ्राताजी आप सुखपूर्वक यहां रहें, मैं इन गीदड़ों को अभी भगाआता हूँ। आप सीताजी की रक्षा करें। यदि आवश्यकता हुई, तो मैं आप को सिंहनाद करके बुलालूँगा।

रायचन्द्रजी सीताजी के पास बैठ गए। लच्मण रशाशृमि में जाकर बड़ी शूरवीरता से अञ्चका सामना करनेलगा और ऐसी चतुराई से लड़ा कि थोड़ी ही देर में शत्रुकी सारी सेना के पैर जलाड़ दिये। अपनी सेना को पीछे इटते देलकर खरद्षण ने रावण की सहायता के लिए बुला भेजा।

🟶 नव्यां परिच्छेद 🏶

% रा अवण समाचार पातेही खरद्षण की मदद के %%%% तिए पुष्पक विमान में बैठकर चल पड़ा। परन्तु अभी रणभूमि में आया भी नथा कि रास्ते में सीता के रूप लावएय को देखकर मुग्ध होगया। यह कोई देवकन्या है, या कामदेव की श्ली रित है, या शिवकी अर्थागिनी पार्वती है रिसी मुन्दर नवयौवनवती श्ली तो न कभी हुई, न कभी होगी । इसके विना मेरा जीवतव्य निर्श्वक है । इस तरह वह तरह तरह के ऐसे विचार करने लगा । अब रावण को लोक परलोक की कोई चिन्ता नहीं, पुराय पाप का विचार नहीं, "युद्ध में जाना है" इसका भी ख्याल नहीं। अब तो एक मात्र सीता उसके मन में बसी है, उसी के भेम में वह अंधा होरहा है और उसी के हरण करने का उपाय सोच रहा है।

रावण साधारण पुरुष न था । वह बड़ा ज्ञानी पंडित था। वहा पराक्रमी था । तीन खंड का अधिपति, महाश्रूर बीर तेजस्वी राजा था। परन्तु चित्त की गति विचित्र है। लोक में लोभ समान कोई पाप नहीं और लोभ में भी पर-श्ली के समान कोई अनर्थ नहीं । परहीं के कारण रावण जैसे पंडित की भी बुद्धि विगड़ गई। उसे एक कर्णपिशाची विद्या सिद्ध थी। उसके बल से उसने यह जान लिया कि छच्मण आपत्ति के समय सिंहनाद करने को कह गया है। अब तो वह फूला अंग में न समाया, उसका काम बन गया। उसने आपही लच्मण के समान सिंहनाद करदिया। रामचन्द्रजी को ''राम! राम!" की पुकार सुनाई दी।

इन शब्दों को सुनतेही राम का चित व्याकुछ होगया। जन्होंने विचार किया कि भाई पर अवश्य कोई आपत्ति आई है और उसी ने यह शब्द किया है। लाचार शाणप्यारी सीता को जटायु पत्ती की रत्ता में छोड़कर आप भाई की मदद के छिये युदस्थल में जा पहुँचे।

जिस समय अशुभ कर्मों का उदय आता है, उसं समय सारे कुल देवी देवता सो जाते हैं। बैठे विठाये आपित का पहाड़ सिर पर आपहता है। यह आपित कौन कम थी कि राज्य विभूति को छोड़कर, सुल सम्पित को त्यागकर जनक नंदिनी गर्मी सर्दी के कष्टों को सहन करती, भयंकर बनों में पैदल पित के संग फिरती थी। पर हा दैव!तू बड़ा दुष्ट है। तुभे इस कोमळांगी पर तिनक भी दया न आई। एक आपित से निकळी नहीं कि इस बेचारी को दूसरी में पटक दिया।

रामचन्द्रजी के जाते ही रावण उस स्थान पर आया, जहां एतिव्रता सीता अपने शाणनाथ को याद कर रही थी। एक अपरिचित व्यक्ति को अपनी तरफ शीधता से आता देखकर सीता भय से काँपगई और कहने लगी 'तुम कौन हो ? क्यों मेरी तरफ बढ़े आरहे हो ? ज़रा दूर रहो, परस्ती के आँचल को मत लुओं ।

रावण-प्यारी! "कहाँ यह वन, जहाँ भाल, बन्दर कहाँ तू सुकुमारी अति सुन्दर। " पिये, यह स्थान तुम्हा रे योग्यानहीं, यह जंगल सुनसान वियावान है। नाना दुष्टभ -यंकर जीव यहाँ विचरते हैं। कोई तुम्हें इणमात्र में भन्ना कर जायगा। चलो, में तुम्हें विमान में विठाकर लंकापुरी ले चलता हूँ, जिसकी बनाक्ट सजाक्ट के सामने इन्द्रपुरी भी शरमाती है। मैं तीन खएड का धनी रावणं हूँ। मेरे कल पराक्रम को देखकर काल भी भयभीत होता है मेरे यहाँ चलो, वहाँ ज्ञानन्दर्वक जीवन के अकथनीय मुख भोगना। मुभे आशा है कि लंका देखकर तुम्हें रामचन्द्र का नाम भी याद न आयगा।

सीता-अरे पापी ! कैसे अब्द मुख से निकालता है। हट, दूर हो। पर खी से एकान्त में बात करनाही पाप है। मुक्ते तेरे महलों की ज़रूरत नहीं। मेरे लिये वही महल हैं, जहां मेरे पाणपित श्रीराम विराजते हैं। याद रख जिस लंका की तू इतनी बड़ाई करता है, एक रोज उसमें गीदक और कुत्ते रोएँगे।

वृथा अभिमान करता है अरे मितमन्द तू वलका ॥ टेक अकेली जानकर मुभको वचन बोला है तू छलका । अरे इट दूर हो पापी, न पकड़े पल्ला अंचल का ॥

रात्रण-विये, तुभी मेरे बलका पता नहीं है। मैं कुवेरका सौतीला भाईही हूँ। मेरे डर से देवता तक थर थर कापते हैं, मनुष्यों की तो विसात ही क्या है। मेरे सामने तेरा पति तिनके के बराबर भी नहीं। मेरी शक्ति, मेरी विभृति, मेरा ऐश्वर्य, इन्द्र से भी अधिक है। मेरे मंदोदरी आदि सहस्रों श्रियां हैं, में सबसे उच्चपद तुमको दूँगा। मेरा वचन मानो, मेरे साथ चलो।

सीता-अरे नीच कुवर का भाई बनते और पराई की को चुराते लज्जा नहीं आती । अरे राज्ञस इन्द्र की इन्द्रानी सची को चुराकर भलेही कोई जीता बचजाय पर रामकी भार्या को हर कर कोई नहीं बच सकता । बस आधिक मत बोल, मेरे हाथ न लगा । यदि तू अधिक सतायेगा, तो अभी माण दे दूँगी । इतना कहकर सीता राम राम पुकार कर रोने लगी ।

रावण उसको पकड़कर विमान में विठाने लगा । वेचारे जटायु ने चोंचें मार मार कर उसे बहुत रोका और उसका बन्न भी फाड़ दिया; परन्तु रावण जैसे बलवान पुरुष के सामने अल्पशिक धारी पत्ती क्या कर सकता था ? रावण ने जटायु को मारकर गिरा दिया और सीता को बलात्कार विमान में विठाकर लेक्स दिया चलदिया।

🕸 दशवां परिच्छेद 🏶

'हाय राम! हाय राम!! यही शब्द उसके मुख से बार बार निकलते हैं। हा जगदीश! मुभ्भपर यह कौनसी विपत्ति आई। मुभ्भ अवला पर यह क्या दुख डाल दिया, मैं किस तरह सहन करूं। माणनाथ! आप कहां हैं? शूर बीर देवर लच्मण! तुम्हारी शाक्ति कहां गई? तुम्हारा बल, पराक्रम कहां है? हा भाई भामंडल! क्या तू भी इस समय अपनी ब-हिन की सहायता नहीं कर सकता। कुल देवी! क्या तू भी रूठगई। भगवन्! मैंने ऐसा बान अपराध किया है?

रावण-हं देवि, मैं तेरी सोहनी सूरत और मनोमो-हनी मूरत को देखकर प्रेम वश विह्वल हुआ जाता हूँ। य-धिप तेरा मुन्दर मुख क्रोध से लाल हो रहाहै, तथापि वह मुभे पाणों से भी प्यारा मालूम होता है। प्यारी ! जिन नेत्रों ने मुभे घायल किया है, उन से तिनक तो मेरी श्रोर भेम दृष्टि से निहार, जिस से मेरे तहफते हुए दिल को कुछ तो शांति पाप्त हो।

सीता अरे दुराचारी, नराध है जुभे शर्म नहीं आती? तेरे अन्तः पुर में सहस्रों रूपवती खियां होते हुए भी विषय वासना के वश तू पर स्री को विकार भाव से देखता है, और मुक्त अवला के शील भंग करने के लिये उतारू हुआ है? क्या तुक्त जैसे भूपति को ऐसा घोर अन्याय करना उदित है? याद रख, इसका फल बहुत दुरा होगा।

रावण-प्यारी! जो होगा सो हो रहेगा, इसकी कुछ चिंता नहीं। तेरे लिए मैं पाण तक देने को तैय्यार हूँ।

सीता-धिकार है तुभ जैसे राज्ञसी नीच पुरुष को । वस, मेरे हाथ न लगा और अधिक बातें न बना । मैं कोई ओबी जी नहीं हूँ जो तेरी चिकनी चुपड़ी बातों में आकर अपने शील को गवाँ दूँ। मैं शाणों को मुद्ठी में दवाये बैठी हूँ। तूने हाथ चलाया और मैने उन्हें गँवाया।

अब रावण लंका में पहुँच गया है, श्रीर सीता को प्रमद उद्यान में ठहरा कर इस चिन्ता में लगा हुआ है कि किसी उपाय से इसको शसन करूँ। इसी दशामें पटरानी मंदोदरी उसे चिन्तित देखकर उसके पास आई और कहने लगी, नाथ, आप क्यों उदास हो रहे हैं ? क्या खरदूषण की मृत्यु का शोक है ? हम चत्री हैं। चत्रियों का यही धर्म है। इस के लिए शोक करना न्यर्थ है।

रावण - बल्लभे, इसका तो मुक्ते कोई शोक नहीं, पर मुक्ते शोक अपना है। मेरी जान के लाले पड़ रहे हैं। प्रिये! तेरे समान जगत में मेरा कोई मित्र नहीं। मुक्ते विश्वास है कि तू मेरा जीतेजी साथ देगी। यदि तू मेरा जीवन चाहती है, तो सीता को मुक्त पर मोहित कर, नहीं तो अभी माण तने देता हूँ। मन्दोदरी-नाथ यह सीता का अभाग्य है कि आप जैसे श्रुरवीर महाराजाधिराज उससे पार्थना करें और वह स्वीकार न करे। पर यह क्या आवश्यक है कि वह स्वी-कारही करे, यदि समभाने से न माने तो बल को उपयोग में लाइये और अपनी मनोकामना पूर्ण कीजिए।

रावण-प्यारी, यही तो आपित है। नहीं, अबतक क्या था। मैं मितिज्ञा करचुटा हूँ कि कोई भी परस्नी जब तक वह स्वयं मुक्ते न चिहिगी, मैं उससे ज़बरदस्ती क-दार्षिन करूँगा। इससे निवशहूँ। मेरी प्यारी, अब तूही कोई उपाय कर, जिससे सीता मुक्तको चाहने लगे।

यह सुनकर मन्दोदरी सीता के पास वगीचे में गई? -भीर कहने लगी, हे बहिन, तुम उदास क्यों होरही हो? तुम्हें क्या दुख है? ऐसे सुन्दर रमणीय स्थान में तो प्रसन्न चिच रहना चाहिए।

सीता-बहिन, पापी रावण मेरा वर्म लेने पर उतारू हुआ है। मैं कोई ऐसा उपाय सोच रही हूँ जिससे उस दुष्ट अन्यायी के हाथ से वचूँ।

मन्दोदरी-अहा, हा ! महाराजा रावण और उसके प्रति ये शब्द ! प्यारी बहिन, अपनी जिह्ना को रोक । अभी कोई सुन छेगा, तो मेरी तुम्हारी दोनों की आपित आजाय

गी। वहिन, तू क्या कहती है ? धन्य है वह नारी जिसका रावण जैसा सर्व गुण सम्पन्न पति हो । मुक्तको आश्चर्य है कि तू राम जैसे निर्जन वन के निवासी, निर्धन शक्ति हीन भूमि गोचरी, भिखारी का ख्याल दिलसे न निकालकर तीन खण्ड के अधिपति विद्याधरों के स्वामी, अनेक विद्याओं के पारगामी, पराक्रमी महाराजा रावण के साथ जीवन के सुखों को नहीं भोगती।

सीता-(नेत्रों में आँमू लाकर) हाय! इम अभागों का कोई शरण नहीं । अशा थी कि मन्दोदरी जैसी पति-बना शीलवती स्त्री कुछ अवश्य सहायता करेगी; परन्तु हा जब अशुभ कर्मी का उदय आता है, बनते काम भी बिगड़ जाते है। मित्र शत्रु होजाते हैं। भाई बन्धु बिगाने होजाते हैं ्रविन मन्दोदरी, इसका तो मुभ्ते कोई ख्याल नहीं कि तुम रावण की तरफ़दारी और मेरा विरोध करती हो, श्रोक तो इस वात का है कि तुम जैसी पतिब्रता स्त्री ऐसे घृणित शब्द अपने भूख स निकालती हो । क्या कोई पतिव्रता ऐसा निन्ध कार्य कर सकती है ? मैं नित्जा करचुकी हूँ कि चाहे भाग जाते रहें, शरीर के टुकड़े टुकड़े उड़जायँ, कितनी ही आप-त्तियां सहनी पड़ें, परन्तु पर पुरुषकी ऋोर कभी देखूँगी भी नहीं और जबतक राम लहमण की कुशलता का समाचार न सुनल्ँगी, अन जल का स्पर्श भी न करूँगी। ये बातें हो ही रहीं थीं कि रावण भी वधाँ आगया और कहने लगा- देवी में कब तक तेरे लिये उहरूँगा । यदि त् नहीं मानती तो याद रख, तेरे लिये अच्छा न होगा।

सीता-वस अधिक मत बोल, मुभे यह पसंद नहीं। मैं मरने से नहीं डरती । यदि तू अधिक पांव फैलायगा, तो अभी गला घोट कर मरजाऊँगी।

भजन ।

अरे रावण तू धमकी दिखावे किसे. मुक्ते मरने का खोंफ़ो ख़तर ही नहीं । मुक्ते मारेगा क्या अपनी ख़ैर मना तुक्ते होनी की अपने ख़बर ही नहीं ॥ अरे० । क्या तू सोने की खंका का मान करे मेरे आगे वह मिटी का घर भी नहीं । मेरे मन का मुमेर हिलेगा नहीं, मेरे मनमें किसी का डर ही नहीं ॥ अरे० । आवें इन्द्र नरेन्द्र जो मिल के सभी क्या मजाल जों शील को मेरे हरें । तेरी हस्ती है क्या सिवा राम पिया, मेरी नज़रों में कोई बशर ही नहीं ॥ अरे० ॥ तेरे घर में हैं कितनी ये रानी बरीं, आया इस पर भी तुक्तको सबर ही नहीं । पर तिरिया पै तूने जो ध्यान दिया, क्या निगोदो नरक का ख़तर ही नहीं ॥ अरे० ॥ मेरी चाह जो धी तेरे दिलमें बसी, क्यों न जीत स्वयंबर तू लाया यहीं । वह कौन सा देश बतावे मुक्ते, जह पहुँची स्वयम्बर की ख़बरी नहीं ॥ अरे० ॥ जो हुआ सो हुआ अन भी मान कहीं, मुक्ते राम

पिया पै पठा दे सही । कहै न्यामत न मानैगा तू जो कही, तेरे धड़ पर रहेगा शिर ही नहीं ॥ अरे॰ ॥ (न्यामतसिंह)

🟶 ग्यारहवां परिच्छेद 🏶

मू कि कि कहीं तुमने तो मेरी सीता नहीं देशी । कि प्राप्त की स्वाप्त कोई काम नहीं, उधर राम लच्मण सीता के वियोग में विकल हो रहे हैं । राम ने जिस समय सीता को कुटी में न पाया, उनके होश हवाश जाते रहे, वे पछाड़ स्वाकर धम से नीचे गिर पड़े और '' हाय जानकी, पाण पाण की '' कहकर रोने लगे । कभी इधर देखते हैं, कभी उधर । यह सोचकर कि कहीं हलों में तो नहीं छिष गई, कहीं जंगल देखने को तो नहीं चली गई, कभी मोह वश अवोल हलों से पूछते हैं । कभी वन के पशु पंत्रियों से कहते हैं कि कहीं तुमने तो मेरी सीता नहीं देखी ।

चौपाई।

,.11

हा गुणलान जानकी सीवा। रूप शील व्रत नेम पुनीता।।
हे खग, हे मृग मयुकर श्रेनी। तुम देखी सीता मृगनैनी॥
सुन जानकी तोहि विन ब्राजू। मोहि न भावे एकहि काजू।
मिया वेग किन भगटउ आई। केहि कारण नहिंदेत दिखाई॥

े तुलगीदासजी)

इस तरह से विलाप करते हुए जंगल में फिरने लगे। लच्मण ने बहुत कुछ पैर्ध्य दिया, परन्तु उन के विधित हृदय को कुछ भी शांति न हुई। प्राण प्यारी के विलोह का किसे हुख नहीं होता और विशेष कर सीता जैसी पतिव्रता सुशीला ह्यी का हरण तो बज्ज पात समान समझना चाहिये।

यग्गपि जानकी को उसकी हटसे साथ में लाये थे, परन्तु अब तो इस निर्जन वन में वह उनके जीवन का अवलम्ब थी। उसे देखकर ही वे सारे कहों को भूल जाते थे और घर के समान सुखों का अनुभव करते थे। जानकी के बिना उनका जीवन निर्थक हागया। खाना पीना सब भूलगये। हाय जानकी, हाय जानकी । के सिवाय और कुछ उनके सुख से न निकलता था। एक एक घड़ी कह से बीतती थी।

कई दिनों के बाद उनका कि कि न्यापुर नरेश सुग्रीव और प्रतन्त्रत्यसुत हनुमान आदि से मिलाप हुआ और बहुत कुछ मित्रता होगई। उनसे ज्ञात हुआ कि सीता को लंकाधीश रावण हरकर लेगया है। अब तो कुछ जान में जान आई और लच्मणजी को ढाढस वॅथगया। शत्रु का पता लगना ही कठिन था, अब पता लग गया, बस सीता को आई ही समभो। यह सुनकर सुग्रीवादि सब विद्याघर काँप ने लगे और कहने लगे, आप ऐसे शब्द क्यों कहते हैं। रावण साधारण पुरुष नहीं है। हम सब उसके आधीन हैं। इदय से आपके दास हैं, पर वाहर से रावंण के विरुद्ध हमारा साहस नहीं होता।

लदमण-अरे भाई ! इतने क्यों घवड़ा गये ? क्या रावण कोई देवता है ? जो कायर पर श्ली को इर कर को गया, वह मेरे सन्मुख खड़ा भी नहीं रह सकता।

विद्याधर-महाराज! आप भी क्यों एक श्ली के लिए इतने विह्नल हो रहे हैं। ऐसा सीता में क्या धरा हैं जिसके लिए जान वृक्त कर मौत का सामना किया जाय। आप की एक ही सीता गई। हम आप को सीता से बढ़ कर सैकड़ें। सीता लादेंगे।

रामचन्द्र-भाई, तुम्हें इन वार्तो से क्या मतलब ? न मुभे सी चाहिएँ न दोसी। यदि वे हनारों भी हों, तो वे भी सीता के सामने पैर की धूल हैं। चाहे कुछ हो, जान जाय या रहे हम सीता को रावण के यहाँ से लाकर ही छोड़ेंगे। आप हमारा साथ दें या न दें।

बहुत कुछ वाद विवाद के बाद महाराज सुग्रीव ने अपने आधीन राजा पवनंजय के पुत्र बीर हनुमान को सीता जी के समाचार छाने के लिए लंका जाने को कहा। हनुमान आझा प्राते ही लंका की ओर रवाना होगया और बहुत जल्द पहुँच कर विभीषण से मिला और कहने लगा, कि कहिए सीता जी का क्या हाल है ?

विभीषण-क्या वतलाऊँ. गाज ११ दिन होते हैं उस वेचारी ने अब जल आँखों से भी नहीं देखा।

हनुमान-तो फिर आप क्यों उस पतिवता के शाण किए टालते हैं। रावण को समभा बुभाकर व्या उसे राम के पास नहीं भिजवा देते।

विभीषण-प्यारे हनुमान, में क्या कह । मैनें सी बार रावण को समभाया, पर उसने मेरी एक न मानी और साफ़ कह दिया कि जो कोई मुभ से सीता के विषय में कहेगा, में उस से शत्रुवत् व्यवहार कहँगा। अब बतलाओ क्या कहूँ, और क्या कहँ ?

🕸 वारहवां परिच्छेद 🏶

क्रिकेटिट के बार स्थान विभीषण से वार्तालाप करके प्रमद् क्रिक्ट के बान में पहुँचा जहाँ सती सीता पित के वियोग में पितन मुख वैटी थी। यद्यपि यह बन अनेक शोभाओं से मंडित या और साज्ञान नन्दन बन जान पहता था, परन्तु महादेवी को यह जंगल ब्याबान मालूम होता था। उसके नेत्र आँसुओं से भर रहे थे। सिर के केश विखर रहे थे। उस की यह दशा देखकर हनुमान का हृदय भरआया। उसने हह संकल्प कर लिया कि चाहे शुझ हो इस पित

परायणा सती को इस दुःख रूपी समुद्र से अवश्य निकालूंगा, इसका राम से मिलाप कराऊँगा।

इनुमान ने चीरे से आगे बद्कर गुप्त रूप से श्रीराम की श्रंगृटी सीता के चरणकमलों में डाल दी। पुदिका देखतेही सीता का मुख कमल हर्ष से कुछ प्रफुल्लित होगया। पास में जो श्ली बैटी थी, उसने उसी समय जाकर प्रसन्नता के समाचार रावण को कह सुनाये। रावण ने विचार किया कि शायद सीता की कुछ समभ में आगया है। अब मेरे कार्य की अवश्य सिद्धि होगी। उसने तत्काल ही मन्दोद्दरी को सारे अन्तःपुर सहित सीता के पास भेजा।

मन्दोदरी-हेबाले, आज त्मसब चित है। तूने हम पर बड़ी रूपा की। अब त्लोक के स्वामी रावण को अंगीकार कर।

सीता—हे खेचरी, आज धुक्ते मेरे पित का कुशल समा-चार मिला है। वे आनन्द में हैं, इसीलिये धुक्ते हुए हुआहै। मन्दोदरी ने समका कि इसने ११ दिन से कुछ खाया पीया नहीं है, इस कारण इसे वातरोग होगया और यहा तदा बकती है। तब जानकी मुद्रिका छाने वाले से कहने लगी कि भाई, में समुद्र के भीतर इस द्वीप्र के अगम्य वन में पड़ी हूँ। जो कोई उत्तम जीव मेरे माणनाथ की यह मुद्रिका काया हो, वह मगट होकर साजात दुरीन दे। तथ हलुमान ने आगे बढ़कर हाथ जोड़ कर मणाम किया, अपना पूरा पूरा परिचय दिया और फिर श्रीराम का संदेशा सुनाकर बिनय पूर्वक निवेदन किया कि हे सती शिरोमाण बहिन श्रीराम स्वर्ग के समान रमणीय स्थान में विराजमान हैं, परन्तु तुम्हारे बिना उन्हें वहाँ ज़रा भी बिशाम नहीं मिलता। सारे भोगोपभोगों को तज कर मौन धारे तुम्हारा ध्यान कर रहे हैं। सदा तुम्हारा कथन करते हैं, और केवल तुम्हारे लिए ही शाणों को धारण कर रहे हैं।

यह सुनकर सीता को अत्यन्त तुःख हुआ। वह आँखों में आँसू भर कर कहने लगी भाई, मैं दुःख सागर में पड़ी हूँ, तुम से पाणनाथ के समाचार सुनकर बहुत बुछ ढाढस वँध गया है. तुम बड़े उपकारी हो, में तुम्हें जन्म जन्मान्तरों में न भूलूँगी, पर भाई मेरे मन में अनेक विकल्प उठते हैं, तुम ने मेरे नाथ को कहाँ देखा। तुम्हारा उनसे कसे परिचय हुआ। कदाचित मेरे पित परलोकवासी होगये हों, अथवा सन्यासी होगये हों और तुम्हें यह मुद्रिका मिल गई हो, छपा करके सारा हाल सुनाओ जिससे मुक्ते विश्वास होजाय।

इसके उत्तर में हनुमान ने राम लच्मण का सारा हतानत आयोपान्त कह मुनाया जिससे सीता को पूर्ण विश्वास होगया कि यह श्रीरामचन्द्रजी का ही दूत है। यह देखकर मन्दोदरी ने हनुमान से कहा-बड़े आश्चर्य की बात है कि त् महाराज रावण का सम्बन्धी है, तो भी भूमगोचरियों की दूत बनकर आया है। क्या तुक्ते अपने स्वामी का कुछ भी विचार न आया ?

हनुमान-इसका तो आश्चर्य करती हो, पर तुम तो कहो कि राजा मयकी पुत्री और रावण की पहरानी, होकर भी यहाँ दूती बनकर क्यों आई हो । जिस पति के प्रसाद से तुमने देवाँगनाओं के समान सुख भोगे, शोक कि उसे अकार्य में स्वयं लगाती हो और ऐसे कार्य्य की अनुमोदना करती हो। तुम तो सब बातों में प्रवीणा, परम बुद्धिमची थीं, पर न जाने क्यों तुम्हारी मती मारी गई कि देखते भालते अपने हाथों अपने लिए गढ़ा खोदती हो। तुम अर्थ- चक्री की महिषी पहरानी हो, पर अब मैं तुम में इस पद की ज़रा भी योग्यता नहीं देखता।

हनुमान के वचन सुनकर मन्दोदरी कोध से लाल तार्ती होकर कहने लगी-अरे हनुमान, तेरा वाचालपना निर्धक है। निर्लाग्न सुग्रीवादिक अपने स्वामी रावण को छोड़कर भूमिगोचिरियों के सेवक बने हैं, जान पड़ता है कि इनकी धृत्यु निकट आई है। इनके समान मूड और कृतष्मी और कौन होंगा। सीता से मन्दोदरी के ये वचन सहन न हो सके। उसने तत्काल उत्तर दिया, अरी मंदबुद्धि मन्दोदरी, तू मेरे पति को नहीं जानती, इसीलिए इतना अभिमान करती है। अरी किसी से पूछ तो सही, कि मेरे राम कितने वली और पराक्रमी हैं। क्या किसी की सामर्थ्य है कि उनके सन्पुल आसके ? क्या कोई नर इस भूमि पर उपजा है, जो बल और विद्या में उनका सामना करसके। क्या तूने कभी मेरे शूरवीर देवर छल्मण का नाम नहीं सुना, जिसके दर्शन से देवता तक कम्पित होजाते हैं, मनुष्यों और विद्यापरों की तो बातही क्या है। अधिक क्या कहूँ, मेरे पित अपने भाई छल्मण सहित समुद्र तिरकर शीध ही यहाँ आते हैं और तेरे पित को मारकर तुभे विधवा बनाते हैं।

को मारने के लिए दौड़ीं, पर हनुमान ने बीच में आकर सब को गारने के लिए दौड़ीं, पर हनुमान ने बीच में आकर सब को रोक दिया। तत्र वे सब मानभंग के कारण उदास होकर रावत्य के पास गई। इधर हनुमान ने सीताजी से आहार के लिए प्रार्थना की और थोड़ा बहुत खिलाकर कहने लगे, बहिन, तुम मेरे कन्ने पर बैठ जाओ, में तुम्हें श्रीराय के पास ले चलूँ। पर आज्ञा कारिकी सीताजीने उत्तर दिया कि भाई में इस तरह नहीं जाती। कदाचित् पाणनाय यह कहने लगें कि बू बिना बुलाये क्यों आई? तुम जाकर उन से सब हाल कहना भौर उनकी धीरज बँधाना, तब जैसी उनकी आज्ञा होशी। में उनकी आज्ञा के बिना एक पग भी आगे पीले - मन्दोद्दी ने रावण से जाकर कहा कि महाराज, पवनंजय का पुत्र हनुमान राम का द्त बनकर आया है और उसने ही सीता को बहका रक्खा है। रावण ने तुरन्त नारद को हुक्म दिया कि जाओ, हनुमान को शीघ्र पकट छाओ। गारद ने किसी तरह से हनुमान को पकड़ कर रावण के सामने उपस्थित कर दिया। रावण तथा उसके समस्त कार्यकर्ता मंत्रीगण हनुमान को धिकारने लगे. कि अरे दुष्ट पापी, त् बहा कतन्नी है। जिस स्वामी की पृथ्वी में तूने शभुता प्राप्त की, उसके प्रतिकृत होकर तू भूमगोचिरियों का द्त बना। त् पवन का पुत्र नहीं, किसी और का है। केशरी सिंह स्थाल का कभी आश्रय नहीं लेता। तू राजद्वार का द्वेषी है। तुभे अवश्य मार हालना चाहिए।

हनुमान इन शब्दों को सुनकर इँसकर कहने लगा कि कौन जाने किसकी मृत्यु निकट आई है। तेरे सइसों खियाँ होते हुए भी तुभे संतोष न हुआ। तूने पापी, परस्ती पर हिंछ डाली। रावण तू रत्नस्रवा राजा के कुलत्तय पुत्र हुआ। तुभ से राज्यस वंश का त्तय होजायगा। तेरे वंश में बड़े बड़े पर्यादा के पालक राजा हुए, पर न जाने तू कहाँ से दुष्ट, कुलनाशक वंशविध्वंसक हुआ, ऐसे वचन कहकर फुर्ती से अपने बन्धन लुड़ाकर सब के देखते देखते ऊपर को उड़ गया और शीधही श्रीराम और सुग्रीव के पास पहुँच कर उसने सीता का सारा हाल कह सुनाया।

ॐ तेरहवां परिच्छेद ॐ

से से दें वे सम्मति से यही निश्चय हुआ कि लंका को पापी दुशत्मा को अवश्य दण्ड देना उचित है। भागंडल को भी बुलालिया और सुप्रीवादिक अनेक राजा महाराजा शूरवीर योदा श्रीराम लच्मण के साथ लंका को रवाना हुए। मार्ग में अनेक राजाओं को परास्त करते हुए और अभिमानियों का मान गिलत करते हुए लंका में जा पहुँचे । छच्मण को आया देखकर रावण को विभीषण ने बहुत कुछ समभाया और सीताजी वापिस देने के लिए शक्ति भर कहा, परन्तु उसने एक न सुनी और कोधित होकर छंका से निकल जाने का हुनम दे दिया। विभीषण उसी समय अपनी सेना सहित राम से आ मिला और इनका जी जानसे भक हो गया । रामचन्द्रजी भी विभीषण को पाकर बड़े शसन्न हुए और अब उनको पूर्ण विश्वास हो गया कि मैं अवश्य लंका को जीतूँगा।

रणभेरी बजते ही दोनों ओर की सेना सज धज कर रणभूमि में विधिपूर्वक खड़ी होगई और इशारा होते ही वाणों की वर्षा होने लगी । दोनों पत्त के सुभट अपना अपना बल दिखलाने लगे। इथर लच्मण, विभीषण उधर रावण, कुम्भकर्ण अपने अपने गुण दिखलाने लगे। दोनों दल में घोर संशाम होने लगा। श्रीराम ने कुंभकर्ण को घेर लिया और नागफाँस से बाँध लिया । उधर इन्द्रजीत को लक्षण ने पकड़ लिया । रावण कोई तीर विभीषण पर छोड़ने को ही था कि उसने लक्ष्मण को तीर ताने सामने खड़ा देख लिया और इस ज़ोर से अपने शक्तिवान को लक्ष्मण पर चलाया कि उसके लगते ही लक्ष्मण मूर्च्छा खाकर गिरपड़ा।

भाई को गिरा देखकर रामचन्द्र के होश हवाश जाते रहें और साहस ट्टगया । वे उस दिन युद्ध को वंद करके लच्मण का सिर गोद में रखकर धाह मार मार कर रोने लगे। हाय! लच्मण हाय! भाई तू बोलता क्यों नहीं? तुभे यह कैसी निद्रा आई? तूने अब तक तो साथ दिया, अब अंत समय क्यों कठ गया? भैया! उठ, आंखें खोल, देख तो, में कैसा तड़प रहा हूँ। पुभे अकेला यहाँ क्यों बोद दिया? भैया! अकेली तो लकड़ी भी नहीं जलती । तेरी माने तुभे धरोहर रूप सौंपा था, अब में उसे जाकर क्या पुल दिखाऊँगा? भैया! देर न कर, उठ खड़ा हो, में चाण भर भी तेरा वियोग नहीं सहन कर सकता। सीता बिछुकी तो क्या तू भी बिछड़ गया ? इस प्रकार श्रीराम विलाप करने लगे और हा लच्मण! हा लच्मण! कहक र रोने लगे।

सीताजी को भी ये समाचार मिलगये । पहिले से ही उसकी दशा दुरी थी, अब तो उसपर सालात एक आपि का पहाड़ ही दूट पड़ा। हाय लल्मण ! क्या तुम जैसा शूर बीर बलवान आजकी घड़ी के ालिए ही पैदा हुआ था? प्यारे देकर, क्या तुमने मुक्त पापिनी के लिये अपने शाणों तक को अपीण कर दिया ?

सारी सेना में कोलाइल मचगया। सबके नेत्रों से टप टप आँमू गिरने लगे।

कुछ देर के बाद शुभ कमेंदिय से एक आदमी आता हुआ दिखलाई दिया। उसने हनुमान को देखतेही कहा कि तुम अयोध्या जाकर द्रोणमेय की पुत्री विशल्या के स्नान का जल ले आओ। हनुमान तत्कालही अयोध्या को रवाना होगया और वहाँ से विशल्या को ही ले आया। उसके स्नान के जल के छीटे देने से लच्मण खड़े होगये और होश में आकर शत्रु से लड़ने के लिए तैयार होगये।

🕸 चौदहवां परिच्छेद 🏶

रा इपण के अच्छे होजाने का संवाद रावण को भी पालूम होगया। उसने और कोई उपाय न देख-क्षित्र क्षिपी विधा को सिद्ध किया और युद्धमें जानेसे पहले वह एक बार फिर सीता के पास गया और बड़े प्रेमसे कहने लागा, हे देवी, यदि अब भी तुम को राम की अभिलाका है तो उसे मन से निकाल दो। अब उसका पूर्ण होना असंभव है। मेरे साथ आनन्द्रपूर्वक जीवन के मोग भोगो और मेरी उभरती हुई इच्छाओं को पूर्ण करो। मैंने तुम्हारे मेम में अपने भाई बन्धुओं और मित्रों से भी नेह तोड़ दिया।

सीता-हे दशानन, यदि श्रीराम तेरे हाथ से मारेही जाँय तो मारने से पहले कृपया इतना उनसे अवश्य कह-देना कि शोक ! तुम्हारी प्यारी सीता अन्त समय में तुम्हारा दर्शन न करसकी। अब तक तुम्हारे कारण पाण टिके थे. पर अब तुम्हारे दर्शनों की पिपासा और वियोग के दुःखं को अपने कोमल हृद्य पर लिये हुए वह भी शण न्योछावर कर देगी। अब रावण को निश्चय होगया कि सीता अभे कदापि नहीं चाहेगी। शोक !!! संसार में कलंक का टीका मेरे माथे पर लग गया और मेरा कार्य भी न हुआ। हा! मैंने अपने कुल को कलंकित किया, पूर्वजों की मर्यादा को भंग किया, भाई बन्धुओं को हाथ से खो दिया, मित्रों को शत्रु बना लिया, सहस्रों शूर वीरों का घात करा दिया, तो भी सीता ने मेरी श्रोर पलक भी उठाकर नहीं देखा। नि-स्सन्देह सीता साध्वी और पतित्रता देवी है। धिकार मुभ को ! जो मैंने ऐसी पतिव्रता देवी के शील भंग करने का विचार किया । न मुभी यह विचार होता, न यह युद्ध होता

श्रीर न अपनी पराई जानों का स्वाहा होता, परन्तु अब क्या होता है। पीछे भी नहीं हटा जाता। क्या कहूँ क्या न कहूँ। इभर खाई उधर कुआ। अस्तु, जो होगा सो हो रहेगा। ऐसा विचार कर मंदोदरी से श्रान्तिम भेंट करने के लिए गया श्रीर कहने लगा, आज न जाने युद्ध से बचकर श्राँक या न आउँ, अतएव यह श्रान्तिम भेंट है। जीता रहा, तो फिर आ मिलूंगा।

मन्दोदरी से विदा होकर अल शल्ल धारणकरके रावण ने रणभूमि में प्रवेश किया और वड़ी शूर वंदिता से युद्ध किया, परन्तु लच्मण के चक्र से कहाँ वचसकता था। तत्काल बेहोश होकर भूमि पर गिर पड़ा और चणमात्र में परलोक-वासी होगया। रावण की मृत्यु से विभीषण को अत्यन्त शोक हुआ। सारे रणवास में प्रलय का दृश्य दिखलाई देने लगा। चारों और रोने चिल्लाने के शब्द मुनाई देने लगे। श्रीराम ने भक्त विभीषण को धैर्ध्य दिया और तमाम रानियों को संसार की असारता दिखलाकर शांत किया। कुंभक-रण, मेघनाद इन्द्रजीतादि रामचन्द्र के वंदीगृह से मुक्त होकर संसार को चणभंगुर जानकर, भोग विलासों को त्यागकर राजीवभूति को लात मारकर दीचित होगये।

अब श्रीराम शीघ वहाँ पहुँचे, जहाँ उनकी प्यारी अर्थी-गिनी रावण की कैंद में पड़ी हुई उनके दर्शनों की अभिलाप।

में जीवन के श्वास पूरे कर रही थी। देखतेही दोनो के नेत्रों से अश्रु जल की अविरल धारा बहने लगी। सीता राम की छाती से चिपट गई और कहने लगी, हे नाथ, प्राणाधार धन्य आपको, आपने दर्शन देकर मुभे पाणदान दिया। स्वामित् मैं तो निराश हो गई थी ऋौर मार्णो को अर्पण करने के लिए तैयार बैठी थी। धन्य मेरा भाग्य, जो मुफो आपके दरीन होगये। नाथ, मैने पूर्व भव में अवश्यही कोई घोर पाप किया था जिसका यह फल भोगरही हूँ। आपके कहने को न मानकर में हठ कर के जंगल में आई। मेरे का-रण आपको कितने कष्ट हुए ! महाराज, कहाँ अयोध्या और कहाँ यह समुद्र पार लंका । इस तरह बहुत देर तक दोनों वार्तालाप करते रहे। दोनों एक दूसरे से मिलकर अपार आनंदित हुए । अनेक वनोपवनों की शोभा देखते हुए भगवान के मंदिर में पहुँचे। बड़े भक्ति भाव से दोनों ने दर्शन पूजन किया । तदनन्तर विभीषण को राज देकर उन्होने अयोध्या को प्रस्थान किया।

級 पन्द्रहवां परिच्छेद ॐ

मुर्देशके कि कि अयोध्या पहुँचने पर बढ़ा आनंद मनाया कि कि कि गया । घर घर में उत्सव होने लगे । बाजे बजने लगे। यों तो सारी अयोध्या, और रनवास को अ-थाह आनंद हुआ, किन्तु कौशन्या और सुमित्रा जो १४, वर्ष से आशा लगाये मार्ग देख रही थीं, अपने प्यारे आँखों के तारे पुत्रों और पुत्रवधू को देखकर हर्ष में फूर्छी न स-माई। वे बार बार सीता को गले से लगाती थीं। उसका मुख चूमती थीं और सहस्रों मोहरें उस पर न्योछावर करती थीं।

महाराज भरत ने प्रतिज्ञानुसार दीचा लेखी और श्रीराम गदीपर बैठकर अकंटकराज्य करने लगे। उनके मुशासनके प्रताप से सारा कौशल राज्य सुख झौर धन से परिपूर्ण होगया।

कुछ दिन कुशल पूर्वक वीतने पर सीताजी के गर्भ चिह्न भगट हुए और उनको दो शुभ स्वप्न दिखलाई दिए। यह देखकर रामचन्द्रजी और रामजननी कौशल्या को बड़ा आनंद हुआ। सारा राज्य भवन उत्साह से पूर्ण होगया। सब कोई आशा पूर्ण नेत्रों से सीता की ओर देखने लगे, परन्तु हाय, समय तू किसी को फलाफूला नहीं देख सकता जब यह हुष समाचार सर्व साधारण को ज्ञात हुए तो शतुओं और देपियों को अपने मनके फफोले फोड़ने का अवसर मिलगया। उन्होंने सीताजी की पवित्रता में कलंक लगाकर संदेह पगट किया और प्रत्येक के हृदय में यह अंकित कर दिया कि यह कदापि सम्भव नहीं कि सीता जैसी रूपवती स्त्री रावण से बची हो। अतएव कुछ लोग मिलकर श्रीराम के पास गये और भयसे कांपते हुए कहने लगे, महाराज, हम आपके राज्य में पूर्ण रूप से सुखी हैं। ऐसा राज्य किसी ने भी आजतक अयोध्या में नहीं किया; पर शरणागत पालक, आपके राज्य में न्यभिचार दिनों दिन बढ़ता जाता है। जो चाहे जिसकी यौवन सम्पन्न स्त्री को बलात्कार हर लेता है। धर्म कर्म की कोई मर्यादा नहीं। सब कोई कहते हैं कि जब हमारे राजा ही महारानी सीता को ले आये, जो बहुत दिनों तक रावण के घर में रही और सम्भव नहीं कि उससे अल्ली बची हो, तो फिर हमको क्या भय है। प्रजा राजा की अनुयायी होती है। "यथा राजा तथा प्रजा" अतएव महाराज कोई ऐसा उपाय करो जिससे धर्म कर्म की रच्चा हो। प्रजा का हित हो। आप लोक में बढ़े राजा है। यदि आप प्रजा की रच्चा न करेंगे तो फिर कौन करेगा। हे देव, आप मर्यादा के प्रवर्तक पुरुपोत्तम हो। यही अपवाद यदि आप के राज्य में न होता, तो आपका राज्य इन्द्र से भी बढ़कर होता।

लोगों के मुख से सीताजी को कलंकित करनेवाले शब्द सुनकर महाराज रामचन्द्र के हृदय पर इतनी गहरी वेदना हुई कि उसका वर्णन नहीं हो सकता। उन्होंने बड़ी कठिनाई से आप को सँभाला। वे आँखों में आँमू भरे हुए कहने लगे कि हा, कैसी भयंकर हृदय विदारक सर्व नाश की बात सुनी है। इसकी अपेचा मेरी छाती पर वजपात क्यों न आ पड़ा। हा, मेरा यश रूपी कमलों का वन अपयश रूपी अभिन से जलने लगा। जिस सीता के निमित्त मैंने निरह का कष्ट सहा, जिस के लिए मैंने समुद्र तिरकर रण संग्राम में रावण जैसे रिए को जीता, क्या वही जानकी अब मेरे कुल रूपी चन्द्रमा को मिलन कर रही है ? क्या यह सम्भव है ? कदापि नहीं, सीता निष्कलंक और पितृत्र है । इसमें मुभे तिनक भी सन्देह नहीं । पर क्या करूँ, कुछ समभ में नहीं आता । इस लोकापवाद को सुना अनसुना करूँ अथवा निरपराधिनी साध्वी सती सीता को परित्याग करूँ ? भगवन मैंने कौन अशुभ कमे किये थे, जिनका यह विषकल मुभे भोगना पड़ रहा है । एक आपित से निकल ता नहीं कि दूसरी में फँसजाता हूँ । मेरी तरह कभी कोई संकट में न पड़ा होगा ।

इस तरह परिताप करके श्रीराम नीची दृष्टि किये सोचने लगे। फिर लम्बी साँस भर कर कहने लगे, मैं इन्हीं पाप-कम्मों के लिये उत्पन्न हुआ था। मुक्त जैसा पातकी नराधम इस लोक में कौन होगा कि जानते बूक्तते भी सीता जैसी भियभाषणी, निरापराधनी, शुद्धाचारिणी देवी को परित्याग करने के लिये उतारू हुआ हूँ। धिक ! राज्य विभृति और राज्यपद ! जिनके कारण में पाषाण हृदय होकर सती सीता को क्प में डालने के लिए तैयार होता हूँ। हे बसुन्धरे ! मैं तुक्त में क्यों नहीं समा जाता। हे वज्रपटल ! तुम मुक्तपर गिर कर क्यों मेरे दुकड़े दुकड़े नहीं कर डालते। हा !!! सीता तू मेरे साथ कुछ भी सुल न भीग सकी। तूने विष

बूच का चन्दन तरु समभ कर आश्रय किया था । अब मैं तुभ से इस जन्म के लिए बिदा होता हूँ । प्यारी, तेरा, रत्तक पोषक श्रीजिनेन्द्र भगवान के सिवाय और कोई नहीं। संसार में श्री का रत्तक पति होता है, पर देवी तेरा पति तेरा शत्रु होगया, उसका हृदय पाषाण का होगया । उस की आञ्चा छोड्कर एक मात्र जिनेन्द्र देव का स्मरण करा। इस मकार मन ही मन विलाप करके रामचन्द्रजी ने छच्मण जी को बुखाया और कहा हे वत्स लच्मण ! सीता इतने दिन रावरण के घर रही और फिर मैंने उसे ग्रहण कर लिया, इस बात की लोक में निन्दा है, अतएव मैंने हद पतिज्ञा करली है कि जानकी का परित्याग करूँगा । सब तरह से प्रजा रंजन करना राजा का परम धर्म है। मैं अपने चिर पवित्र त्रैलोक्य पूज्य उज्ज्वल वंश को इस लोकापबाद से कलंकित न करूंगा । आशा है कि तुम भी मेरे इस कार्य में सहायक होजाओंगे।

लच्मण-भाई साइव आप क्या करते हैं। क्या किसी का साइस होसकता है कि जो सती सीता के विषय में ऐसे शब्द मुख से निकाल सके दें में अभी गुफ्त रीति से जाँच करता हूँ और उस दुष्ट की अभी जिह्ना निकाल लाताहूँ। शोक और आश्चर्य है कि आपको भी मूर्ल लोगों के कहने पर विश्वास आगया। चढ़ते समय अनेक अपशकुन हुए, परन्तु जिन भक्ति में अनुरागिनी सीता निश्चिन्त चित्त चली गई।

अनेक चैत्यालयों के दर्शन करने के परचात् अब सेना-पित गंगा को पार करके सिंहनाद अटवी में पहुँचा। वहाँ पहुँचते ही सेनापित ने रथ को थाम दिया और रोने लगा। उसके मुखसे एक शब्द भी न निकल सका। उसकी यह दशा देखकर सीता कुछ देर तक योंही कर्तव्य विमृद सी हो रहीं। फिर कातर होकर कहने लगीं—' भाई, तू इतना व्याकुल क्यों होरहा है ? मैं इस समय तुभको बहुत घबराया हुआ देखती हूँ। शीघ्र कहो, क्या बात है ? मेरा हृदय फटा जाता है। आर्थ पुत्र का तो कुछ अमंगल नहीं हुआ। शीघ कहो, बिलम्ब न करो, मेरे पाण निकले जाते हैं, इन्हें बचाओ।

सीताजी को इस प्रकार व्याकुल देखकर सेनापित ने लाचार जैसे तैसे चित्तको कुछकड़ा करके वड़ी कठिनतासे कहा माता! क्या कहूँ कहते मेरी छाती फटती है। आप इतने दिन रावण के घर रहीं, इस कारण नगर निवासी लोग आपके विषय में संदेह कर रहे हैं। उन्हीं के वचनों को सुनकर श्रीरामचन्द्रजी ने दया स्नेह और ममता को छोड़कर श्रकीरिं के भय से आपको परित्याग किया है। लच्मणजी ने वहुत बुछ समकाया, पर उन्होंने अपनी हठ न छोड़ी। हे स्वामिनि अब तुम को एक मात्र धर्म ही शरण है। संसार मे कोई किसी का नहीं"।

यह वजपात के समान शब्द सुनते ही सीता पृच्छी खा-कर ज़मीन पर गिर पड़ी। थोड़ी देर में सचेत होकर गद्गद वाणीसे कहने लगी, हे सेनापति एक तरफ़ की बात गुड़से भी मीठी होती है। यदि राम दोनों तरफ से परीचा करके कोई आज्ञा देते तो न्याय होजाता, परन्तु उनकी इच्छा, वे श्रसम रहें, सुभे उनकी आज्ञा शिरोधार्य है और इसी में मेरा सौभाग्य है।

सेनापति-माता, मैं निरापराधी हूँ, मुक्ते चना करो, मैं पराधीन किंकर हूँ। इस पराधीनता को धिकार है। मुक्ते आज्ञा दीजिये।

सीता-हाँ तुम जाओं प्रसन्त रहो, परन्तु औराम से यह अवश्य कह देना कि "मरे त्याग का कोई विषाद न करना परम धेर्य्य का अवलम्बन कर सदा प्रजा की रक्ता करना, परन्तु यह स्मरण रखना कि दुष्ट जन संसार में किसी की बढ़ती को देखकर प्रसन्त नहीं होते, मेरी निन्दा यदि की तो आपने मुभे त्याग दिया। अच्छा किया, पर यदि वे आपके धर्म की निन्दा करने छगें, तो धर्म को मेरे समान बिन परीक्ता किये न त्याग देना। हे नाथ, मेरे अपराधों को ज्ञान करना। सदा धर्म में तल्लीन रहना। जगत दुनिवार है, जगत का मुख बन्द करने को कौन समर्थ है ? जिस के मुख में जो आवे सो कहे। इस लिए

जगत की बात सुनकर योग्य अयोग्य जो हो सो कीजिए गा। दान से जनों को मसन्न रखना, विमल स्वभाव से मित्रों को वश करना, चतुर्विधि संघ की सेवा करना, मन, वचन, काय से शुभ कर्म उपार्जन करना, कोध को ज्ञमा से, मान को निर्गर्वता से; माया को निष्कपटता से, लोभ को संतोष से जीतना। आप स्वयं शास्त्रों में भवीण हो, मैं क्या कहूँ, मैं केवल ज्ञमा की मार्थी हूँ। हे नाथ! ज्ञमा करो।"

यह कह कर सीता तृण पाषाण युक्त भूमि में अचेत हो कर गिरपड़ी। कृतान्त वक्र उन्हें निर्जनवन में अकेली पड़ी छोडकर अयोध्या की ओर चल दिया। सीता उसके जाने के बहुत देर बाद मूर्च्छा से सचेत होकर यूथ त्यक्त मृगी की नाई विलाप करने लगी । उसके रुदन के शब्दों को सुन कर वन के पशु पत्ती भी स्ताम्भत हो रहे । हाय, कमल-नयन, राम, नरोत्तम मेरी रचा करो । मुभ्र से वचनालाप करो । त्र्याप महा गुणवन्त शान्ति चित्त हो । त्र्यापका छेश मात्र भी दोष नहीं । आप तो पुरुषोत्तम हो । यह मेरे पूर्वी-पार्जित कर्मों का फल है। मैंने पूर्व जन्म में अवस्य किसी का वियोग किया है, अथवा कोई घोर पाप किया है; उसी का यह फल भोग रही हूँ । हाय, मैं महाराजा जनक की पुत्री, बलभद्र की पर्रानी, स्वर्ग समान महलों की निवा-सिनी, हज़ारों सहेली मेरी सेवा करने वाली अब पाप के उदय से इस बुःख सागर में कैसे रहूँ । रन्नों के मन्दिर में

अपित रमणीय वस्त्रों से सुशोभित सुन्दर सेज पर शयन करने वाली, अब इस वन में अकेली कैसे रहूँगी। मैं मनोहर वीणा बांसुरी, मृदंगादिक के मधुर शब्द निरन्तर सुना करती थी, अब इस भयंकर शब्दों से मतिध्वनित वन में अकेली केंसे रहूँगी। मैं रामदेव की पहरानी अपयश रूपी दावानल से जलती हुई इस भयावने वन में कॅकरीली पृथ्वी पर कैसे शयन करूँगी। ऐसी अवस्था में यदि मेरे भाण न जायँ, तो समभाना चाहिए कि ये माण ही वज्र के हैं। क्या करूं, कहाँ जाऊँ, किस से क्या कहूँ। किसका आश्रय लूँ; हाय! गुण समुद्र राम, मुक्ते क्यों छाइ दी । हाय, महाभक लच्मण मेरी सहायता क्यों न की । हाय, पिता जनक ! हाय माता विदेहा !! यह क्या हुआ। मुभ्ते पैदा होतेही क्यों न मार्-डाली । हाय, विद्याधरों के स्वामी भामंडल, मैं इस दुःख में ें कैसे रहूँ। तुमने भी मेरी सहायता न की। हाय बसुन्धरे! तू क्यों फटकर अपने में मुफ्ते समा नहीं लेती। हा काल तू कहाँ सोगया. मुक्ते भक्तण क्यों नहीं कर जाता। यह कहते कहते सीता जी के नेत्रों से अविरल अशु जल धारा वह निकली।

級 सत्रहवां परिच्छेद अ

र्हे हैं हैं वयोग से इसी समय पुराडरीक पुर का आधि-क्रिक्ष्णक पति राजा वज्जनंघ जो हाथी पकड़ने के निभित्त उस वन में आया था सीताजी के ठदन को सुनकर उसके पास आया और कहने लगा हे वहिन, तू कौन है ? इस निर्जन वन में किस पाषाण हृदय मनुष्य ने तुक्के अकेली छोड़ी है। हे पुष्य रूपिणी, अपनी इस अवस्था का कारण बतला, शोक को त्याग कर, धैर्य धारण कर। मुक्क से भय भीत मत हो। में पुष्डरीक पुर का राजा वज्जनंय हूँ। तब सीता ने कठिनाई से शोक को दवाकर अपनी सारी कथा कह सुनाई। इसे सुनकर वज्जंघ का हृदय करुणा से भीग गया। उसने सीता को वहुत धैर्य दिया और उसे अपनी धर्म बहिन बनाकर पालकी में विठाकर बड़े आदर सत्कार से पुष्डरीक पुर लेगया। राज परिवार की समस्त क्षियों ने सीताजी का यथेष्ट स्वागत किया। वज्जंघ तथा उसकी समस्त रानियाँ सीताजी की निष्कपट हृदय से सेवा करने लगीं और उस से भिगनी के समान प्रेम करने लगीं।

अब वह दिन भी आगया कि नयाँ महीना पूर्ण हुआ और श्रावण शुक्का पूर्णिमा के दिन श्रवण नक्तत्र में पुत्र युगल का जन्म हुआ। पुत्रों के जन्म से पुण्डरीकपुरी ने स्वर्गपुरी का रूप थारण कर लिया। सकल मजा ख्रांत हार्षित हुई मानो नगरी नाच उठी। तरह तरह के बाजे बजने लगे ख्रीर चारों ख्रोर से " चिरंजीव, चिरंजीव जय जय " शब्द र सुनाई देने लगे। एक का नाम अनंग लवण श्रीर दूसरे का मदनांकुश रक्ला गया। ये दोनों दोयज के चन्द्रमा के समान दिनों दिन बढ़ने लगे और अपने मीठे मीठे तोतले ज्ञन्दों से माता के मन को मोहित करने लगे। माता इन को देखकर अपना सारा दु:स्व भूल गई। बालक बढ़े हुए और विद्या पढ़ने के योग्य हुए। दैव योग से एक बढ़े ज्ञानवान खुल्लक बहाँ आगये। उन्होंने कुमारों को होनहार जानकर थोदे ही दिनों में उन्हें ज्ञान विज्ञान में निपुण कर दिया। दोनों भाई चन्द्र सूर्य के समान अपने बल और विद्या के मताप से सारे जगत में मिसद्र होगये। संसार में किसी की भी सामर्थ्य न थी, जो इनके सामने आसके। जिस किसी ने ज़रा भी सिर उठाया कि उन्होंने तुरन्त उसे मारकर यमलोक का रास्ता दिखलाया। इनके बल पराक्रम के मभाव से राजा वज्रजंघ शान्ति पूर्वक निष्कंटक राज्य करने लगे।

एक दिन दोनों कुमार वन कीड़ा करते फिर रहे थे कि नारदणी दिखलाई दिये। कुमारों ने नारदणीको मस्तक मुका कर प्रणाम किया । नारद जीने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया कि तुम दोनों भाई राम लच्मण की तरह फक्षो फूलो । कुमारों ने पूछा—'' महाराज! राम लच्मण कीन हैं ? कहाँ रहते हैं ? क्या उनकी राज्य विभूति हम से ज्यादह है ? नारदणी ने आदि से लेकर सीताजी के त्याग पर्यंत का सारा हाल कुमारों को कह सुनाया।

श्रंकुश-निस्सन्देइ राम लच्मण बहे पराक्रमी बल्लधारी

हैं, पर उन्होंने मिथ्या लोकापवाद के कारण सीताको त्याग दिया, यह श्रच्छा न किया।

लवण-महाराज यहां से अयोध्या कितनी दूर है ?

नारद-यहां से ६४० कोस उत्तर की ओर है। क्यों किस लिये पूछते हो ?

लवण-हम राम लच्मण के साथ लड़ेंगे और देखेंगे कि उनका बल बीर्य कितना है।

बुमारों ने घर आकर राजा वज्रजंघ से कहा कि मामा जी, हम अयोध्या पर चहुंगे । आप शिध युद्ध की तैयारी की जिए। यह मुनतेही सीता रुद्दन करने छगी और नारद जी से कहने छगी महाराज! आज यह क्या स्वांग रचाया है। क्यों बैठे बिठाये वाप वेटों में बजवा दी ! मैं दुतिया बहुत दिनों के शोंक को ज्यों त्यों दावे बैठी थी। न कुछ तुम्हारा विगड़ेगा न इन बाप वेटों का। आपित मुक्त अल्डा पर आई; इधर कुवाँ उधर खाई। अब किसी तरह इस बिरोध को रोको।

नारदर्जा ने कहा-बहिन, मैं ने तो कुछ नहीं किया। इन्होंने मुक्ते प्रणाम किया। मैंने इन्हें आशिप दी कि तुम राम लक्ष्मण से हो, इन्होंने राम लक्ष्मण का द्वचान्त पूछा, मैंने आदि से अंत तक सारा हाल कह मुनाया। अस्तु, तुम कोई चिन्ता न करों, अच्छा ही होगा। लवण श्रंकुश माता को दुखी सुनकर उसके पास श्रामें और कहने लगे—माता ! तुम किस लिये उदास हो । श्लोब कहो । हम जैसे शूरवीरों की माता को कायर न होना चा- हिए। आपको तो हर्ष मनाना चाहिये कि आपके सपूत आज इस योग्य हुए कि शत्रुओं का मान गलित करके उन का शिर नीचा करें।

सीता-बेटा, हुम्हारी वीरता का मुक्ते श्राभमान है; परन्तु भेम भी तो दोनों श्रोर का है । युद्ध में किसी को हानि पहुँचे इसी का मुक्ते भय है । तुम से प्यारे मुक्ते राम लक्ष्मण और उनसे प्यारे तुम हो । वस यही उदासी का कारण है ।

कुमार-(आश्चर्य से) माता, वे इम से प्यारे कैसे हैं ?
सीता-श्रीराम तुम्हारे पिता और लच्मण तुम्हारे
चाचा हैं। वे दोनों तुम्हारे पूज्य गुरुजन हैं। अतएव मैं तुम
से अधिक उनको समक्षती हूँ। मुक्ते तुम्हारा इतना ख्याख
नहीं जितना उनका है। वे भी वड़े शूरवीर बलवान् हैं।
इस युद्ध में किसी न किसी का अवश्य परानय होगा। मुक्त
अभागनी के भाग्य में शोक ही बदा है। मेरा कहा मानो,
तो जाकर पिता को प्रणाम करो। यही नीति का मार्ग है।

कुमार माता, ये कैसे हो सकता है ? हम दीनता के

वचन कैसे कहें ? हम तुम्हारे पुत्र हैं । हम रणीगन में जाकर अवश्य तुम्हारा बदला लेंगे । ' उन्होंने तुम को तजा ' यह हमसे सहन नहीं होसकता ।

माता चुप होगई, परन्तु मन में अति खेद खिना होती रहीं। कुमार सज धज कर और एक बढ़ी सेना लेकर अयोध्या पर चढ़ गये और वहाँ पहुँच कर उन्होंने जंगल में ढेरे डाल दिये।

🟶 अठारहवां परिच्छेद 🏶

्र इतने में नारद मुनि आते दिखलाई दिये। उन्हें देखते ही रूचमणजी ने भणाभ करके कहा, महाराज! आजतक मेरा बार कभी खाली नहीं गया। आँख मीच कर भी जहाँ तीर फेंका, जियर को पार करता हुआ निकल गया, पर न जानें आज क्या होनहार है। सब के सब बार ख़ाली जा रहे हैं।

नारद-लच्मण, इस में आश्चर्य क्या है। तुम जानते हो, ये कौन हैं ? ये दोनों सती सीता के पुत्र हैं। जिस समय रामचन्द्रजी ने निरपराधिनी सीताजी को घरसे निकाला था. ये ही दोनों सुत गर्भ में थे। प्रकृति के नियमानुसार न तुम्हारा तीर इन पर चल सकता है और न इनका तुम पर। यह सुनते ही राम लच्मण ने हाथ से हथियार डाल दिये और सीता का स्मरण कर के रोने लगे। फिर वड़ी शीव्रता से पुत्रों के सन्मुख आये। अपने पुच्य पिता और काका जी को अपनी ओर आते देख कर दोनों भाई रथ से उतर पहे श्रीर हाथ जोड़ कर रामचन्द्रजी के चरणों में गिर पड़े। ्रामचन्द्रजी ने अति स्तेह भेम से उन्हें उठाकर झाती से छगा लिया और अपने की धिकारने लगे। हाय, मैंने तुम्हारी महा गुणवती, व्रतवती पतिव्रता माता को निरापराध वन में तज कर महा अनर्थ किया। धिकार मुक्त को मैंने तुम जैसे बीर पुत्रों को घोर कष्ट दिया। पश्चात् दोनों भाइयों ने लच्मणजी को शणाप किया और उन्होंने अनेक आशीर्वाद दिये।

यह दृश्य देखकर सीताजी को आकाश में असीम आनंद ्रुआ और वे तत्काल ही पुण्डरीकपुर लौट गई । भामंडल. सुग्रीव, विभीषण आदि अनेक राजा, महाराजाओं, मित्रों सम्बन्धियों और नगर निवासियों को लव स्रंकुश से मिल- कर अत्यन्त हर्ष हुआ । बड़े समारोह और गाने बाजे के साथ उनका अयोध्या में प्रवेश हुआ ।

एक दिन इनुमान, सुग्रीव त्रादि सब ने मिलकर रामचंदनी से विनयपूर्वक निवेदन किया कि महाराज अब सती सीताजी को बुला लेना चाहिए। रामचन्द्रजी ने कहा कि भाई मुफे उस के शील में तनिक भी संदेह नहीं है, पर मैंने उसे लोकापवाद के भय से निकाली थी, अब कैसे बुलाऊँ।कोई उपाय ऐसा करो कि जिससे समस्त विश्वमंडल को उस के शील और पातिबत धर्म की श्रदा होजाय। सुधीवादि ने पुरुडरीकपुरी में जाकर सीता को सारा हचान्त सुनाया ! सीताजी की आँखों में आँसू भर आये और वे रोकर अपनी निंदा करने लगीं। हे बत्स सुधीव, मेरे श्रंग दुर्जनों के बचन रूप दावानल से दग्ध हो रहे हैं। ये चीर सागर के जल से सींचने से भी शीतल न होंगे। तक वे कहने लगे, हे देवि भगवति, सौम्ये, उत्तम, अब शोक को तजो और धैर्य धरो। इस पृथ्वी में किसकी सामर्थ्य है जो अब आपके विरुद्ध ं जिह्वा निकाल सके । हे पतित्रते ! रामचन्द्रजी ने तुम्हारे लिए यह पुष्पक विमान भेजा है। अयोध्या तुम्हारे बिना श्रुत्य होरही है। हे पंडिते, तुम को अवश्य पति का बचन मानना होगा। यह सुनकर मीताजी ने उनकी वातों को रवीकार किया और पुष्पक विमान में चढ़ कर संध्या समय ी अयोध्या नगरी के महेन्द्र नामक उधान में जा उहरीं।

🟶 उन्नीसवां परिच्छेद 🏶

अके के हैं गले दिन सबेरा होते ही निष्पाप हृदय राम अब के एक की रमा सती सीता राम की सभा में आई। सारी सभा ने सीता जी को देखकर विनय संयुक्त बंदना की और सब के एक से "माता सदा जयवंत हो, नादो, विरथो, फूलो फलो, धन्य यह रूप, धन्य यह धैर्य, धन्य यह सत्य, धन्य यह ज्योति, धन्य यह वीरता, धन्य यह गम्भीरता, धन्य यह निमलता," आदि शब्द निकलने लगे जय जयकार से सारा सभा मंडप गूँज उठा।

सीताजी अपने स्थान पर बैठ गईं। रामचन्द्रजी ने उन की ओर दृष्टि करके कहा—हे देवि ! धन्य है तुमको, तुम निष्कलंक और पितृत्र हो, मैंने लोकापवाद के भय से तुम को तजी थी, अब तुम कोई ऐसा उपाय करो जिससे नुम्हारे अलंड शील का सर्व साधारण को विश्वास होजाय। सीता जी ने कहा, प्राणनाथ! आपने केवल दूसरों के भय से मुफे त्यामा, यह अच्छा नहीं किया। मेरे मन में जिन चैत्यालयों के दर्शन की वांछा हुई थी, सो आपने यात्रा का नाम लेकर विषम वन में छुड़ादी। यदि आपके जी में तजने ही की थी, तो मुफे आर्थिकाओं के समीप तजी होती। अब जो आज्ञा करो. सो ही प्रमाण है। आप कहें पहा विष कालकूट को पीऊँ, अग्नि की ज्वाला में प्रवेश कह अथवा जो आप

आजा करो सो कहूँ। राम ने चणिक विचार कर कहा कि अग्निकुगढ में भवेश करो। सीता ने मस्तक नमाकर स्वीकार किया। तब तीन सौ हाथ चौकोर वाधिका खोदी गई, जिस में कालागुरु अगर चन्दन भरा गया और अग्नि से जाज्व-च्यमान की गई। चारो ओर ज्वाला फेलगई। दशों दिशायें स्वर्णमय होगई। यह दृश्य बड़ा ही विषम था। सब के हृद्य थर थर काँप रहे थे। स्वयं राम अति च्याकुल हो रहे थे। असंख्य नरनारी देख देख कर रो रहे थे। इतने में ही सीताजी उठीं और अत्यन्त निश्चल चिच हो कायोत्सर्ग धार हृद्य में ऋषभादि तीर्थंकर देवों को विराजमान कर पंचपरमेष्टी को स्मरण कर, वीसवें तीर्थंकर हितवंश तिलक मुनि सुत्रतनाथ स्वामी का ध्यान कर सर्व जीवों में समता भाव धारण कर गम्भीर स्वर से बोलीं:—

" मनसि वचिसकाये जागरे स्वप्नमार्गे, मम यदि पतिभावो रायवादन्यपुंसः । तदिह दह शरीरं पावके मामकेदम् सुद्धत विकृत नीतंर्देवसाची त्वमेव "

श्रर्थात् हे उपस्थित पहानुभावो! यदि मैंने रामनन्द्रजी को छोड़ कर अन्य पुरुष की मन बचन काय से स्वप्न में भी कामना की हो. तो यह मेग शरीर इस मचंड श्राप्ति में भस्म होजाय और यदि मैं सती, पतिज्ञता, अणुद्रत धारणी है श्राविका हूँ, तो हे भगवन् मेरी रचा की जियो। ऐसी पतिज्ञा

कर नमोकार मंत्र का उच्चारण करती हुई सतीं सीता छस भवंड दहकते हुए अग्निकुंड में निशंक कृद पड़ी । उसके कृदते ही इधर तो दर्शकों के होश हवाश उड़ गये, राम ं तन्मण मूर्न्छित होकर पृथ्वी पर गिर पट्टे, भामएडल सुशीवादि सब ही हा हा कार करके रोने लगे। उधर उस सती के अख़एड शील के मभाव से वह अग्निकुंड स्फटिक मणि समान निर्मल जल वापिका होगई । जल में कमल फूल गये, कमलों पर भ्रमर गुंजार करने लगे, अग्नि का कहीं चिह्न भी न रहा, सारा कुंड जल मय होगया । जन साधारण को सती सीता के शील का माहात्म्य दिखलाने के लिए देव ने विकिया से उस वापिका का भवाइ इतना बढ़ा दिया कि दर्शकों के इबने में कुछ भी सन्देह न रहा। , भव चिल्लाने लगे और कहने लगे, हे देवि, हे लिच्म, हे सरस्वती, हे कल्याण रूपिणी, हे धर्मधुरन्धरे, इमारी रत्ता करो, हे माता दया करो बचाओ बचाओ, प्रसन्न हो । जब सब लोगों को सीताजी के अखगड शील का परिचय हो गया, तब रत्तक देव ने जलकी बढ़ती हुई बाढ़ को रोका। तब सबको ज्ञान्ति हुई । देवों ने वापिका के मध्य भाग में सहस्र दल का एक कमल बनाया और कमल की मध्य किंगिका पर सिंहासन निर्माण कर उस पर सीताजी को बैठाया और सिंहासन के ऊपर मिंख खिनत मंडप बनाया। ऊपर से देवों ने प्रसन्न होकर आकाश मार्ग से रत्न पुष्पादि

की वर्षा की । छव अंकुश अपनी माता को देवों द्वारा स-म्मानित देखकर अति शसन हुए और उसके दोनों त्रोर जाकर खड़े होगये। रामचन्द्रजी भी ऐसे मुख्य हुए कि उस के पास जाकर अपने दोपों की चमा माँगने लगे। हे भिये! मेरे अपराध समा करो. मैंने लोकापवाद के कारण तुम को नजकर महा अन्ध किया। आस्रो, अब एक बार फिर उसी भेग बन्धन से वँधकर सांसारिक सुखी का रम पान करें। परन्तु जानकी संसार का सारः निःसारत्व भर्ती भाँति जान चुकी थी । उसने प्रत्येक अवस्था का अनुभव कर लिया था। इसने उत्तर दिया, स्वापित आपका कोई दोष नहीं श्रीर न लोगों का ही दोप है। टोप केवल मेरे अशुभ कमीं का है। इन्होंने ही मुक्त इस चतुर्गति रूप संसार में अब्हट र्क समान अनादि काल से पुषा रम्खा है। मैंने आपके माथ बहुत काल नक स्वर्ग समान मुख भोगे । अब यह इच्छा है कि जिन रीचा धारण कर्ष, जिसमें खीत्व का ब्य-भाव हो। भैने संसार का समस्त नार देख लिया सिवाय द्राप के मुखका लेश भी नहींहै। मुख केवल मोच में है और वह मोच कमें के चय से भारत होता है। अतुग्व उन कमें के नाइ करने के लिए ध्यान भी बस्न को धारण करती हैं। यह कह कर सीताजी ने अपने सिर के केश उग्याइ कर रामचन्द्रजी " के सामन फेक दिये और देव परिवार के साथ जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करके पृथिवीमती अर्जिका से जिन दीना लेली ॥

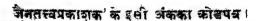
॥ प्रद्युक्षचरित ॥

- 3-9-4----

विश्वविक्यात महाराज श्रीकृष्णजो का नाम कीन नहीं.
नानता। उन्हीं के श्रेष्ठ पुत्र (अण्डन ग्राम का यह सीकान चित्र है। त्याम प्रान्त न्याम के आह्म प्रान्त की मान मान की मान

पता अस्तवन्द्र जैनः मद्योधन्ताकर कार्यालयं बड़ा बाजार सागर (सी. पी.)

क हमारे यहा सब भवाग के शृद्ध छवे हुए जैन श्रन्थ । बिना सकते हैं।



वन्दाजिमवरम्

श्रीमान् पं॰ अर्जुनलालजी सेठी बी.ए. का

जीवनचरित।

(जैनहितंषासे उद्धृत)

निमका

चन्द्रसेन कैनवैद्य मंत्री जैनतत्त्वप्रकाशिनी सभा इटावाने छपाकर प्रकाशित किया।

ورو والمحمد

विनामृत्य वितरण

nted by Children in Soch a re Deole in the Bombiy Vible in Prec., Services of India Super store, Sincher a R. a., Gregio a Bombia

Polls hedly Condrasen lan Vudya Etanah

वन्वेजिनवरम्।

श्रीयुक्त पं॰ अर्जुनलालजी सेठी बी. ए. का संक्षिप्त जीवन-चरित ।

- SAKE



प्रं० अर्जुनलालनीका जन्म जयपुर नगरमें सन् १८८० में हुआ था। आपके पिताका नाम लाला जवाहरलालनी सेठी था। महाराना जयपुरने उन्हें ठाकुर गोविन्दसिंह जागीरदारका

अभिभावक और शिक्षक नियत किया था; अन्ततक वे यही काम करते रहे।

अर्जुनलालजीने सन् १९०२ में जयपुर कालेजसे प्रयाग विद्य-विद्यालयकी बी, ए. की डिग्री प्राप्त की । कालेजमें पढ़ते समय ये प्राइवेट तौरसे जैनधर्मक ग्रन्थोंका भी अध्ययन किया करते थे और , इस कार्यमें इन्हें पं० चिम्मनलालजी जैनवैद्यसे बहुत सहायता मिलती थी। संस्कृतका ज्ञान भी इन्हें इन्हींसे प्राप्त हुआ था।

विद्यार्थी अवस्थामें ही सेठीजीको देशसेवा और समाजसुधारके कामोंसे बहुत प्रेम था । अपने देशकी, धर्मकी और समाजकी गिरी हुई अवस्था पर तो इन्हें बड़ा ही दुःख होता था। इस विषयमों वे निरन्तर ही विचार किया करते थे। सारी अवनतियोंका कारण उन्हें शिक्षाका अभाव ही जान पड़ता था। उन्हें विश्वास हो गया था कि यदि देशमें शिक्षाका प्रचार होगा—निरक्षरों और अज्ञानियोंकी संख्या घट जायगी तो देशकी प्रगति होनेमें जरा भी विखन्न न लगेगा। पर वे यह जानते थे कि यह कार्य केवल

सरकारकी सहायतासे नहीं हो सकता; इसके लिए देशवासियोंको स्वयं प्रयत्न करना चाहिए। विशेष करके शिक्षितोंका ध्यान इस ओर जाना चाहिए। शिक्षाप्राप्तिका फल केवल धन कमाना या औरों पर हुकूमत करना नहीं है। जिस शिक्षासे मनुष्य केवल अपना ही स्वार्थसाधन करता है उसे शिक्षा कहना 'शिक्षा' का अपमान करना है। शिक्षितोंको स्वार्थत्याग करना चाहिए और अपने भाई-योंको शिक्षित बनानेमें अपनी सारी शिक्ष्याँ लगा देना चाहिए।

सरकारी स्कूलोंकी शिक्षाके विषयमें उन्हें यह धारणा हो। गई थी कि उनमें आचरणके सुधारनेकी ओर ध्यान नहीं दिया जाता, नैतिक बलको उत्तेजन नहीं दिया जाता, देखने और विचारनेकी शक्तिका गला बीट दिया जाता है और विद्यार्थी केवल पुस्तकोंके दास बन जाते हैं। धर्म जो मनुष्यत्वका भूषण है उसकी ओरसे तो वे बहुत ही विरक्त हो जाते हैं। इसलिए सरकारी शिक्षापद्धतिका अनु-करण न करके हमें अपना शिक्षाक्रम बनाना चाहिए और उसके अनुसार शिक्षा देनेवाली स्वतंत्र संस्थायें हमारे देशवामियोंको स्थापित करना चाहिए।

ऐसी शिक्षासंस्थायें यदि जुदा जुदा जातियों या समाजोंकी ओरसे स्थापित की जायँगी तो वे अच्छा काम कर सकेंगी, उनकी ओर जुदा जुदा जातियोंका विशेष प्रेम होगा और वे उनकी उन्नतिमें तनमन-धनसे सहायता करेंगी। कमसे कम देशकी वर्तमान अवस्थामें तो वे इस प्रकारके जुदा जुदा प्रयत्नोंको बहुत छाभकारी समझने छगे। काछेज छोड़ने पर तो सेटीजीके मस्तकमें ये बातें रातदिन चक्कर लगाने लगीं । उनका चित्त निरन्तर व्याकुल रहने लगा । अपने आगामी जीवनको कर्तव्यपरायण बनानेके लिए वे प्रतिदिन नई नई मानसिक स्कीमें गढने लगे ।

उनकी स्वार्थवासनायें बहुत ही दुर्बल थीं, इस लिए वे नहीं चाहते थे कि शिक्षाकी प्राप्तिक लिए मैंने जो अश्रान्त परिश्रम किया है और शरीरको अतिशय क्षीण कर डाला है, उसका बदला मैं केवल धन कमाकर और भोगमामग्रियाँ प्राप्त करके लूँ। उनके हृदयपट पर जो बड़े बड़े म्वार्थत्यागी महात्माओंके चरित लिखे हुए थे वे उन्हें परोपकारके मार्गका यात्री बनोनके लिए ही प्रेरणा करते थे। यद्यपि नौकरीमे उन्हें बहुत ही घृणा थी; परन्तु अपने पिताके द्वारा बहुत मजबूर किये जाने पर और पिताकी आज्ञाका उल्लंबन करना अच्छान समझकर उन्हें लाचार होकर नौकरीके लिए राजी होना पड़ा। पहले व जयपुरमहाराजकी कौंसिलमें 'एप्नेंटिस' नियत हुए। इसके बाद उन्हें रेजीडेंसीमें काम मिला और इस कामको उन्होंने दो महीन्ते तक किया। इसी समय इनके पिताका देहान्त हो गया और तब ये उन्हीं जागीरदारके—जिनके यहाँ इनके पिता नियुक्त थे—प्राइवेट सेकेटरी नियुक्त हो गये।

इस पदको प्राप्त हुए थोड़ा ही समय व्यतीत हुआ था कि सेठी-जीको मथुराके जैन महाविद्यालयकी उन्नतिका आन्दोलन सुन पड़ा। उनके हृदयकी तलीमें जो शिक्षाप्रचारके भाव जमे हुए थे और जो विचार उन्हें निरन्तर ही चिन्तित बनाये रखते थे अब उनका रोकना कठिन हो गया। इस बीचमें उन्हें जैनधर्म और जैनसमाजकी दुरवस्थाका भी बहुत कुछ परिचय हो गया था और इस कारण वे यह चाहने छंगे थे कि मैं अपने कार्यका क्षेत्र जैनसमाजको ही बनाऊँ । इस अवसरको हाथसे जाने देना उन्होंने उचित नहीं समझा और सन् १९०५ में अपनी नौकरीसे स्तीफा दे दिया। इस समय ठाकुरमाहबने उन्हें बहुत समझाया— आग्रह भी किया, पर वह सब निष्फल हुआ।

अत्र सेठीजीने जैनधर्म और जैनममाजकी मेवाके छिए अपना जीवन अर्पण कर दिया । धन कमा करके भोगविलासके साधन इकट्टा करनेकी-राजकीय प्रतिष्ठा प्राप्त करनेकी और उठती जवानीकी अन्यान्य सारी वासनाओंको संकुचित करके उन्होंने समाजसेवाकी दीक्षा ले ली और यह उस समय जब कि जैनसमाजमें इस तरहके म्वार्थत्यागकी न तो चर्चा हो थी और न प्रतिष्ठा। अपने भाइ-योंकी भलाईके लिए दिनगत अश्रान्त परिश्रमके सिवाय इस स्वार्थ-त्यागका और कोई ऐहिक फल पानेकी उम ममय आशा न थी। इम मार्गमें अनेक विश्व उपस्थित हुए: परन्तु मेटीजीने उनकी जुरा भी परवा न की। सुनते हैं कि अपनी धुनमें उन्होंने अपनी पैतृक मम्पत्ति तकको तुच्छ ममझा और अपना हक, छोड़कर उमे अपने भाईको ही सोंप दिया । सेठीजीके इस स्वार्थत्यागका महत्त्व वे लोग समझ मकेंगे जिन्होंने सब तरहकी योग्यतायें प्राप्त करके अभी अभी आशामय मंसारमें पेर बढ़ाया है और कभी एकान्तमें बैठकर अपनी अमीम आशाओंको मर्यादित करनेका थोडासा भी प्रयत्न किया है।

सेटीजी नौकरी छोड़कर जैनमहाविद्यालयके डेप्यूटेशनमें आकार शामिल हुए। इस डेप्यूटेशनमें साहु जुगमन्दरदासजी, लाला बद्रीदासजी, बाबू शीतलप्रसादजी आदि अनेक सज्जन थे। सेटीजीकी अनेक शहरोंमें अच्छी जोरदार अपीलं हुई और उनका फल भी अच्छा हुआ। लगभग १५ हजार रुपये विद्यालय फण्डको मिल गये।

इसके बाद सेटीजी जैनमहाविद्यालय मथुराके आनरेरी अध्यक्ष नियत हुए । जब विद्यालय सहारणपुर चला गया, तब वहाँ भी व गये । लगभग एक वर्ष तक उन्होंने विद्यालयकी सच्च हृदयसे सेवा की । उस समय जैनमहासभाके कार्यकर्ताओं में मतभेद बहुत बह गया था । समाचारपत्रों में एक दूसरेके विरुद्ध लेख प्रकाशित हो रहे थे । इससे तथा और भी कई कारणों से सेटीजी विद्यालयसे अलग हो गये और १९०६ में अपने घर जयपुर लौट गये ।

अब उनकी इच्छा एक स्वतंत्र मंस्था स्थापित करनेकी हुई और थांड़े ही दिनोंमे उन्होंने अपने कई मित्रोंकी महायतासे ' जेनिश्तान प्रचारक मिनित ' नामकी मंस्था खोल दी । इस संस्थाकी उन्होंने आर्ध्यजनक उन्नित की और कुछ समयके बाद उसे Jain Educational Society of India के रूपमें परिवर्तित कर दिया । सामिति जिस प्रणालीसे काम करनी थी और जो काम कर रही थी इसका जिन दोगोंको परिचय है वे ही जानते हैं कि सेटीजी किस ध्रेणीके मनुष्य हैं और जैनसमाजके लिए उन जैसे पुरुषोंकी कितनी अधिक अवस्थकता है । पाठक यह जानकर आध्रयं करेंगे कि

जैनिशिक्षाप्रचारक सिमातिने अपने पिछले वर्षोमें प्रतिवर्ष १२०००) बारह हज़ार रुपयेके हिसाबसे खर्च किया है! इतनी बड़ी रकम कहाँसे आती थी? न सेठीजीके पास कोई स्थायी फण्ड था और न उनका कोई धनी सहायक था। यदि कुछ था तो असाधारण साहस, दृढ प्रतिज्ञा और अश्रान्त परिश्रम करनेकी शक्ति। जैन-समाजका कोई मेला, कोई जल्मा कोई उत्सव और कोई प्रतिष्ठा ऐसी न होती थी जिसमें सेठीजी न जाते हों और कुछ न कुछ चन्दा एकत्र करके न लाते हों। इस कार्यके लिए एक एक पैसा माँगनेमें भी उन्हें संकोच न होता था। उनकी अपील बड़ी जोरदार होती थी। श्रोताओंके कड़ेमे कड़े हृद्य भी उनकी हृद्य-द्रावक वाणीसे पिचल जाते थे। उनके कई मित्र भी उन्हीं जैसे थे। वे जयपुर शहरमेंमे चन्दा वसूल करते थे। कई मज्जनोंने तो यह प्रतिज्ञा ले रक्षी थी कि जिस दिन समितिको कमसे कम एक रुपया कहींसे माँगकर न ला देंगे, उस दिन एक वारका भोजन ये कोई एक रस छोड़ देंगे!

समितिके कार्योंके कई विभाग थे । परीक्षाविभागके द्वारा समिति अपने निर्वाचित पटनकमके अनुसार जयपुर शहरकी और बाहरकी जैनपाठशालाओंकी परीक्षा लेती थी । जो विद्यार्थी परीक्षामें उत्तीण होते थे उन्हें पारितोपिक और मासिकवृत्तियाँ भी दी जाती थीं । परीक्षाके प्रश्नपत्र समिति बड़े बड़े बड़े विद्वानोंसे तैयार करवाती थी, जो विद्यार्थियोंकी योग्यताकी जाँचके लिए बहुत ही अच्छे होते थे । पुरुषशिक्षाविभाग और स्त्रीशिक्षाविभागकी अधीनतामें समितिने जयपुरमें कुछ विद्यालय और कन्या पाठशालायें स्थापित कर रक्खी थीं। इन सबमें समितिके पठनक्रमके अनुसार पढ़ाई होती थी। बारह हज़ार वार्षिक खर्चमेंसे अधिकांश रुपया इन्हीं पाठशालाओंके काममें खर्च होता था।

'श्रीवर्द्धमाननैनविद्यालयं सिमितिका आदर्श विद्यालयं था। इसमें लगभग २०० विद्यार्थी शिक्षा पाते थे। विद्यालयके साथ एक छात्रालय भी था जिसमें दूर दूरसे आये हुए. लगभग ५० विद्यार्थी रहते थे। विद्यार्थियोंको शारीरिक मानमिक और धार्मिक तीनों प्रकारकी शिक्षायें दी जाती थी । शिक्षापद्धतिके सम्बन्धमें सेठीजीका ज्ञान और अनुभव बहुत ही बटा चटा है। उन्होंने यूरोप, अमेरिका जापान आदि सार उन्नत देशोंकी शिक्षाप्रणालीका अध्ययन और मनन किया है । इस विषयके बहुत ही कम प्रन्थ होंगे जो उन्होंने न पढे हों । उन्होंने कांगडी, ज्वालापुर, बृन्दावन आदिके गुरुकुल, तथा रवीन्द्रबानुका शान्तिनिकेतन आदि एतद्देशीय आदर्श विद्यालयोंका अच्छी तरह अवलोकन किया है तथा उनकी शिक्षापद्धति पर विचार किया है। वे स्वयं भी एक अच्छे शिक्षक हैं। इससे पाठक जान सकते हैं कि उनके विद्यालयका पटनकम और पठनप्रणाली कितनी अच्छी होगी। वे अपने विद्यालयमें एक भी अध्यापक ऐसा न रखते थे जो शिक्षापद्धतिका जानकर न हो । अध्यापकोंको वे स्वयं शिक्षा देनेकी पद्धति बतलाते थे।

विद्यालयमें मंस्कृत, अँगरेनी और हिन्दी तीन भाषाओंकी शिक्षा सहजसे सहज पद्धतिके द्वारा दी जाती थी । जैनधर्मकी शिक्षाकी

ओर तो बहुत ही अधिक लक्ष्य दिया जाता था । जैनधर्मके मूलभूत कर्मसिद्धान्तका ज्ञान वे छोटेसे छोटे बचोंका इतना अच्छा करा देते थे कि मुननेवाले आश्चर्य करते थे। विद्यालयकी अन्तिम श्रेणीके विद्यार्थियोंकी योग्यता अँगरेजीमें इतनी अच्छी हो जाती थी कि वे कछ ही समय तक प्राइवेट परिश्रम करके मैटिकमें भरती हो जात थे । संस्कृतमें उनकी प्रवेशिकामे भी अच्छी योग्यता हो जाती भी और हिन्दी माहित्यके तो वे बहुत अच्छे जानकार हो जाते थे। उनके कई विद्यार्थी हिन्दीके अनेक पत्रोंमें लेख लिखते थे और कोई कोई नो कविता भी कर मकते थे | हिन्दीके मेठीजी अनन्य भक्त हैं । इस विषयमें वे अपने विद्यार्थियोंका खाम तौरसे उत्साह बढ़ाते थे। हिन्दीका उन्होंने खास तौरसे अध्ययन किया है। यद्यपि उन्हें समय बहुत ही कम मिलता था. तो भी उन्होंने हिन्दीमें कई पुस्तकें लिखी हैं जो अभीतक प्रकाशित नहीं हुई हैं। वे अच्छे लेखक हैं। कविताका भी उन्हें अभ्याम है। उनके बनाये हुए ' महेन्द्रकुमार ' और ' धर्मपाल ' नामक नाटक गद्यपद्यमय हैं और बहुत ही मुन्दर हैं।

विद्यालयमें गणित, इतिहास, भूगोल. अर्थशास्त्र. पदार्थविज्ञान, चित्रकारी आदि सब विषय पदाये जाते थे और इतिहासादि कई विषयोंकी पढ़ाई तो उनकी बहुत ही अच्छी होती थी । उनकी शिक्षाका क्षेत्र बहुत हा विशाल है । वे यह नहीं चाहते कि जैनविद्यार्थी किमी संकीर्ण परिधिके भीतर केंद्र कर दिये जावें और वे संसारके विशाल ज्ञानसे वांचित रहकर अंधश्रद्धाल बन नावें ।

विद्यालयमें जितने कार्यकर्ता थे वे प्रायः अल्पवेतन लेकर काम

करनेवाले या अवैतिनिक थे। उनके विचारोंका विद्यार्थियों पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता था। वे उनके चरित्रसे यह सीखते थे कि मनुष्यका सबसे बड़ा कर्तव्य ममाज और धर्मकी निःस्वार्थ होकर सेवा करना है।

सेठीजीका धार्मिक ज्ञान बहुत ही बड़ा चढ़ा है । जैनधर्मके गोम्मटमार, कर्मग्रन्थ आदि सिद्धान्तोंका उन्होंने इतना अच्छा अध्ययन और मनन किया है कि जैनसमाजमें उनकी जोड़का एक भी ग्रेज्युएट नहीं है । जैनधर्मकी मेद्धान्तिक चर्चीमें ऐसा शायद ही कोई दिन हो जब उनके दो तीन घंटे न जाते हों। उनकी शंकाओंका समाधान करना बड़े बड़े विद्वानोंके लिए भी कठिन जाता है। जनधर्मका हृद्य क्या है यह वे जानते हैं। उन्होंने श्वेताम्बरशास्त्रोंका भी एक यित महाशयके पाम अच्छा अध्ययन किया है। जनधर्मकी शिक्षाको वे बहुत ही आवश्यक समझते हैं।

जैनधर्मके वे केवल ज्ञाता ही नहीं है, उसका आचरण भी पूर्ण-तया करते हैं। अभी कुछ दिन पहले जेल्पवानेमें जिन-दर्शन न मिल-नेमे उन्होंने आट दिन तक भोजन न किया था।

जैनसमाजके बीसों अञ्युएटोंका ध्यान उन्होंने जैनधर्मके अध्यय-नकी ओर आर्कार्पत किया है और उन्हें समझाया है कि अपने इस रत्नाकरको देखा, इसमें अवगाहन करो; तुम्हें वह शान्ति मिलेगी जो और कहीं भी नहीं मिल सकती है।

स्त्रीशिक्षाविभागकी ओरसे सरस्वती कन्यापाठशाला और पद्मा-वती कन्यापाठशाला दो पाठशालायें स्थापित हैं और उनमें समितिके पठनक्रमके अनुसार हिन्दी, भूगोल, गणित, गृहकार्य और धर्मकी शिक्षा दी जाती है।

सिमितिका एक पुम्तकालय भी है। उसमें हिन्दीकी तथा अँगरेज़ी आदिकी कई हज़ार पुस्तकें संग्रह हैं। इसमे जैन अजैन सब एक सा लाभ उठाते थे। जयपुरका प्रसिद्ध हिन्दी पुस्तकालय 'नागरी भवन 'सिमितिको ही मिल गया था।

प्राचीन हस्तिलिखित अन्थोंका मंग्रह और उद्धार करनेके लिए भी एक विभाग स्थापित किया गया था और उसके द्वारा जयपुरके समस्त भंडारोंकी सूची नैयार कराई गई थी; परन्तु आगे कोई योग्य कार्यकर्त्ता न मिलनेके कारण यह काम बन्द कर दिया गया।

विद्यार्थियोंको व्याख्यान देना भी सिखलाया जाता था । उनके सामने अच्छे अच्छे व्याख्यान होते थे, जिसमे वे अपने चरित्र-को उदार उन्नत और धर्ममय बनावें और लोगोंके कल्याण करनेकी शक्ति—वक्तृत्व शक्ति प्राप्त कर सकें।

छात्रालयमें कालंजके पढ़नेवाले विद्यार्थी भी रक्खे जाते थे और जो असमर्थ होते थे उनमे कुछ काम लेकर उन्हें कुछ आर्थिक सहायता कर दी जाती थी। ऐसे विद्यार्थियोंके हृदय पर धार्मिक संस्कार डालनेका सेठीजी बहुत प्रयत्न करते थे। थोड़े ही समयमें उन्हें धर्मसे प्रेम हो जाता था और उनकी धर्म तथा समाजकी सेवा करनेकी ओर राजि हो जाती थी। उनके यहाँके ऐमे कई विद्यार्थी आज जैनसमाजकी सेवा कर रहे हैं।

समिति एक ऐसी अच्छी संस्था थी कि उसकी विशेष विशेष

बार्तोका उल्लेख करनेके लिए ही बहुत स्थान चाहिए। हमने यहाँ मोटी मोटी बार्ते बतला दी हैं; अधिक जाननेके लिए समितिकी रिपोर्ट देखना चाहिए।

हमारी समझमें सेठीजीका वास्तिविक परिचय पानेके लिए-उनके कर्तव्यशील जीवनका महत्त्व समझनेके लिए सिमितिके कामोंको छोड़कर और कोई साधन नहीं है। उनका अन्तरंग शरीर सिम-तिके ही रूपमें विद्यमान था।

हमारा विश्वास है कि यदि सेठीजीकी 'सिमिति' दश ही वर्ष और चल जाती तो जनममाजकी प्रगति इतनी हो जाती जिसकी कि हम कल्पना भी नहीं कर मकते हैं। अभी तो उसका प्रारंभ ही था— काम करनेक दिन तो उसके अब आये थे; परन्तु जैनसमाजका दुर्भाग्य कि उम पर अकालहींमें एक बज्ज आकर पड़ा और वह नष्ट श्रष्ट हो गई।

मेठीजीका शिक्षाप्रचारके समान समाजसुधारकी ओर भी लक्ष्य हैं। उन्होंने जो महत्त्वका ओर सबसे आवश्यक कार्य अपने हाथमें ले रक्का था उसके देखते हुए यद्यपि उन्हें इस कार्यमें हाथ न डालना चाहिए था; नथापि जैनसमाजके कल्याणकी—उसकी दशा सुधारनेकी भावना उनके हृदयमें इतनी प्रबल थी कि उन्हें यह कार्य बलात् करना पड़ता था। इससे उन्हें अनेक संकीर्ण हृदय व्यक्तियोंका कोपभाजन बनना पड़ा और बहुतोंने तो उनके मार्गमें काँटे बिछाने तकका प्रयत्न किया। किन्तु वे अपने विचारोंमें इतने हृद थे कि उन्होंने किसीकी जरा भी परवा न की—सब कुछ हानियाँ सहकर भी वे अपने कर्तव्यपथ पर आहृद्ध रहे। वे सुधारक हैं; परन्तु अविचारक नहीं हैं। समाजमें जिन सुधारोंकी वास्तवमें आवश्यकता है, जिनसे समाजका कल्याण होनेकी संभावना है और जिनसे जैनधर्मके सिद्धान्तोंमें कोई बाधा नहीं आ सकती उन्हीं सुधारोंके लिए वे प्रयत्न करते थे। राजपूनानेमें छोटी छोटी सैकड़ों कुरीतियाँ प्रचलित हैं उन्हें सेटीजीने बहुत कुछ बन्द करा दिया है। कन्याविकय, बाल्यवृद्धिववाह, रंडियोंका नाच और फिज़्ल्यवृचिके मिटोनेमें उन्हें बहुत सफलता हुई है। उन्होंने अनेक विवाह बहुत ही थोड़े खचेमें सर्वथा सभ्य और उच्च रीत्यानुसार करवाये हैं। समाजमुधारक लिए उन्होंने एक नाटकमण्डली स्थापित कर रक्षी थी। इसके नाटकोंका लोगोंपर बड़ा प्रभाव पड़ता था। अभी दो वर्ष हुए इनके एक नाटकमें लगभग दश हज़ार दर्शक उपस्थित हुए थे!

जेनोंकी तमाम जातियोंमें परम्पर रोटी बेटी व्यवहार जारी करनेकी वे बहुत आवश्यकता बतलाते हैं। इस विषयमें उनकी युक्तियाँ मुनने योग्य होती हैं। जेनोंकी तीनों शाखाओंमें—दिगम्बर श्वेताम्बर स्थानकवासियोंमें मेल मिलाप बढ़ानेका—प्रीतिभाव उत्पन्न करानेका वे बहुत उद्योग किया करते थे। इसके लिए उन्होंने एक भजनमण्डली स्थापित कर रक्षवी थी जो बारी बारीसे तीनों सम्प्रदायके मनिद्रोंमें जाकर प्रीतिवर्धक भजन गाती थी। कभी कभी वे तीनों सम्प्रदायके शिक्षितोंको एकत्र करते थे और उनका एक साथ प्रीतिभोज कराते थे। अपने विद्यालयमें वे तीनों सम्प्रदायके विद्यार्थियोंको रखते थे; उनकी धर्मशिक्षाका भी उन्होंने यथाचित प्रवन्य कर रक्षवा

था। उनकी संस्थाके लिए चन्दा भी उन्हें तीनों सन्प्रदायोंसे मिलता था। कई अजैन विद्यार्थी भी उनके विद्यालयमें शिक्षा पाते थे। देशकी उन्नतिके लिए वे यह भी आवश्यक समझते हैं कि नीच जातियोंको शिक्षा दी जाय। उनके ख़्यालमें ज्ञानदान किमीको भी किया जाय, वह पापका कारण नहीं हो सकता है। अवश्य ही उक्के इन कामोंसे बहुत लोग अप्रमन्न थे।

मेठीजी जनसमाजके बड़े नामी व्याख्याता हैं। उनके व्याख्यानींका प्रभाव भी बड़ा गहरा पड़ता है। नय और पुराने दोनों तरहके ख्याख्याले उनके व्याख्यानोंकी प्रशंमा करते हैं। इस कारण उन्हें प्रायः प्रत्येक जैन सभामें उपस्थित रहना पड़ता था। आज तक उनके देशके एक छोरमे दूसरे छोर तक मेकड़ों व्याख्यान हुए हैं; परन्तु जहाँतक हम जानते हैं समाज और धर्ममे बाहर राजनीति आदिके सम्बन्धमें उनका कोई भी व्याख्यान नहीं हुआ। वे केवल धर्म ओर शिक्षांक प्रचारक हैं। जनसमाजमें अभी इतनी योग्यता भी कहाँ है कि वह राजनीतिके व्याख्यान सुने। जिस समाजकी सारी शक्तियाँ साम्प्रदायिक झगड़ोंमें-—शास्त्राथोंमें और तीथोंकी मुक्दमेवाज़ीमें खर्च होती हैं उसमें इतना बल कहाँ कि राजनैतिक क्षेत्रमें खड़ा हो सके।

सेटीजीका स्वभाव बड़ा ही मुशील, सृदु और प्रभावशाली है। अभिमान उनको छू तक नहीं गया। वे प्रशंमाके भूखे नहीं। वे केवल काम करना जानते हैं। उनका रहन सहन बहुत ही सादा है। सदा अपनी देशी पोशाक पहनते हैं। जयपुरी पगड़ी छोड़कर उन्हें कभी किसीने टोपी लगाये न देखा होगा। खाना पीना बहुत ही साधा रखते हैं। कष्ट सहन करनेमें तो वे बहुत ही बढ़े चढ़े हैं। थोड़ेसे भुने चने साथमें रखकर सैकड़ों मीलोंकी सफ़र कर आना उनके लिए मामूली बात है

सेठीनीके कुटुम्बेमें उनकी सहधिमणी, एक पुत्र और तीन कन्यायें हैं। अपनी स्त्री श्रीमती गुलाबबाईको उन्होंने इस प्रकारकी शिक्षा दी है, उनके विचारोंको इतना उन्नत और उदार बना दिया है और उनके मनमें समाजसुधारकी आवश्यकताके भाव इतने दृढ कर दिये हैं कि वे इनके कामोंको अच्छा ही नहीं समझती हैं किन्तु इन्हें बहुत कुछ सहायता भी पहुँचाती हैं। सेठीनीका विश्वास है कि जो पुरुष अपनी सहधर्मिणीको अपने विचारोंकी अनुयायिनी और शिक्षिता नहीं बना सकता है वह समाजका काम कभी सफ-लताके साथ नहीं कर सकता।

पुत्र प्रकाशचन्द्रकी अवस्था इस समय ११ वर्षकी है। छड़िकयाँ छोटी छोटी हैं। प्रकाशचन्द्रको आप स्वयं ही पढ़ाते थे। आप यह नहीं चाहते हैं कि वह बी. ए., एम. ए. पास करके वकीछ बन जाय या नौकरी कर छे। आपकी यही इच्छा है कि वह भी अच्छी तरह शिक्षित होकर अपना जीवन देश, धर्म और समाजकी सेवाके छिए अपण कर दे। 'प्रकाश 'होनहार छड़का है। उससे बात—चीत करके और उसके इस छोटीसी उम्रके विचार मुनकर चित्त बहुत ही प्रसन्न होता है।

गतवर्ष इन्दौरके नामी रईस रायबहादुर सेठ कल्याणमलर्जीने दो लाख रुपयोंका दान करके इन्दौरमें एक जैन हाईस्कूल खोलना चाहा और उसकी नीव जमाकर कुछ समय तक स्कूलको अच्छे ढंगसे चला देनेके लिए सेठीजीसे प्रार्थना की। उन्होंने कुछ समयके लिए यह कार्य करना स्वीकार भी कर लिया। करते क्यों नहीं, उनके जीवनका तो उद्देश्य ही शिक्षाप्रचार है। गत मार्चमें वे उक्त स्कूलको आदर्शरूपमें स्थापित करनेकी तैयारी कर ही रहे थे कि अचानक गिरिफ्तार कर लिये गये। पहले देहलीके पड्यंत्रके मामलेमें देहली लाये गये; परन्तु मुकूत न मिलनेसे थोड़े ही दिनोंमें छोड़ दिये गये। इसके बाद ही न जाने फिर क्यों पकड़ लिये गये और कुछ दिनों इन्दौरमें रक्षे जाकर जयपुर भेज दिये गये। तबसे अबतक वे जयपुरकी जेलमें सड़ रहे हैं। यह नहीं वतलाया जाता है कि उन्होंने क्या अपराध किया है।

देखें जैनसमाजके शुभदिन कव आते हैं और कव वह फिरसे ऐसे महात्मा, उदारहृद्य, स्वार्थत्यागी सच्चे सेवकको प्राप्त कर उन्नतिके पथ पर अग्रसर होता है।



उठा प्यारो, उठो प्यारे। !

一种意味

(श्रीयुत बावू अर्जुनलालका सेटी बी. ए. वे. महत्त्वकुमार नाटकसे उद्धत ।)

हुआ है भार उन्नतिका उठा प्यारा उठा प्यारा ।
यह देखां ज्ञानका जिनका, उठा प्यारा उठा प्यारा ॥ १ ॥
कला काशलक पक्षागण, सुनाते शब्द हैं मनहर,
पहां अध्यात की वाणी उठा प्यारा उठा प्यारा ॥ २ ॥
अधियाका अधिरा सब, मिटा जाता है दुनियास ।
जग है चीन भी देखां, उठा प्यारा उठा प्यारा ॥ ३ ॥
सभाला अपने घरका अब जगा दा वृढ भारतका ।
यह गुरु हे सर्व देशांका, उठा प्यारा उठा प्यारा ॥ ४ ॥
वया हिन्दू क्या मुसल्मां, और जैनी बीव्ह ईसाई ।
करा अब मल आपसम, उठा प्यारा उठा प्यारा ॥ ५ ॥
जहाँक अब पानामं, बना यह तन हमारा है ।
करा सब उम पे न्यालावर उठा प्यारा उठा प्यारा ॥ ६ ॥
वजाक बाज शिक्षाक, भरा आलाप साहसका ।
वनामे पात्र लक्ष्मांक, उठा प्यारा उठा प्यारा ॥ ६ ॥

हदयोद्गार ।

िर्धायुक्त बाबू अर्जुनलाळजी होटी थी. ए. के बनाये हुए ' महेन्द्रकुमार ' नाटकमें उड़त एक पदा ते !

कब आयगा वह दिन कि वनुँ साधु विहारी ॥ देक ॥ इनियामें कोई चीज़ मुझे थिर नहीं पार्ता, और आयु मेरी यों ही तो बीती है जाती ।

मस्तक ये खड़ी मौत वह सबर्हाको है आती. राजा हो चाहे राणा है। हो रंक भिखारी ॥ १॥ संपत्ति है इनियाकी वह इनियामें रहेगी. काया न चल साथ वह पायकमें दहेगी। इक ईट भी किर हाथसे हर्गिज न उडेगी. बँगला हो चीहे कोठी हो हो महल अटारी ॥ कव० ॥ २ बैठा है कोई मस्त ही मसनदको लगाये. माँगे है कोई भीख फटा वस्त्र बिछाये। अंघा है कोई कोई विधर हाथ कटाये, व्यसनी है कोई मस्त कोई भक्त पुजारी, ॥ कब० ॥ ३ खेल हैं कई खेल घरे रूप घनेरे. स्थावरमें बसोंमें भी किये जाय बमेरे होते ही रहे हैं या सदा शाम सबेर. चक्करमें घुमाता है सदा कर्म मदारी ॥ कव० ॥ ४ सबहासे में रक्खेंगा सदा दिलकी सफाई. हिन्द हो मुसलमान हो हो जैन ईसाई। मिल मिलक गल बाँटेंग हम थीति मिटाई. आपसमं चलेगा न कभी दंष-कटारी ॥ कवः ॥ ५ सर्वस्व लगाके में करें दशकी सवा. घर घरमें में जा जाके रखें जानका मेवा। इःखोंका सभी जीवोंक हो जायगा हेवा. भारतमें न इंग्लुंगा कोई मुर्ख अनारी ॥ कवः ॥ ६ जीवीको प्रभादींसे कभी मैं न सताजें. करनोंके विषय हेयमें अद में न लुभाई। ज्ञानी हं सदा ज्ञानकी में ज्योति जगाऊँ. समतामें रहेगा में सदा ग्रुद्ध विचारी ॥ कवः ॥ ७

उठो, क्या सोच रहे हो ?

त्रैनबन्धुओ ! उठो ! अब क्या सोच रहे हो । देखंत नहीं तुम्हाँग लिये तनमनथन अपण करनेवाला धर्मवीर अर्जुन विपत्तिमें फंमा है । मारे भारतके माननीय पुरुष उनकी मुक्तिके लिये अधीर हो रहे है । पर अभी तक तुम सोच विचारमें ही पड़े हो । उद्यो ! और अपने पेरों खड़े होकर अपने प्राणोंसे प्यारे बन्धुके लिये कुल के कम्मन्यका परिचय दो । यदि यह समय चृक गये तो याद रक्वी अधमए तुम्हारे मरनेमें देर न लगेगी । वीरप्रभुका नाम लेकर यदि तेग्ह लक्ष जैन उठंगे तो वीर भगवान कल्याणही करेंग ।

ऐतिहासिक स्त्रियाँ।

कमार देवेन्द्रप्रमाद जिन ।



🖰 कन्याप्येवं पालर्नाया रक्षणीयाति यत्नतः 🖓

ऐतिहासिक स्त्रियां।

आठ प्रसिद्ध ऐतिहासिक सतियों और देवियों के शिक्षाप्रद

जीवनचरित ।

सम्पादक-

ख्रारा-निवासी कुमार देवेन्द्रप्रसाद जैन।

वीर निर्वाण मंवत् २४३८ ईसवी सन् १८१३।

मर्वस्वत्व स्वाधीन]

मुख्य ॥ सयडाक

All rights reserved.

PRINTED BY
RAM PRATAP BHARGAVA.

Narsingh Press 201 Harrison Road, Calcutta.

PUBLISHED DY

KUMAR DEVENDRA PRASAD JAIN, ARRAH,

First Edition 1000 Caples.

Price Ans. Eight.

Post free.

Free Gift to Sisters who cannot afford . Sent Post paid on application.

मातृ-चरणोंमें।

Spiral.

* M. .

商

797~

Stan

Ş,

5

new Newson



मुर्क बहुत हर्ष है कि मेर प्रिय सिच देवेन्द्रप्रगादणीने इस ऐतिहासिक स्त्रियां नामक उत्तम प्रस्तकतो लिखकर एक बही भारी आवश्यकताकी पूर्त्ति की है। सैंने इस पुस्तकतो पढ़ा और इसे स्त्री पुरुष दोनीके लिखे उपयोगी पाया। इसमे भारतवर्षकी प्राचीन देवियों और पुष्यको त्ति मिइ-लाओं की शीनता, पातिव्रत वीरता आदिकी भलक दिखाई देती है जिनके पाठसे पाठकों और पाठिकाओं को अवश्य आनन्दक माथ माथ शिक्ता भी प्राप्त होगी। मेरी इच्छा है कि यह पुस्तक जैनकन्यापाठशालाओं की पाठ्यपुस्तकों मिस्मिलित अवश्य को जाय। आगा है कि इसके मस्पादक और भी ऐसी पुस्तकें लिखकर इस लोगोंको आभारी करेंगे।

निवेदकः

जे॰ एन॰ जैनी, एम॰ ए॰

बार-पेट ला. एडवोकेट,

इबाडाबाड ।





प्रिय पाठक एवं पाठिका वर्ग।

महालाणां भीर पुल्लाला देवियोंकी जीवनी पढ़नेंसे ही इस संसार में मनुष्यकी सभी उन्नतियां हो सकती हैं। जिस किसी जाति या समाजन इस जगत्में सुख सीमास्य प्राप्त किया है उनने अपने देशके महान् पुरुष भीर स्तियों के ही पुल्ल चरित्रोंका भनुकरण करके प्राप्त किया है। किन्तु खटकी बात है कि ऐसी ऐसी पुस्तकोंका हिन्दी में बड़ा ही अभाव है विशेषतः स्तियोंके पढ़ने भीर अनुकरण करने योग्य पुस्तकों तो बहुत ही थोड़ी हैं इसी कारण उस प्रभावकी यिक चित्र पूरा करने के लिये हमने यह उद्योग किया है। पाणा है कि इससे हमारी कन्याएँ भीर भगिनी गण लाभ उठावेंगी। जिस उहे खसे यह किताब लिखी गयी है वह यदि कुछ अंगमें पूरा हुआ तो उसे हम अपना परमसी भाग्य ममकेंग भीर उत्साहित होकर दूसरी भी पुस्तक इसी टँगकी भाठ भन्य पुल्लाका सहिना भोंकी जीवनी समेत लेकर सेवामें

उपस्थित होंगे। इस पुस्तक में इस बातका पूरा पूरा ध्यान रखा गया है कि यह जैनक न्या पाठ शाला भीं भीर आविका अपसीं में पढ़ायी जाने योग्य होवे इसी से इसमें जीव-नियाँ ऐसी दी गयी हैं जो कि ऐतिहासिक भीर शिचा-प्रद हैं।

भन्तमें इस बाबूपत्रालालजी चौधरी पण्डित दीपचन्दजी भीर तुलसीरामजीको धन्यवाद देते हैं जिन्होंने इसे तैयार करनेमें इसारो सहायता की है।

जिसमें इसारी इस पुम्तक से सभी हमारी बहिनी और माताश्रीकी लाभ हो इसलिए इसने निश्चय किया है कि असमर्थ बालिकाशें एवं स्त्रियोंकी पत्र लिखनेसे ही बिना सृख्य श्रीर बिना डाक व्ययके पुस्तक भेज देंगे।

ं इस पुस्तक से जो कुछ भी मृत्य प्राप्त होगा वह स्त्रीणि चा के हो प्रचार में लगा दिया जायगा।

1 1 CHE !

(8)	श्रीमती राजुलदेवी (राजमत	नी)	•••	8
(၃)	यीमती सीताजी	•••	• • •	e
(§)	महारानी चेननाटेवी	•••	•••	₹∘
(8)	महारानी मैना सुन्दरी	• • •	• • •	₹2
(५)	वीरानारी रानी द्रीपदी		•••	85
(€)	यीमती रानी ग्रञ्जना सन्दर्	···	• • •	मूद
(e)	गीलवती मनीरमा देवी	•••	•••	9.
(c)	भीमती रानी रवन मंजवा	• • •	•••	c e



पातिव्रत धर्मका आदर्श।

ताहि न वाघ भुजंगमको ाय,
पानी न बोरे न पावक जालै।
ताके समीप रहैं सुर किचर,
सो शुभ रीत करें अघ टालै।
तासु विवेक बढ़ें घट अन्तर,
सो सुरके शिवके सुख भाले।
ताकि सुकीरित होय तिहूँ जग,
जो नर शील अखण्डित घाले।

बनारकी विलास।



चित्र**शा**ळा प्रेस, पुणं.



"वैरागिणी-रमणी-रत्न"

श्रीमतीराजुल देवी।

(राजमती)

''धन धन्य माहिलारत्न राजुल. युवा वय में तपधरा | भव वास के सब भोगतज, निर्चाण सुख में चितधरा ॥ गिरनार के उस आमृवन में ध्यानमय आसन धरा | उच्च पातित्रत दिखाकर, सुयश से जग मल हरा ॥''

राजमती भीजवंशीय राजा उग्रमेनकी
हैं कि कुमारी थीं, कांटेपनसे ही रनका लाजन
हैं पालन बड़ी योग्यतासे हुमा था, पहुत
हैं कुमारी थीं कोंटपनसे कारण राजकन्या
राजमतीकी प्रथंसा यहां तक बढ़ी चढ़ी थी कि दनके पिताकी

इनके लिये वर खोजनेमें कुक भी परिश्रम नहीं उठाना पड़ा। भनेक महाराजा इस ग्रह्मक्कीक लिये खयं था धाकर याचना करते थे।

सीर्यपुरके यदुवंशीय राजा ममुद्र विजय शीर रानी शिव-देवीके पुत्र बाइसवें तीर्शक्षर श्रीनंसीनाथ स्वामी जब तरुणा-वस्थाकी प्राप्त इए, तब इनके कुटुब्बियोंने भीजवंशियोंसे श्रीराक्तसती शीर श्रीनंसीनाथका सब्बन्ध करनेक निये मंदिशा भेजा। यह सब्बन्ध सबको रुचिकर जँचा श्रीर विवाहकी तिथि निश्चित होकर टीका भी चढ़ गया।

योने मीनाय स्वामी उम ममय मार भूमण्डलक पुक्षीं में खेहतम पुक्ष थं। इनके जस्मकं छः महीनं पूर्व ही साता शिव देविक यहाँ रत्नों की वर्षा हुई यी तथा अनेक देव देवियों ने सेवा पूजा की थी। भगवान् निम प्रभु जन्म मेही मित, खोर अविव इन तीन जानीं के धारी थे तथा सत्यन्त गान्त- चित्त इन्यिवज्यी परमपराक्र मी थे। ऐसे अहितीय गुणयक्त तैनों कानाथ पति प्राप्त होने की भाषाने खीराजुन देवीं के इर्ष का पारावार न रहा। यद्यपि अभी विवाह संस्कार पूरा नहीं हुआ था केवन दीका कक्षण चादि अभन्न के रीतियों ही हो पाई थीं परन्त खीराजुन देवीं भपने अन्तरक्ष में निजको सर्व प्रकार स्थानाथ स्थानीं स्थान के स्थान स्था

धीरे धीरे पाणियहणका दिन याया त्रीर बड़े ठाढवाटसे बारात लगनेको तैयारी हुई। इस समय राजुलदेवी महलके भरो खेपर बैठी बैठी प्रपनि प्रानिवासी पतिक गुणोंका विचार करके परम हर्षमें मन्त हो रही थीं। परन्तु पाप पुर्खकी लीना बड़ा पबन है। इस समय प्रश्रभोदयन राजुन देवीकी कुक्क का कुक दिखा दिया थीर उनके साहसकी भनी मांति परीका की।

विवाहका समय निकट होनेपर योनेमीनाथ सामी विधान रथपर सवार हो अनेक महाराजा में महित खसरास जा रहें थे कि मार्गमें बहुतसे पश्चिमें एक बाहुमें विदे रोत चिमात देखा। दीनरचक योनेमी कुमारने रथ रकवाकर इस मयावने दृश्यका कारण सारथासे पूछा। उत्तरमें यह सुनकार कि ''इन पश्चिमा माँस बारातमें आये हुए नीच मनुः खींक लिय पर्वगा'। नेमी प्रभुको बड़ी छूणा हुई। फिर उन्होंने अवधि ज्ञान हारा विचारकर देखा तो इसका कारण कुछ भीरही ज्ञात हुमा। उनकी मानूम हो गया कि यह दृश्य उन्हें वैराग्य प्रगट करानेक लिये उनके बड़े माईन रचा है। सब तरहसे परास्त होकर मावी राजलच्मीक लीमसे श्रीनेमी प्रभु पृथिवीपर रहेंगे तो यही राजा होंगे और यदि मुनि ही जायँगे तो हम राज्य करेंग, इस श्रीमायसे यह सब प्रपञ्च श्रीकाण जीका ही किया हुआ है।

बम अब क्या था। इस प्रपञ्चको देख श्रीनिमीनाथको सच-सुच वैराग्य प्रगट हो गया। वै विचारने नगे कि देखी यह राज्य विभव कीमा बुग है जिसके सिर्ध बहु बटु पुक्रम भी दतना प्रपश्च रचर्त हैं। धिकार है इन इन्द्रियभोगोंको जो जगत्के जोवोंको खार्थमें ऐमा घन्या कर देते हैं। जगभंगुर संसार है इसमें शालाहित हो मार है इत्यादि इत्यादि वातोंके विचार से निमीनाथ को परम वैराग्य हो गया। वे बार ह भावनाश्रोंका चिन्तवन करने लग श्रीर शिरका सुकट छतारकर पृथिवीपर डाल दिया। कङ्कण तोड़ फेंक दिया, सांसारिक भोगोंस मुख मोड़ लिया। संसार से छटासी-मोच-लच्मीक भामलाषी, श्रीनिमीकुमार विवाहार भाकी सम्पूर्ण कार्योंको छोड़ जैनिन्द्री दीचा धारण करके गिरनार (जुनागढ़) के प्रहाड़पर योगाभ्यास करने लगे। सारे विषय भोगोंको छोड़ श्रीराजुल देवी जैसी प्रक्रीको त्याग ध्यान जानमें मगन हो गये।

इधर महर्लीमें स्थित कोमल-चित्ता राजुनदेवीको यह समाचार मिले कि "नेमीनाथने वैराग्य सेलिया"। इन शब्दोंने उस देवांके इदयरूपी कमलका दहन कर दिया। कहा तो वह परमहर्ष और कहाँ यह विण्यिका पहाड़ !

सार राजमचलमें खलबली सच गई। सब सनुर्थाक सुख-पर शीकडी शीक भलकन लगा।

राजुन देवीकी मब कुटुम्बीगण समकान स्त्री, सबने चाडा कि इन्हें अन्यान्य भीग सामिययों में लुभा देवें और श्रीनेमी प्रभुदा दुःख भुला दें; परन्तु यह सती एसी बुडिहीना न श्री। राजुन देवीकी उस समय सारा संसार श्रूम्य दीखन स्त्रा, व चयभर भी वहाँ न टिकीं। समस्त भूषण वमन उतार वैराग्यमें छद्मम करने लगीं, अपने पूर्वक्रत कर्मींक खेलको देख अपनी निन्दा करने लगीं। पाठक पाठिकागणो! राजुल देवीके सतीत्व और खार्थत्यागको प्रशंसा लखनी महीं हो सकती। आप लोग खारं अन्तरकुर्मे विचार लेगी।

ये महासती समस्त कुटु ब्विशेसि विदा साँग, जगत् का मोह कोड़, खामीक ऐसे वैराग्य धर्मको प्रक्लीकार करने के लिये गिरनार पर्वतपरही चली गर्ड । वहाँ प्रहाड़ों की भयानक गुफा धोमें घकेली रहकर परम तप करने लगीं। घहा! धन्य है इस सतीका जिसने पतिक सम्बन्धको इतना दृढ़ निवाहा। इसीका नाम है पतिक सम्बन्ध खाँ और दु: खर्म दु: बी होना! इसीका नाम है पतिकत! जो इतने घल्प सम्बन्धित पतिकोही चपना सर्वस्व सम्भ स्थिर हो गर्द, जिस तरह पतिने मंसार त्यागा उसी तरह स्वयं भी साध्वी

इधर श्रीन मीनाथ खामीको केवल ज्ञान उत्पन्न हो गया धातिया कर्मीके नाममे निर्मल केवल-ज्ञान ज्योति ऐसी स्मृदायमान हुई जिसमें तीनों लोक प्रत्यच्च दीखने लगें। छुधा छषा, भय, खेद, खेटादि (८ दोषीका नाम हो गया, पर-माल भवस्था प्रगट हो गई। यह देख देवोंने समयमदणकी रचना बनाई यानी इतना विमाल समामण्डप बनाया जिसमें बारह सभा भीर भनेक खजा, पताका, तोरण भादिसे सजी वज और कितने ही खान बनाये। इस समवश्रणमें चार बड़े विश्वाल दरवाज़े बने थे, जिनपर धनेक देव देवी गान करते थे। बीचोंबीचमें भत्यन्त उज्ज्वन स्फिटिक मणि (ज्योतिषे भी साफ होती है) का सिंहासन तीन कटनियोंपर शोभायमान हो रहा था और उसीपर श्रीनेमी प्रभु धन्तरीस विराजमान थे। इनके चीगिर्द बारह सभाये थीं जिनमें क्रमसे देव देवी मनुष्य (ग्टह्मात्यागी सुनि धर्जिका) तिर्यञ्च सब बैठे बैठे धर्मश्रवण करें। भगवान्की दिव्यध्वनि (बाणी) में इतना चमत्कार होता है कि उसको सब जीव धपनी धपनी भाषामें समभ जाते हैं।

श्रीनिमी प्रभुका समवशरण (सभा) श्रत्यन्त विभूतिके साथ सङ्गित भीर सब जगहर्म भव्यजीव भगवान्का उपदेश सुनने श्राये, इस समय श्रीमती राजुलदेवीजो परमण्डिका हः इजार रानियाँ जो कि सब भगवान्क समवशरणमें भिर्जिका हुई थीं उन सबकी गुरुशानी हुई । सब श्रिका-श्रीको सत्पथ दर्शानेवाली सबींको रिचका नियत हुई। भर्जिकाशोंके समुद्रमें राजुलदेवीकी हृवि श्रद्रभुत प्रकाशमान होती थी।

सर्वत्र धर्मीपरेश कर कुछ दिन बाद श्रीनंभी प्रभुकी सोश्च हो गयी भीर समाधिभरणकर श्रीराजुलदेवी खर्म-रोहिणी हुई। धन्य है इस देवीक साइस, प्रतिप्रेम भीर धर्माचरणकी!

अस्त्रस्थिति

''श्रीजानकी राम नृपस्य देवी दग्धा न संधुक्षित वन्हिना च देवेश पूज्या भवतिस्म शीला– च्छीलं ततोऽहं परिपाल यामि''

"रामचन्द्रका वंश परिचय"

स्वाकु वंश संसारमें सर्व श्रेष्ठ माना जाता है। क्यों कि भगवान् श्रादि नाथ तीर्थक्षर इसो वंशमें उत्पन्न हुए थे। इनके श्रात-रिक्त श्रन्थान्य तेजस्वी महाप्रतापी राजिष गणने भी इस वंशकी कीर्त्त श्रपनी वीरता सदाचारिता श्रीर धर्मपरायणतादि गुणींसे चिरस्थायिनी की है। इसी प्रणन्त इस्त्राकु-वंशमें काल क्रमानुसार राजोचित समस्त गुण

सम्पन्न "प्रार्थ" नामक राजा उत्पन्न इए तथा दन घर्ण्य नपतिकं ज्येष्ठ पत्र सञ्चाराजा दगर्थ थे। यदापि सहाराजा दश्रधके चन्तः पुर (रनवास) में बहुतसी रानियाँ थीं पर उन सबोंमें की यस्या. समित्राः कैंकयी चीर सप्रभा ये चार रानियां ही प्रधान रानी थीं। इनहीं चार रानियोंसे क्रमसे रामचन्द्र, तकाण, भरत भीर शक्त इन चार पुतः रत्नीका जना इचा था। इन पुत्रीको इनके योग्य पिताने वास्त्रकाल हीमें स्मिचित किया। राजक्रमारीके योग्य जो जो विद्यार्थे उपयक्त शोती हैं उन सब विद्या भीर कलाभीमें उन्हें निप्रा बनाया। इस शिकाके प्रभावसे इन राजकुमारोंमें नैतिक वल, समीचीन माइस, कर्त्तव्य परायणनाटि गुणोंका मानवेश वास्तविक या। यही कारण है कि दनका चरित्र इन गुणोंसे इतने सहस्वका है कि न केवल वह भादर्भही किन्तु सन्चसातकी उपारेय भीर भनुकरणीय है। यह रामचन्द्रादि, विताक आजावानक सत्यप्रतिक्त, जितिन्द्रिय और असाधारण धैर्यमाली थे। आपन्ति कालमें घोरता रखना दु:खितीं व दु:खको दूर करना तथा जैन धर्मकी सची प्रभावना करनाही दनके प्रधान गुण थे।



सीताजीका वंश परिचय।

उनका रामचन्द्रजी सं सम्बन्ध ।

जिस प्रकार इच्छाक वंशमें श्रादर्भ राजायोंने जन्म पाया है उसी प्रकार हरिवंश भी प्रख्यात राजाश्रोंका जन्म-दाता है। इस वंशक राजगणांकी गुणगरिमाने इति-हासमें बच्छा स्थान पाया है। इसी वंग्रमें मिथिलाप्रीका श्रधियति इन्द्रकेत् नामक सञ्चाप्रतायी राजा इया तथा इनके जनक नामक पुत्र इए जो कि भएने पिता क्रम्ट-केत्के स्वर्गारोष्टणके पश्चात राज्यके मासक इए। इनका पाणि ग्रहण विदेहा नामकी किसी राजपुत्रीसे हुचा था। पाणियहण्के कुछ दिन पीछे इन जनकको विदेशासे युगल सन्तानकी उत्पत्ति इई जिसमें एक कन्या भौर पुत्र था। पूर्वजनाकी वेरसे कोई देव पुत्रको उठा से गया। पीछे दयासे किसी स्थानपर कोड़ दिया। रथनूपुर नगरके चन्द्रगति विद्या-धर राजाने उसकी पाया और अपने घर ले जाकर उसे पाका पोसा। इधर जानकी भी दिन दिन बढने लगी। एक दिन नारद सीताको देखनेको आये। सीताने पहले कभी ऐसे मनुष्यको नहीं देखा या इसलिये नारदको देखकर कोठेमें घुसने लगी। यह कोलाइल देखकर महलरचकोंने नारदको पकडना चाहा। जैसे तैसे नारदने उन रचकोंसे प्रयना विगड

छडाया श्रीर भयभीत हो किसी पर्वतकं जपर बैठकर बैरका बदला लेनेकी ठानी। कुछ सोच विचारकर सीताका चित्र खींचा और मीताके भाई भामण्डलकी उस चित्रको दिखाया। वह चित्र इतना मनोहर था कि उसकी देखनेमात्रमें भाम-ग्डलका चित्त मदनवाणोंसे पीडित होने लगा। नाना उप-चार करनेपर भी उनकी वह व्यथा बढ़तीही गई ग्रीर इतने विचार शून्य हो गये कि किसी की लाज न करके सबके सामने मीता मीता प्राष्ट्रका पाठ करने लगे। इस बातकी चन्द्रगतिकी रानीने सुना और समस्त हत्तान्त अपने पतिसे कहा। चन्द्रगति इस समाचारको सनकर श्रीत विस्मित इपा चौर भामगडलके पाम चाकर बहुत समकाया पर उसने एक न मानी। तब चन्द्रगतिन यह स्थिर किया कि सीतार्क विताको यही बुलाना चान्नियं और भामगढनके लिये सीताको साँगना चाहिये। इस कामके लिये चन्द्रगतिने एक विद्या-धरको नियुक्त किया भीर वह विद्याधर अपनी विद्यासे जन-कको रधनुपुर ले आया। जनकके सामने वह प्रस्ताव छप-स्थित किया गया। जनकर्न किसी ममय अपने विचारकी इस तरह खिर किया था कि यह समस्त विद्याश्रीमें निपुण, सकल कनात्रोंमें प्रवीष सीताः महाराज दशरयके ज्येष्ठ पुत रामचन्द्रजीको दूँगा। इस कारण राजा जनकने चन्द्रगतिके प्रस्तावको मंजूर नहीं किया। तब विद्याधरींका अधिपति चन्द्रगति भीर उमके अनुयायी विद्याधर भति क्रांड इए

श्रीर सहसा बोल उठे कि यह वजावर्त श्रीर सागरावर्त नामके धन्य है इनको जो कोई चढायेगा वही सीताका पति होगा। जनकते इस बातको स्वीकार किया और वे विद्याधर उन टोनों धनुषोंको लेकर जनकर्क साथ मिथिला-परीको श्राये। जनकने समस्त राजमण्डनको निमन्द्रण दिया। चारी तरफसे नाना देशींक श्रनेक वीर राजा मिथिलापरीमें षाये। राजा दशरय भी षपन प्रती महित उस स्थानपर थाये। सभामण्डप बनाया गया। राजा और राजकुमार भवने अपने आमनपर आ विराजे। रामचन्द्र और लक्क्कण भी अपने पवने श्रासनवर बैठ गये। पाज मीताका स्वयस्वर दिन है। राजाशींक इट्यमें भन्यम सन्दरी मीताका ध्यान लग रहा है। कोई राजा विचारता है कि इसके बिना संसारमें रहना व्यर्थ है। श्रीर कोई विचारता है इसके रूप श्रीर लायखके योग्य में ही हाँ और कोई इसके योग्य नहीं। इस प्रकार सभा-मग्डपमं उपस्थित राजगण मनमानी कल्पना कर रहे थे। उसी समय वह प्रस्ताव उपस्थित किया गया अर्थात इस बातकी घोषणा की गई कि वही राजकुमार इस परम सन्दरी भीताका पति होगा जो कोई इस 'वजावर्ता अनुषकी चढायेगा। वह धन्य बढाही भीषण था। विद्याधरी हारा रचित था। तथा भग्निक लिङ्गाभीकी रक्तज्वालाएँ भक्की श्रक्तीं वेर्धको चृत करनेवाली उभमें से निकल रही थीं। बंडे बंडे भुजङ्ग अपनी भयावनी जीसे निकास रहे थे।

पर कामने वशीभृत राजागण कब डरनेवाले थे? वे मृत्युके मुखमें प्रवेश करनेकी तैयार हो गये। पर्शत धनुषकी चढानेके लिये उद्यम करने लगे। पर किसी भी राजाकी चढ़ानेकी बात तो दूर रही उसके पाम जानेका भी साहस नहीं हुया। समस्त राजा यपना यपना सिर धुनने लगे यीर अन्तर्भे लिज्जित हो ज्योंके त्यों अपने अपने आसनपर आ बैठे। सब लोग अवाक होके रह गर्य। भीर प्रत्येक सनुष्यके हृद-यमें यह भावना उत्पन्न होने लगी कि अब इस धर्णीतलपर ग्रेसा कोई बीर नहीं जो इस धनुषकी चढायेगा। पर उन्हें यह मालुम नहीं था कि महाराजा दगरथके सुप्रत श्रीराम-चन्द्रजी इस धनुषको चढ़ांगंगे श्रीर सीताके पति होंगे। रासचन्द्रजीने देखा कि सबके बल शीर पीरुषकी परीचा हो चुकी प्रधात कोई भी इसे चढ़ानेको समर्थ नहीं हुपा तव महापराक्रमी रामचन्द्र धनुषको चढानके लिये उद्यमी इए भीर धनुषके एास गये। रामचन्द्रजीके पूर्वीपार्जित पुख्योदयसे वे श्रामिज्यालायें श्रीर वे सर्प एकदम विलीन हो गये। रामचन्द्रजीन उस धनुषकी पुष्पमानाकी तरह उठा लिया और उसे चढ़ाया। दर्भनगण चिनत होने रहगये और रामचन्द्रका मुँह ताक ने लगे। वस फिर क्या या ? सीताने वरमाना रामचन्द्रकं गलेमें डाल दी। श्रमन्तर बडे समारोहसे रामचन्द्र भीर सीताका पाणियहण हुआ।

श्रीरामचन्द्रजी श्रीर सीताजी की विशेष बार्ते।

जब राजा दशरथको कैकेयोके स्वयस्थर समयमें स्वयस्थरसे अमन्त्र राज गण्स भीषण यह करना पढ़ा था. उस समय मर्व-गुण-सम्पन्न कैनेयोने दगरयको असाधारण सहायता दौ इसीसे महाराज दशरयने उस महायुद्धमें विजय जाभ की थी भीर मन्तृष्ट होकर कैकियोको वरदान दिया था। कैकेशीने उस वरको उस समय न लेकर धरोहर रखनेकी प्रार्थना की श्रीर सहाराजने उसे स्वीकार किया। महाराज दशरथको राज्य करते बहुत समय हो गया तो उन-को संसारसे वैराग्य पाया भीर जिनेन्द्र दीचाके ग्रहण करनेको उदात हए। पर कैकेशोके सपत "भरत" संसारसे उटासीन हो पितासे भी पहिले दीचित होना चाहते थे। कैकेशीको यह बात नहीं रूची। पति श्रीर पुत्र टोनोंका एकड़ी साथ वियोग होते देख उसे वृद्धि उत्पन्न हुई और उसने विचारा कि, पन उस वरका समय है। यदि मैं उस वरसे भपने पुत्रको राजगही दिला दूँ तो मेरा पुत्र दी चित न होगा। वस क्या था-रानीने प्रतिसे अपने धरोहर वर की याचना की। यदापि न्याय से राज्यका खामी होना रामचन्द्रको योग्य या पर दृढ प्रतिश्व महाराज दशरवने ऐसा नहीं किया भर्वात भरतही की राज्य का अधिकारी अनाकर दीचित हो गये। रामचन्द्र जी सहन-

गील थे. पिताक पाजाकारी थे: इसीसे उन्होंने इस विषय मं इस्तचेव नहीं किया चौर विचारा कि यदि हम इस राज्यमें रहेंगे तो प्रजा जन हमसे श्रधिक प्रेम करेंगे शौर इसे राज्य का श्रधिकारी होनेको वाधित करे'री, इसलिये यहाँसे चला जाना ही उचित होगा। रामचन्द्रजी बनको जानेक लिये उदात हुए। पपने पतिको बनवास करनेका उदामी टेखकर सीता चाक्कल व्याकुल हो उठीं चीर चपन प्राणियके साथ जानेका इट सङ्ख्य कर लिया। यदापि रामचन्द्र जीने बहुत कुछ समभाया बुभाया पर उनके हृद्धमें एक भी न पाई। मीता जानती थी कि स्तियोंको प्रतिके विना स्वर्गमें भी रहना श्रका नहीं लगता। पति ही नाश्यिका प्राण है। वही प्रति नारियोंका सर्व स्व है। इमारा प्रति बनर्स जाय श्रीर इस घरमें रहें यह बात कभी नहीं होगी इत्यादि बात विचार रामके सम्भान पर भी उसने भवन विचारको नहीं बटना और प्रकार सीता पपने पतिहीके माथ बन जानेको उद्यत क्षो गई। इसी प्रकार लक्क्षण भी अपने बर्ड भाईका अनु-गमन करनेको उद्यमी हो गये। जब रामचन्द्रजीन कोई उपाय नहीं देखा तब सीता भीर लक्ष्मण को साथ ले बनका मार्ग लिया। हा ! कैसा विलच्चण यह पतिप्रेम है और कैसी गाढ़ भिता है जिससे प्रेरित हो आज सीता पैदल बन को जा रही है। जिस सीताने कभी पृथ्वीका सार्श भी नहीं किया था, जिसने कभी खप्रोंमें भी द:ख नहीं भीना था,

जिसको यह भी जान नहीं था कि बन क्या वस्तु होती है. वही सीता प्रति-प्रोम लीन हो इस बनसे उस बनमें चौर उससे इसमें भ्रमण करती फिरती है। मीताकी घव उन जाँचे जँचे महलोपर प्रष्य-श्रया का सुख नहीं है। सीताकी नाना प्रकारके स्वाट-सुखट व्यञ्जन नहीं हैं। सीताके श्रीरमें घड सवर्ण-मय और रत्न-मय माभूषण नहीं हैं। तात्पर्य कहने का यह है कि सीताके पास सखकी कोई सामग्री नहीं है तीभी सीता सखी है। उसका सख अपार है। वह अपने सुखर्क सामने खर्गके सुखको तुच्छ समभाती है। तीन स्रोक की विभूति भी मीता की सुखे दणके समान है। केवल पति कं चरण कमलोंके टर्शन मात्रमें ही मौता प्रवनिको प्रम सखी मानती है। पतिकी सेवा करके ही घपनेकी क्रतकत्व मानती है। यही कारण है कि सीता उस महा भीवण बन को सुन्दर महत्त समभती है और मार्ग में पड़े हुए कंटकींकी पृष्य-ग्रया जानती है! इसी प्रकार नाना दु:खोंकी भीर धनेक कष्टोंको सहन करती हुई सीता और रामचन्द्र को बहुत दिन बीत गये। जब रामचन्द्रने दण्डक बनमें प्रवेश किया उसी समय द्राचारी रावण ने अपने क्लसे सीताको इरफ कर लिया। रामचन्द्र भीर लक्षाण उस समय सीताके पास नहीं थे। इसिलये रावणको भपने कार्यमें किसी प्रकारकी वाधा भी नहीं पड़ी। जब रामचन्द्रने उस खान पर पाकर देखा कि सीता नहीं है। तो अत्यन्त खिब भीर शोकातर इसे। पश्चात् मीताको दूँ दुने के लिये उद्यत हुये। इधर पविचारो रावण मीताको लक्षा में लाकर मोताको इच्छा पूर्व क अपनी पृण्यित कामनाको पूरी करना चाहता था। यहाँ पर पाठक पाठिकाभोंको यह ध्यान रहे कि रावणने किसी अवसर पर यह प्रतिश्वा ले ली थी कि "जो स्त्री अपनी इच्छा पूर्व क हमें चाहेगी उसीका मैं प्रण्यो हो जँगा अन्यथा नहीं।" इसी कारण उस कामीने उस अबला पर बलात्कार नहीं किया। किन्तु मीताको राज्ञी करनेकी विविध चेष्टा करनेपर भी उनका सुमेक जैसा मन कुछ भी नहीं चला। उस समय मीताक समीप कोई सहायक नहीं था। सीताके प्राण्यनाथ सीताक समीप कोई सहायक नहीं था। सीताके प्राण्यनाथ सीताक भयहर भय बताये गये और सहस्रों प्रलोभन दिये गये। घोर यातना और तीव वेदनाभोंसे सीताके विचारको बदलने की चेष्टाएँ की गईं — पर सीताने अपने हृदयको पाषाणका बना-कर उन सब दुखोंको सहन किया।

सीताका पातित्रत निर्दोष भीर सत्य था। इसी कारण दुःख सहने पर भी उसने थोड़ा भी कलंक नहीं मगने दिया। महासती सीताने तकतक भन्न पानका ग्रहण नहीं किया जब तक उसने अपने प्राणनाथका कोई समाचार नहीं पाया। महावीर हनुमान (पवनक्षय) ने सीताकी खोज की भीर सीताकी लंका में देखा। देखकर रामचन्द्रका कुश्व-समा-वार सुनाया भीर प्राष्टासन दिया। इस समाचारकी पाकर

ही मीताक जीमें जी घाया घीर संक्रचित जीवनसताका फिरसे विकास इया। इधर रामचन्द्रके ग्रभोदयसे बहत से महायक चान मिले थे। इसलिये बहुत से वीरोंको लेकर उन्होंने लंकापर चढाई की। लंकामें पाकर रामचन्द्रने रावणको कहला भेजा कि तम यदि सीताको भपनी इच्छासे देना चाहते हो तो दे दो, घनावा हम बजात सीताको ले जायँगे भीर तुम्हारा सर्वनाम हो जायगा। इस प्रकार उटारचेता रामचन्द्रने भएनी गस्भीरता भीर उटारताका परि-चय दिया पर कामान्ध रावणको एक भी नहीं सहाई। उसका विचार टमसे मस नहीं इपा। सी ठीक है-क्यों कि 'विनाग काले विवरीति बृद्धिः।" इस नीतिके भनुसार विना-यक समय लोगोंकी उल्टी मित हो ही जाती है। बस क्या था, दोनों पचर्क योहा गण रणाङ्गणमें उतर पड़े। महा घीर यह उना। क्रमणः रावणकी पराजय होती गई। परम रणा-सन्न रावलके विचारों में भंग मान भी परिवक्त न महीं इसा। बरावर युद्ध करता ही गया। रावण विषय कम्पटी था। कामके वशीभत था। कर्तव्याकत्त्री के ज्ञानसे शन्य था। महा पविनयी या-पीर पविवेकी या; इसलिये उसका चर्षः पतन इचा। रामचन्द्रने उसे युडमें मारकर परलोक का मार्गवताया। रावणकी की त्रि सदाके लिये लोप हो गई भीर उसकी मस्तक पर ऐसा कलंकका टीका लगा कि भाज इजारी बरसोंके बीत जानेपर भी उसका मार्जन नहीं हुया।

यही कारण है कि भाज रावणका स्मरण भानेसे उसके अपर ष्ट्रणा प्राप्ती है भीर ऐतिहासिक दृष्टिसे निरादर का पाव गिना जाता है। पत्। जो होना या हो गया। जो भवित-व्यता कोती है वह हो ही कर रहती है। उसे कोई नहीं मेट सकता। रामचन्द्रने लंकाको विजय किया भीर लंका का राज्य विभीषण को दिया भीर ऋपनी प्राण प्रिया पतिवता सीताको लेकर प्रयोध्या अधि। यहाँ प्राकर दनका राज्या-भिषेक इत्रा। राजिसंहासन पर दिराजमान इये। बहुत दिनोंसे बिक्क हे इसे घपने परिवार जनोंको सुखमय किया। प्रजा पर प्रवकी तरह वात्सच्य भावसे शासन करने लगे। इसी प्रकार सीता चौर लक्ष्मण भरत इत्यादिकोंके साथ सुख में दिन बिताने लगे। भभी महाराज रामचन्द्रको गहीपर बैठे यधिक दिन नहीं हुये ये कि भक्तमात् एक घटना भा खपस्थित हुई। कुछ नगर की लोग समुदाय होकर राज-अवनमें पाये श्रीर पाकर बैठ गये। प्रानेका कारण पृक्तने पर उन चागत जनोंके घुष्ट नेता 'विजयं' नामा पुरोहितने इन कर्णभेदी गृब्दीकी उचारण किया कि महाराज !!! सीता जी इतने दिनोंतक रावणके घर पर रहीं भीर उनकी बिना सीचे विचारे भाषने भाषने ग्रहमें प्रविष्ट कर लिया! हे प्रभो ! भाष प्रजाने शासक हैं। आपके आधीन बहत जन समुदाय हैं। राजा का प्रजाके अपर पिक प्रभाव पडता है। जैसा राजाका व्यवसार होता है वैसा सी व्यव-

हार उस राजाकी प्रजाका हो जाता है। प्रापके इस व्यव-हारको देखकर प्रजा उच्छृंखल भीर निर्मेल हो गई है इत्यादि।

यह बात सुनकर रामको चतिशय खेट हुपा। रामचन्द्र को अपनी प्रिया के सतील में लिशमाल भी शंका नहीं थी। तोभी रामचन्द्र -वहुसंख्यक जन-समुदाय के शासक थे। सामा-जिक नियमीके पूर्ण सभी थे। पूर्वीपर विचार में प्रति चतुर थे। वे जानते थे कि इनका कहना ठीक है। यदि याज इस ही ऐसा करेंगे तो इसारे आधीन प्रजा भी समाज के नियम परिपालन में खेच्छाचारप्रवृत्ति करेगी प्रस्थादि विवेचन कर दूरदर्शी खार्थ- होन महाला रामचन्द्रने प्राण्-प्रिया सीता की परित्याग करनेका विचार कर लिया! सीता को गर्भ था। इमलिये उस पुरुषयी लाको निर्वाण भूमिके दर्भनीं की प्रच्छा पुरं भीर पतिसे निवेदन किया। राम-चन्द्रको प्रच्छा प्रवसर मिस गया। प्रपने क्षतान्त वक्र नामक चेनापतिको ब्लाके कच्चा कि सीताकी निर्वाण-भूमिके दर्भनोंके बहानेसे किसी बनमें कोड़कर चले आशी। कतान्त-वक्र सीताको रथमें बैठा कर भयद्वर वनमें से मया। वहाँ ली जाकर कोड़ दिया। उन बनों को देख सीताकी पासर्थ ष्ट्रचा। उसने पूछा — क्या यक्षी वह निर्वाण भूमि है ? कतान्त वक्र मनुष्य था। अस्या हृदय पिचल गया और प्रश्न पीकी धारा बङ्गान सगा। सीताके पुक्रने पर उसने सब ह्यान्स

सुनाया । सीता इस भाकस्मिक वज-पातसे मुर्कित हो गई। चिषक में सबेत हो मनस्विनी भीता (सबेत हो) कहने नगी भाई! बदन मत करी! प्रमन्तासे अपने खामीके पास जाभी। किन्त वर्षां जाकर हमारा एक संदेशा भवश्य कह टेना कि "जनापवादके भयसे सभा निरपराधिनीको जिस तरह कोड दिया इसी प्रकार मियादृष्टियोंके भयसे जैन धर्म महीं कोड देना। देखो कैसा गमीर और मर्मसर्भी उपटेश है। ऐसी घोर दशामें सीताकी सुबृह्द निस्तब्ध भीर चच्चलता से विलक्कल शुन्ध है। श्राज उसकी जीवन-लीला संमारक सब सुखोंसे दूर पर है तोशी वह अपने खाशाविक धेर्य,साइस और नैतिक बलका अवनुम्बन लेकर प्रापत्ति घटाको सरलता से सहन करती चनी जाती है। पाठक भीर पाठिकागण।। देखों संसारका कैसा दृश्य है ' जो जानकी जगदीय रामचन्द्र बन्नभद्र की प्रधान रानी है वही हिंस्त्रक जन्तु भींसे पूर्ण बनमें श्रमश्राय होकर भ्रमण करें !!! कर्मी की गति बड़ी विचित्र श्रीर दर्निवार है। यह कर्मी का ही माहात्म्य है जो महा-सती सीता की दन अमद्य भाषत्तियांको महन करना पडा। श्रम् । मीताको छोडकर क्षतान्तवक्रम जाकर रामचन्द्रमे सब हत्तान्त कह सुनाया भीर वह मंद्रेमा भी सुनाया जी सीनान पात समय कन्न दिया था। रामचन्द्र गुणवती सीताक गुणान्वाद कर भवनं दिन बिताने न्या। इधर एक दिन वज्जंच राजा द्रायीको पकड्नैक लिये उसी वनमें भाषा था।

मीताको देखकर दया चाई। उसे धर्मकी भगिनी मानकर भवने घर ले गया भीर सखसे रक्या ! सीता भवने दिनीकी सुखरी बिताने लगी। नौ महीना पूर्ण होनेपर मीताको लव त्रीर कुग नामक महा शूरवीर दो पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई। यह दोनों पुत्र बडे हुये। एक दिन दैवयोगसे सिहार्थ नामक कुलक वर्षा पाया। कुलकने पन बालकीकी ष्टोनहार टेखकर गास्त्र चीर ग्रस्त विद्या में चित निप्ण करदिया। एकबार इन दोनों कुमारीको देखने के लिये कल्ड-प्रिय नारट पाये और पाकर इन दोनी पुर्विको पाधीर्वाद दिया कि तुम दोनी भाई राम भीर लचमणकी तरह ममृहिशाली होयो। कीत्की बासकोंसे रहान गया भौर उन्होंने पूँक ही निया कि है महर्षि ! वेराम और लक्क्सण कौन हैं ? उनका सब वृत्तान्त इससे कड़ी। नारदने मीताके इरण्ये लेकर त्याग पर्यन्तका सब उत्तान्त कर सुनाया। पिताकी क्रतिपर टोनी बालकी को क्रोध पाया भीर भयोध्याको प्रयाण किया। घोडे ही दिनोंमें भवनी चतुरंगियी सेना के साथ महायोहा दोनों भाई पयोध्या में पहुँच गये और राम लक्षमण के पास दूत भेजा। दूतने जाकर कहा, "महाराज! घापकी ख्याति सुनकर लव भीर कुश दो राज-पुत युद्ध के लिये पाये हैं। यदि पापमें सामर्थ है तो इनके साथ यह कीजिये।" राम भीर लच्मणको बड़ा भाषये डुपा भीर कडा "बच्छा ऐसा

ही करें गे।" हभय पचके योदा गण संग्राम-भूमिन पवती च शोगये। मशातुमुल युद्ध शोने लगा। लव राम से भीर कुश नचमण से सड़ने सरी। सब भीर कुश दोनी भाई बड़े बीर थे। दोनोंने रचाक्रणमें पपना प्रजेय पराक्रम दिखाया। लवने रामके चात रथ तोड डाले। इधर कुण ने भी लक्षमण को प्रस्तव्यस्त कर दिया। अधके एक बाणमे सद्मण अचेत हो गये। तब उनका सार्थी सद्यमचको पयोध्या से जाने लगा। मार्गमें ही सक्तमस सबेत हुये भीर रणभूमि में कौट भाये। लच्मयन अंद होकर कुगर्क जपर चन्न प्रशार किया। चन्न तीन प्रदक्षिणा देकर क्रामकी भुजापर स्थिर को गया। उसे लेकर कुथन लक्ष्मणपर क्लाया पर उसी तरह प्रदक्षिणा देकर लक्ष्मणकी अजापर स्थिर ही गया। इसी प्रकार उस चक्रने सात बार गतागत किया पर किसीपर वह चला नहीं पर्यात् किसीका प्राचाघात उससे महीं पूर्णा। लक्ष्मण मधीर भीर निरुद्यमी हो गये। चक न वसनेसे बढ़ा चासर्य हुना। जगर विमानमें सीता, भाम-कत भीर नारद प्रस्ति इस वन्यसंचामको देख रहे थे। गारदने पाकर कहा, क्यों पधीर हो गये ? सकाव लिखत इए। इधर नारदने कहा यह दोनी सीतासत हैं। इस बातको सुनकर पशीस पानन्द इया। सच्छम् पपने बहे भाई राम-चन्द्रके पास गये भौर सब इक्तान्त कहा। दोनी भाई युद्रके चारकाको छोड्कर पपने वीर पुत्रीके सम्म स चारी। राम-

चन्द्र भीर सदमयको भारत देख दोनी भाई रशसे जतर पढे भौर शाय जोडकर विनय-नम्ब शो रामचन्द्रके चरणींमें पड गये। रामचन्द्रनं बड़े इर्घंसे पालिङ्गन किया। फिर दोनीं भाई योगे सच्चाणको नमस्तार किया भीर सच्चापने प्रनेक श्वभागीवीट दिये। पश्चात बढे उत्सव भीर समारोइके साथ दोनी पुत्रीका नगर-प्रवेश इपा भीर कुश यवराज पदपर भभिषित किया गया। एक दिन सब मन्त्रियोंने मिलकर रामचन्द्रसे कहा कि महाराज! जगत्मधिह महासती मीताको बुलाना चाहिये। रामचन्द्रने कहा उसके शीलमें इमें कुछ भी सन्देश नहीं, पर जीकापवादके भयसे मैंने उसे कोडा। कोई ऐसा उपाय करी जिससे जनापवाद क्ट जाय। सपीवादिन पुण्डरीकिको नगरीमें जाकर सीताको सब हत्तान्त सनाया चौर मीताने उनकी बातीको स्वीकार किया तथा प्रथम विमानमें चढकर मीता सम्या समय प्रयोध्यानगरीके महेन्द्र नामक एक उदानमें उदरी। प्रभात होतेही रामचन्द्र जी घीर लक्कावजीने जिनेन्द्र भगवानकी भक्तिभावसे पुजाकी चौर प्रवने पपने उचित खानो पर बैठ गरे। शोही टेरबाट सीता चाई चौर वह भी चपने उचित खानमें बैठ गई। गामचन्द्रने कहा मैंने तुन्हें केवल जनापवादके भवसे छोडा है। इसिन्धे कोई ऐसा उपाय करी जिससे सर्व साधारणको तान्हारी निर्देशिताकी प्रतीत है। भीर तुन्हारे प्रख्यक प्रातिव्रत पर सबका विष्तास हो। सीताने पतिके प्रस्तावकी सदर्ष खोकार किया चौर कहा कि चवम्बही मैं दिख्य परीचा हारा चारापित देश्वका उहार कहाँ भी। सीताकी चाज्रानुसार एक सुन्दर खानपर कुण्ड बनवाया गया चौर उसमें कालागृह, चगर, चन्दन भरवाया गया चौर उसमें चिन लगाई गई। उस समयका हम्य बहुत मनाहर चौर भीषण था। चसंख्य नरनारी इस चपूर्व हम्यको देखनके लिये उपस्थित थे। सभीके इदयमें नाना भांतिके विचार उत्पन्न होने लगे। यह सब हो रहा था कि इतनहीं में सीताने गमीरतर स्नरसे कहा:—

"मनसि वचिस काये जागरे खप्न मार्गे मम यदि पति भावो राघवादन्यपुंसः तदि इद्द शरीरं पावके मामक्षेदम् सुक्ततिवक्ततनीतिर्देव साची त्वसेव"

पर्धात् हे उपस्थित महानुभावो ! ध्यानसे सुनो। यदि मैंने रामचन्द्रको को इकर पन्य पुरुषको मन, बचन, कायसे स्वप्नमें भी कामना को हो, तो यह मेरा घरीर इस प्रचण्ड पम्निमें भक्त हो जाय। ऐसी प्रतिक्वा कर श्रीसीता एस ध्यकती हुई विहमें नि: यं क हो कूद पड़ी। इसी भवसरपर इन्द्रादिक देव किसी कार्यको जा रहे थे। मार्गमें जब इस घटना-स्थलपर पाये तो सीताको पति सती जानकर इन्द्रने श्रीसन्नतको प्रभावनाके लिये "मेघकेत्" नामा देवको वहां नियुक्त किया। भीर वह देव वहाँपर प्रागया। सीताने प्रवेश किया ही द्या

कि दर्शकगणीका हा! जानकी!! हा! सीते! ऐसा इहिकार सच गया भीर महान् कोलाइल होने लगा, रामचन्द्र मूर्कित होगये. लक्क्मण विक्कल होगये, भीर पुत्र भी अतिशय खिन्न को गये। तब देवने अपनी विक्रियारी उस चिन-कुंडको एक मनोहर तालाव बनाया। तालावकी सध्य भागमें सहस्र दलका एक कसन बनाया भीर कमलकी मध्य कर्णिकापर एक सिंडासन निर्माण कर उस पर सीताको बैठाया घोर सिंहामनके जपर मणिखचित मंडप वनाया। जपर में देवोंने प्रमन्न होकर घाकाश-मार्गसे पञ्चासर्यों की वर्षा की चीर साथ साथ उस मानाबका प्रवाह इतना बढ़ा कि दर्शकांगीकी प्रागरचा करना चरंभवसा मानूम होने लगा। धीरे धीरे पानी बढ़ा घीर बढ़कर दर्शकंकि गलीं तक का गया। धोर पाक्रन्टन कीर कार्त्त-निनाद से दियाएँ गूँज उठीं। दशों दियायें जनसं झावित को गई भार वाचि वादि का कर्णविधी स्वर सब जगह होने नगा। जब इस बातका सर्व-साधारणकी ज्ञान हो-गया कि यह सब साहात्म्य पतिव्रता सीताक निर्दीष गीस-ब्रुप्तका है, तब देवने अपनी मायाका मंत्रण किया। दर्शकी की गालि इह भीर मीता की निर्देशिताकी प्रतीति हुई। मणा रामचन्द्रके शुरु श्रीर निर्दीष गासन का परिचय मिला। रामचन्द्र भी अपनी प्रतीकी सत्यता और पातिवतपर

साथ क्षेत्राची तथा अवनी प्रस्नोको देवलत अतिशय से सम्मा-

नित देखकर फूबी घंग न समाये घीर चानन्द के ऐसे चावेश में चार्य कि सीताक पास चाकर चपन चपराधीकी समा मांगने सर्ग चौर कहा है प्रिये! मुक्के खमा करी केवल जमापवाद से ही मैंने तमको छोडा चब चाची एकवार फिर उसी प्रेमबत्धनसे बँधे चौर संसारके नाना सखोका चनभव कारें। भीगों से विरक्त सीतान उत्तर दिया आपको तो समा डी है पर जिन कमीने मुझे ऐसा नाच नचाया है उन कर्मी के लिये जमा कैमे हो सकती है । उन कभी के नाम करनेके लिए धीर तपसरण ही गरण है। संसारका समस्त सार देख निया मिवाय दःख कं सुख का लेश भी नहीं है। यह प्राणी ह्याही जंजानमें फंम समत्व-वृद्धि करता 🕈। वास्तवमं कोई कि मीका नहीं। 'यह हमारी माता है' 'यह हमारे भारं वहिन हैं.''यह हमारी संवत्ति है'इत्यादि चाडम्ब-रोंसे यह जीव जानावरण, दर्शनावरण इत्यादि चाठ कर्मीका निरम्तर वस्य करता रहता है। तथा इन्हीं कर्मीक उटध से नहक तिर्यञ्चादि गतियों में नान। प्रकारक कष्ट भीर यातना सहता है अवतक यह जीव मध्यग्दर्शन, सम्यगत्तान, सम्यक् चारित्र को प्राप्त नहीं कर लेगा नवनक वह संबारमें निरन्तर परिश्वमण करता रहेगा: किस्तु चष्ट कर्मीके नाग होनेसे खत्यत्र इए उम धरी स्ट्रिय सुखके सिशको भी नहीं पावेगा। प्राचीमाचका लच्च सुख की चीर है पर यह जीव उस वे प्राप्त करनेका मार्ग नहीं जानकर बान्धवादि के प्रेसवश्वन

में पहकर उस समासे सटा विलग की रहता है। मैं ऐसी मन्द्रभागिनी हाँ कि चनादि से नाना योनियोंने परिश्रमण किया पर धभी तक अपने ध्येयकी प्राप्ति नहीं हुई । उस परमपट पानका सरल उपाय जैनेन्द्री दीचा ही है। चारी गतियों में मन्त्र गति ही ऐसी गति है जिसमें उत्तम जमा, विवश्रधमें, चनित्वाशरकादि, हादश भावना, तथा चन्य पन्य धर्मक साधनोको कर सकता है। जिस जीवन सम्बयपर्धाय पाकर भी कठिन तपश्चरणाटि से पात्माका कल्याण नशी किया और क्यम विषयादिक की पुष्टिशोमें इस शरीर का चववीग किया उन नराधमीन राखक लिये मुक्ताकार की टाध किया। कणिक सुखर्क लिये नित्य सुखर्म पन्तराप किया इमलिये यह जायी में तुम्हारे साथ नहीं जाजंगी किस्त जैनेस्ट्रो दीचा धारण कर कर्म समूहका नाग्र करूँ भी। इतना कह कर सीतान अपनी क्या उत्पादनकर रामचन्द्रके सामने फेंक दिये चौर देवपरिवार के साथ श्री जिलेख भगवानकं समवगर्णमें जाकर जिनेन्द्र भगवानकी वन्दनाकर "पृष्वीमित" नामिका पर्जिकाक समीव दीका से सी पीर बासठ वर्ष तक कठिन तपस्या कर तितीस दिन का सन्धास धारण करके गरीर को छोड पचन नामा मोलहवें खर्गमें जा खयंप्रभा नामा देवी हुई।

पाठक श्रीर पाठिका गण ! श्रापन भक्ती भॉति जान लिया दोगा कि सीताकी सम्पूर्ण जीवनसीका दु:समय होती है।

सीता पर शनेक दर्घटनायें हुई हैं। उस सीता ने निःसहाय क्रोकर भी कैसी सरलतासे सबको सक्षम किया। सीता अवला स्त्री थी। असहाय नारी थी। पूर्वम उपार्जन किये इये कर्मासमुद्र के वशीभूत थी भतएव एक के जपर एक भापत्त चानी रही पर सीता सायपर साय रखकर बैठ नहीं गई। उसने प्रात्मावलस्वन लेकर प्रमाधारण पौरुष का परिचय दिया। इस देखतं हैं कि यदि इसपर थोड़ी भी भापत्ति भा जाती है तो इस सृतत्त्व हो जाते हैं। इसे कर्तव्य शकर्तव्य का जान नहीं रहता इसका कारण स्पष्ट है। इसमें वह स्वात्मावलस्वन नहीं है। इस सर्वदा दुमरीकी बाट जोड़ा करते हैं। इसार पाम वह मीताका मा शीन नहीं है। इस मत्य बोल्ना नहीं जानते। इस इन्द्रियोंक व्यम पद इसे हैं। इसे विषय-कनायसे इसनी प्रीसि है कि इसे धर्म के कार्य नहीं भाते। इसारी इन्टियाँ इतनी चछन श्रीर चयन हैं कि इस किसी सन्दर वस्तु भी देखते हैं तो इसे मोह अवख हो पाता है। भना बतनाइयं जब हमारी यह दशा है ती इस कैमे प्रासिक उद्गित कर मकर्त हैं ? इस मीतार्क माइस से कोमी दूर हैं। इसमें सीमाकीमी जिनेन्द्रियनाका लेख नहीं है। यहां कारण है कि हम बर्भा तक बयर वास्तविक सच्चक मार्गपर नहीं पह ने हैं प्रत्यत दिनों दिन गिरते चले जाने हैं।

इस मीताक चरित्रको प्रतिदित पहते हैं चीर यनेक

व्याख्यान भीर उपदेशोम सीता की गुण-गाथा सुनर्त हैं पर जब हम यह मोचर्त हैं कि हमारे कितने माई भीर कि-तनी भगनी सीतावे गुणोंका अनुसरण करती हैं तो हमें बिल्कुण निराध होना पहता है। यदि हमारे समाजमें दो चार हो विदुषी सीता समान उत्पन्न हो जायँ तो थोई समयमें ही हमारा जैनसमाज स्वतिकं शिखरपर पहुँच जाय।

इन्से पाणा भीर विकास है कि जिन्ह्यासन के सहस्व भीर उन्नति के प्रसिक्तावी पाठक भीर पाठिका इस पुच्छा का सीताके चरित्र को पढ़कर कुछ न कुछ लास भवस्य उठाउँगी।





''चेलना रानी थी श्रेणिक राजकी। विद्वती पतित्रतरता सिरताज थी।। उसने निज अध्यातमिक बलसे यथा। धर्ममय पातिकां किया सानिये कथा।।''

इनकी छ: बिहर्न थीं, जिनमें पोच पनसे बड़ी भीर एक कोटी थी। सबसे बड़ी बहिन राजकुमारी प्रियकारिणी (ब्रिंग्यका) कुरुक्षणपुर (विद्वार) के मिद्राये नामक राजासे विवाही थी। इसी श्रम संयोगसे, जैनधर्मकी सारे भूमण्डममें विजय वैजयम्मी उड़ानेवासे, चिन्स तीर्थं कर. बी वर्षमाम (सहावीर) खामीका जन्म इसा।

दन साती राजकुमारियोको बाल्यावस्थामें उत्तमीलम शिकाएँ दी गई थीं जिनसे दहीने चीर चीर विषयीक साथ साथ सत्त्वधर्म जैनधर्मका मर्म चक्की तरह समक किया था।

संयोगवध राजकुमारी चेलनाकी धादी राजग्रही (विहार) के राजा श्रेणिक के साथ हुई । महाराज श्रेणिक बीड धर्मान्यका थे। इसलिये दोनां खामी चौर भार्या चपने चपने धर्मकी प्रगंसा कर एक दूसरेकी अपने धर्ममें लानेकी प्रेम-पूर्वक इच्छा करने लगे। जपर लिखा ना चुका है कि राज-कुमारो चेलनाका वाल्यकालमें लधर्म जैनधर्मकी श्रिका छत्तम शितसे दो गई थी जिससे इस विषयमें छनका ज्ञान दिनों दिन बढ़ता गया चौर विवाहसक्तम्ब समय वे जैनधर्मकी विशेष पिकता हो गई थीं। इसी कारच राजा श्रेणिक के कई छपदेश व प्रयक्ष निष्मल हुए चौर चनामें राजाको ही इस धर्मयुहमें पराजित होकर जैनधर्मकी खुशीके साथ धारच करना पड़ा, जिसका वर्षन इस प्रकार है कि:—

एक समय राजा भीर रानी सुख-भासनपर बैठे परसार प्रेमालाप कर रहे थे कि वौद-धर्मावसम्बी राजगुर जिनवा नाम "कठरामि" या पधारे। महात्वा जठरामिको भन्नी

भाँति चान था कि महारानी जैनधर्मावलस्को हैं। इसीलिये भवसर पाकर कटास-पूर्ण गब्दोंमें कहा कि — "चयणक (जैनग्र) सरकार चपणक (भिच्चक) होते हैं। महारामी को इस ग्रमत्य वाकासे बहुत सन्ताप हुमा। होना ही चाहिये, क्योंकि एक सत्यधर्मकी भन्यायिनी भपने धर्मकी इस प्रकार निन्दा नहीं सह सकतीं। परन्तु उस समय महा-रानीने गान्ति धारण कर विशेष कुछ न कह राजगुरुसे पृष्ठा 'भाषाराज! पापने कैसे जाना ?' उत्तर मिला कि 'मर्भ विचा भगवानने ऐसी ही विद्या दी है।" महारामीने समभ निया कि सहाराज गणाष्ट्रक भारत रहे हैं। इनकी परीचा करनी चाडिये ताकि मन्देड की निवृक्ति डोर्!। उन्होंने प्रगट रूपने कहा कि सहाराज ! चगर चाप ऐसी बृद्धि रखते हैं तो हमारे महनमें भाजनके लिये कल पाएका निमन्त्रक है। महाराजन सहये स्वीकार कर निया। यथासमय पपन कुछ चुने इए शिष्यांकी लेकर नियम स्थानपर पा यहुँ चे भीर जत उतार बैठकखानेमें बैठे। महारानी चेलना की पाचानुसार एक टामोने कुछ जुते उठाकर खाद्य पदार्थी में इस तरह मिलाये कि जिममे बिल्कुल मालुम न पहे। पयात् भोजन कराया गया। मद्वाराजने चप्ने शिष्यों समित खूब मर्च्ही तरस्र भोजन किया। जब जाने नगं तब देखा कि कुछ जुतीका पता नहीं। सइसके पन्दरसे जहां सैकड़ों संगीनटारीका दिन रात पचरा रक्ता है कीन जूते से जा सकता है। इसिनिये महारानीसे पृका गया। महारानी में नस्त्रता पूर्वक उत्तर दिया कि भाप तो वृद्धि रखते हुए भी इस तरहके प्रश्न करते हैं। धास्त्रिर सब हाल विदित हो गया भीर धवमानित होकर राजगुरु धवने स्थानको प्रस्थानित हुए। उनको धवनी गयाष्ट्रकोंका पूरा प्रायस्ति मिला। महाराज श्रेणिकको धवनी प्रसिद्ध विद्वान् राजगुरुको इस तरह कार्यविमुद्रता देख बोद्धभैसे कुछ धश्रद्धा होगई। महारानीन यह देख धवने कार्यको सफनताक चिन्ह समक्त भीर भी उक्तम उपायों काम सीना धारक किया।

एक ममगका वर्णन है जबिक घोडधमीवनस्को साधुमण एक भोषहीम बैठे परमेखरको घोर ध्यान नगाये थे। राजा राना महित वहाँसे निकले। जिन धमको परम भक्त, ग्रंब- हृद्य महागनी वेलना का इन पहुँचे हुए माधुमीको भी परीक्ता करनेका विचार हुया! उन्होंने भपने धनुवरों हारा छम भोषहीम श्रान नगवा है। धम्मको प्रव्यक्ति देख साधुमीन ध्यान वर्णे राम कोड़कर भागना धारध किया। धन्नम कुछ ही मिग्टोंके घन्टर मारी भोषडी खाली होगई। राजा धोर रानी टोना इस मनोहर दृश्यको किपे हुए देख रहे थे। उभी ममय वह धोडी भी धम्न गान्त को गई। बड़े विद्यान धीर तपस्की महात्माधीको दग्नाभिक्त इम तरह दूसरे वक्त भी व्यक्ति हो। गई। इस तरह धपने धर्मकी हमी खहाते देख महाराजा महारानीसे धवन्न कुछ हुए तीभी

सहारानी पपने कार्यमें तत्पर रहीं। क्यों कि उनकी पपने स्वामीकी पासाको यदेष्ट प्रान्ति टेर्नकी इस्का थी।

महाराजा ये णिक एक दिन शामके समय शिकार खेल-कर पा रहे थे। उन्होंने मार्गमें एक जैन मुनिको जोकि नम्ममुद्रा धारण किये शान्तिके खरूप थे ध्यानमें लक्तीन प्रथम खंड़ हुए देखा। राजाने धर्महे वसे मुनिपर पपने शिकारी कुत्ते छोड़े परन्तु मुनिके प्रभावसे वे कुत्ते हे बहुदि छोड़ कर मुनिके पास जाकर बैठ गये। महाराजाको यह धौर भी दुरा लगा। इसक्तिये उन्होंने ख्या वहीं पहें हुए एक स्थाक मर्पको उठाकर मुनिके गर्नमं डाल महनका राखा जिया।

चार दिन व्यतीत चीनेपर राखिक ममय जबिक मणा-राजा भीर महारानी सुख-गय्या पर बैठे परस्पर वाक्तीलाप कर रहे थे, महाराजने मुनिक साथ किये इए कार्यका इक्तान्त भी सुना दिया। महारानीको दमसे बहुत कष्ट इचा। भपनी पाणप्यारी भार्याको मन्तापित देखकर महाराज बोसी कि क्या भवतक वह स्टतक सर्प मुनिक गलीम पड़ा रहा होगा? जो इतना सन्ताप करती हो। महारानीने सरस बामीस उक्तर दिया कि जबतक कोई भन्य पुरुष उस सर्पको सस्मा नहीं करेगा तबतक वे मुनि भपने उपसर्गको आनकर वहीं भवत रहेंगे।

रामाको यह जानकर पावर्ष पुषा चौर उठी समय बोह

से सेवको हारा दीपकोका प्रकाश कराकर रानी महित मनि के स्थानको गये। वडाँ जाकर देखा तो सुनि महाराज शान्ति सुद्रा धारण किये उसी धासन से खंडे इए हैं जैसे कि चार दिन पहले थे। गलेमें उसी तरह मर्प पढ़ा हुआ है जैसा कि डाला गया था। राजाके इदयमें एकदम भक्तिका समुद्र सहरा उठा। उन्होंने सुनिकी बहुत प्रकारसे सुति की। राप्ति होनेसे सनि सहाराज कुछ बोल न सके। यतः राजा चीर रानी टोनॉर्न श्रेष राजि उन्होंक चरणारविन्होंके समीव व्यमीत की। प्रात:काल होते ही राजा घीर रामीन सनि महाराजकी वन्दना की। महाराजन टोनीका समान रूपसे "धर्मवृष्टि" पार्गीवीट दिया। राजांक भक्तिकृषी समुद्रका तो सब तिकाना हो क्या हो मकता है ? उन्होंने समभ निया कि यही मत्यगुरु हैं, जिनके खुक्क हृदयमें प्रपराधी और निर-पराधी बराबर हैं। अमीस भक्तिक कारण सहाराजन सुनि के चरणोंसे पर्वधर्मानसार चपने सिरको चर्पण करनेकी इच्छा को। मनि पलार्यामी य दसलिये चन्होंने दनका विचार सम्भानिया तथा यह कार्य पाप कर्म बतलाकर धर्मीपटेश दिया। राजाको बहुत प्राव्ययं हुया। प्रव उनकी श्रहा जैनधर्म में पूर्ण क्वसे होगयी। रानीन धर्म सार परियमको मफन सम्भा तथा दम्पति यथार्थ पानस्क माध काम व्यतीम करने लगे।

रानी चेलनानं क्रमगः कुणिक, वारिवेकः प्रस्त, विक्रमा

जितमत्रा गजकुमार भीर मेधकुमार ये मात प्रतरत उत्पक्त पुच। जोकि विद्याः वस भीर कृपमंदम्हको भी विजय करति थे।

एक बनमानी (जङ्गल मुख्यमिक चणुसर) ने राजसभामें षाकर राजा येणिकसे निवेदन किया कि सहाराज! चापके राज्यकं चन्तर्गत विपनाचन (विश्याचन) पर्छ्यत पर अगदगर २४ वें तीर्धंकर वर्डमान खामी मंगारी जीवंकि उप-कारार्थ उपटेश टेनेको प्रधारे हैं। राजान इस समाचारको पाकर बहुत चानन्द मनाया तथा महारानी चेलना चीर मर्व क्ट्रियों महित खामीजीक दर्शनीक निमिश्त गरी। विप्रसाचम पर्वत पर पहुँच कर खामी जीके उपटेश देनेकी मभा, जिसे समवगरण कदते हैं, की प्राक्तिक रचना टेस-कर चिकित हो गये। कंन्द्रस्थल्में खाओं जी प्रमुपमेय सिंहा-मन पर विराजमान है। जिनके चारी तरफ गोलाकार बारह मुभास्यस् वर्न इए हैं,जिनमें क्रमसे मृति,कल्पवामिनी देवियां. खियां, ज्योतिको देवियां, व्यंतर देवियां, भवन-वासिनी देविया, भवनवामी देव. व्यांतर देव, ज्यातियो देव. कल्पवामी देव, मन्थ, विद्याधर भूमि गोचरी भीर तिर्यस विराजमान हैं। सब होय भाव छोड धर्मश्रवण कर रहे हैं। यदापि से मभाये खामीजीको चारो तरफ स्थित हैं: तोभी चर्माम प्रभावकं कारण सब स्रोतागणको यही चात होता है कि सञ्चाराज यपने सखसण्डमकी दीमि इसी तरक फैजाकर

उपदेश दे रई हैं। महाराजा और महारानीने खामीजीके दर्शन व पूजन करके भवने जन्मको जतार्थ समस्ता।

नियमानुसार महारानी चेनना तीसरे चौर महाराजा चे चिन स्थारहवें सभास्थलमें विराजमान हुए। धर्म त्रवण कर तथा कई ग्रंकाचीकी निवृक्ति कर महाराजाने चपने परिणामीकी (चन्च निर्मूल मतीकी विन्कृत की हकर) खूब खन्क किया, जिससे उनकी प्रवल पुरुष कर्मी का बन्ध हुचा। इन्हीं प्रवल पुरुष कर्मी का कर्म महीपम नामक प्रथम तीर्थ कर हो कर जगतक पुरुष होंगे।

उक्क सभामें की सम्मे दीक्तरवरजीकी अनुपम मिलमा सुनी जहांसे कि बीम तीयंकर संसार के भावागमनकी छोड़ परम सुख रूप मोक्तको गये हैं। इसीलिये महाराजा भीर महाराजी ने उप पुष्य भूमिक दर्भन करनेकी इच्छा की भीर ग्रुम मुहर्ममें प्रस्थान किया। परन्तु जपर कह चुके हैं कि महाराजा के पिकने एक जैन मुनिक गलेमें भपमानक साथ मृतक सर्प डाला था। इसी पाप कमके उदयसे माग में उन्हें कई बड़े विद्योका सामना करना पड़ा। तोभी वे उम पविक्र तीर्थ के दर्भन न कर मके भीर वापिस भपनी राजधानी को जीट भाये। महारानी चेननान निर्विद्यतासे तीर्थ की वन्दना की भीर भपने स्थानको भाई।

चर्या चयस्थाको पूर्णहोती देख युवराज कुलिकको राज्यभार देकर सङ्गाराजन एकान्तमें रहकर ईक्करोपासना कारनी ग्ररू की। परन्तु राज्यभारसे मन्त क्षेत्रिक कारण कुणिककी प्रवृत्ति विगड़ गई। इसलिये राजा त्रेणिककी पन्त समय सुख नहीं कुत्रा।

योड़े की दिनोंके बाद रामी चे लना भी दीचा धारच कर समाधि मरच करके स्वर्ण सिधारी।

देखिये! राजकुमारी चेलन। ने किस की यक्त चपन स्वामीको सत्यधर्ममें श्रदावान कराया तथा जनत्का पृज्य बनाया जोकि एक भादर्भनीय है।



भीमती में नासुन्दरी।

''सार्ष्यां समीचीना सदा जिन भाकिसे परि भाविता । कर चक्रवर हढ़ नेमसे पति प्रीतिसे परि ष्ठाविता ॥ जिसने अठौकिक शाकिसे पाति कुष्टको वारण किया । वह धन्य रमणी रहा है श्रीपाठ नृपवरकी प्रिया ॥''

हारानी मेनासुन्दरी रसी भारतवर्षकी मिन्नियालाया है विख्वविदित उद्धेन नगरीके राजा प्रश्नुवास की कांनिष्ठा प्रची थीं। इनको ज्येष्ठा भगिनी की कांनिष्ठा प्रची थीं। इनको ज्येष्ठा भगिनी कि नाम स्रसन्दरी था। दोनी राजकुमा-रियोंको यिद्याका प्रवस्थ उनकी रच्छानुसार क्रम्मः ग्रेष भौर जैन प्रोहितको दिया गया। यिद्या समाप्त हो सुकने पर स्कोने यौवनावस्थामें पदार्षण किया। राजाको इनके विवाह की चिन्ना हुई भौर उन्होंने प्रथम ज्येष्ठा प्रती स्रसन्दरीको सुनाकर प्रम्न किया कि तुन्हारी भवस्था प्रव विवाह-योग्म

हो गई है : इसलिये तुम्हारी इच्छा किसके साथ विवाह सम्बन्ध करने की है भी कही। तटनमार कार्य किया जावे। कुमारीके उत्तरानुसार उसकी गाडी कीर्गावीपरके राजकुमार करिवाक्रमसे करनी निक्रम कर दी गई। इसी तरक राजाने दूसरी पुत्रो मैनासन्दरी को बुलाकर प्रश्न किया। परमु राज-कुमारी मैनासुन्दरी बहुत ही लक्कावती भीर गुणवती कन्या थी। उसे यह सजारहित प्रश्न कुल वधुषीसे किया जाना चनुचित माल्म हुपा। इसनिये स्जावन्त होकर उसने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया। राजाके धन्रोधसे समने विनय को कि उच कुलकी पतिष्ठित कुलांगनाएँ भवनी पिता माताशांखे कभी अपने लिये वरकी रच्छा प्रगट नहीं करतीं। विता-माता उनका जिसके साथ मुख्य कर हेते वही उनका मर्वस्व हो जाता है भीर उमीसे वे मन्तुष्ट रहतो है। यापका मुक्तसे यह प्रमु करना चन्तित है। राजा सुन्दरीके इस खाधीनता और महत्वपूर्ण उत्तर से तथा और भी कई एसरोंसे, जिनमें कि उसने सबसे खेह राजाकी न बतनाकर पवने भाग्यको बतनाया द्या सुन्दरीसे पसन्तुष्ट ही गया चौर क्रोधके चावेशमें चाकर उसके भाग्य-गर्वकी नष्ट करनेके लिये उचितानचितका कुछ विचार न कर प्रयक्ष धोषने लगा। राजाकी वह कुवासना इस तरह पूर्व हुई :-

एक दिन राजा प्रश्नुपास समैन्य बनकीड़ा करता हुचा उस भर्यकर ब्रह्मसमें जा पहुँचा जहाँ चन्मानुरका राजा

मीवाल भवने पूर्व जन कर्मी के उदयसे कई भनुषरी संदित कुष्टरोगसे पत्वन्त पीड़ित हो अपने प्रशेरकी दर्ग असे प्रजा जनीको कप्ट न हो इसलिये वाचा वीरटमनको राज्यभार सींप राजधानी को ह जक्रल जद्रल भटकना इपा वहाँ उहरा था। उसके शरीरकी दर्गस चारों भीर फैल रही थी। पश्यान राजा श्रीपानके भनुचरींसे यह सब हान जानकर यवनी किनष्ठ पत्नी मैना सन्दरीके भाग्य-कवी गर्वका बदला चुकार्न का पच्छा भवसर भाषा जान मीम्र श्रीपालके पास गया चीर चाटर मत्कारक पश्चात् क्षतिम प्रसद्धता प्रगट कर अपनी सक्तमारी पत्नी मैनासन्दरी देनेका महत्त्वकर उसे टीका कर दिया। राजा श्रीपाल इसका भेट न समभ वहत प्रसद ष्ट्रया । यहाँ राज। पष्ट्रपान्तरी राजप्रामाटोंमें चानर सन्दरीकी धमके भाग्यकी प्रवत्ताका पराजय कृप यह समाचार सुनाया। परम्त सम्दरी ने यह सहवं मच्चर किया चौर शीघ चयने खामोसे मिन्नर्गर्क लिये उत्करित हरे। उसकी किसी तरह का भी सङ्ख्य विकल्प नहीं इपा! राजा पहणाल कुमारीकी यह कृति देख भीर भी रुष्ट हुआ। राजमिष्टवी, प्रधान मन्त्री, प्रधान सेनापति, राजपरोस्ति पादिके सम्मान्यर भी राजाने कक ध्यान न टे कोध व पहलारसे उसाल होकर शीछ ही श्रम तिथिपर कुमारीका विवास उस कुष्ट रोगसे कुरूप इए राजा श्रीपानसे कर दिया। कुमारीने भपने पिताकी भाजा को ग्रिरोधार्य कर इस भयोग्य इत्स्में किसी तरहकी वाधा

नहीं दो भीर राजा श्रीपालको भवना खामी बनाया। उज्जैन के प्रजाजन इस सम्बन्ध पर बहुत भसन्तृष्ट हुए तथा उन्होंने राजाको बहुत धिक्कारा। धन्तमें जब सुकुमारी सरला राज-कुमारी मैनासन्दरी रोगसे कुरूप पतिक साथ भवने महलीसे विदा होकर पतिक खानको जाने लगी तब तो राजा पहुपाल के भानकह खुल गये। उन्होंने भवने किये पर बहुत पहन्तावा किया भीर सुन्दरीसे स्थान देनेकी प्रार्थना की। कुमारीने भवने भाग्यका ही फल समझ कर राजाको सन्तृष्ट किया भीर भाग्यका ही फल समझ कर राजाको सन्तृष्ट किया भीर भाग्यके पतिक साथ गई।

सुन्दरी खामीन शिविरमें भाकर भपनिको क्रत क्रत्य ममभने सभी। उसी दिनसे उन्होंने खामीने रोगकी निष्ठ सिन्ने
लिये उपाय सोचना प्रारम्भ कर दिया तथा उनकी हर
तरह से सेवा सुन्यूषा करने लगी। यद्यपि राजा श्रीपालने
कुमारी मैना सुन्दरीको उसने रूप, योवन, सुनुमारता पर
ध्यान देकर तथा उस राजपासादों से सबसे रहनेवाली कोमलाङ्गीको इस शिविरमें रहनेको तकलीफींपर ध्यान देकर उसे
बहुत ममभाया कि जबतक हमारा यह रोग दूर न होजावे
तवतक तुम भपने पिता माताने पाम सुखसे रही। परमु
सती साध्वी सुन्दरीने मह सुखाँसे श्रेष्ठ पति सेवा ही समभ कर खामीने चरणोंकी सेवामें ही रहना श्री यस्कर समभा।

एक दिन राजकुमारी मैनासुन्दरी चळाँन में जिनसन्दिरी के दर्भनोको गईं। दर्भनीके पद्मात् भपने पूज्य गुरूजीके

भी दर्शन किये और समय पाकर अपने खामीके रोगका मम्पूर्ण हत्तामा सुनाकर उसकी निहत्तिका कारण पूछा। गुरुजी वर्ड प्रतिभाशाली पण्डित थे रमलिये उन्होंने कुमारी को सन्तोषित करके उसके स्वामीके शीघ्र पारोग्य होनेका शास ज्योतिष्र हे देखका बतलाया तथा कुमारीकी चष्टा-क्टिक व्रत टेकर उसके पासनेकी विधि बताकर विटा किया। अष्टान्डिक व्रतका समय चानेवर क्रमारीन व्रतान-सार कार्य करना चारका किया। प्रतिदिन वह जिन सन्दिसी जाकर परवम परमात्मा बीतराग भगवानका पूजन स्तवन धामिषेकका गन्धीटक लेकर अपने प्रतिके शरीरमें लेपन करने तथा घन्य रोगिथींक जपर भी खिडकने लगी। रोग धीरै धीरे बाराम होता गया चौर श्रष्टान्डिक पर्वक बन्तिम टिन बाजा श्रीपालका गरीर महा भयानक कुष्ट रोगसे सम्मर्ण निवृत्त होकर बहुत ही सुन्दर हो गया। राजकमारीक भाग्य की जय इई भीर राजा पहणलको नीचा टेखना पहा। राजा श्रीपाल घीर क्रमारी भेनासुन्दरी उज्जेनमें रहकर श्रानन्दसे समय व्यतीत करने लगे।

एक दिन राजिक समय जबिक चारों और ग्रब्द लेश माज भी नहीं सनाई देता था यकायक राजा श्रीपाल की नींद खुल गई और उन्हें अपनी जन्म-भूमि राज्य-कुल भादिकी चिम्ताने भा घेरा। उन्होंने विचारा कि भव मेरा यक्षां रहना स्थोग्य है। सुक्षे भपने राज्य श्रीर वंशकी रहा करने। चाहिये। परन्तु बिना ऐखर्य और वैभवते राजधानीमें जाना भी योग्य नहीं है। इसलिये मान प्रिष्ठा प्राप्त करने के लिये प्रथम विदेशको जाना चाहिये। पद्मात् धन-धान्य आदिसे परिपूर्ण होकर खदेश जावें गे। ऐसा विचार निषय कर छहोंने घपना भार्याको भी सुनाया। मैनासुन्दरी पहिले तो खामीके विक्षोहके दुःखींका घनुभव कर बहुत दुःखित हुई। परन्तु फिर सोच-समभक्तर उन्होंने खामीको विदेश जानेकी घनुमति दी भीर प्रपनेका भी माथ ने चलनेका पनुरोध किया परन्तु विदेशमें होनंवाले दुःखींका धनुभव कर राजा श्रीपाल मैना सुन्दरीको साथ न लेजाकर सिर्फ धकंल विदेश-यावाको निकले भीर बारह सालकं भीतर भीतर धानेका वादा कर गये।

स्वामीके विदेशगमन पश्चात् मैना सुन्दरी उनके वियोगसे सित दु:स्वित रहती थी। जब बारह माल पूर्ण होनेको साथे तब वह स्वामीके पानके दिन घराटे घराटे भीर पल पल निनने लगीं। बारह माल पूर्ण होगये परन्तु स्वामीके दर्भन नहीं हुए। महापितव्रता मती मैना सुन्दरीको प्राणान्त कष्ट हुमा। परन्तु वीतराग भगवान्का ध्यानकर उन्होंने निश्चय किया कि सगर साजभी स्वामोके चरणारिवन्दीके दर्भन नहीं हुए तो फिर इस संसारक मर्व भज्मटोंको होड़ जिन दीचा धारणकर सात्मकर सात्मकर्त्याण करूँगी। परव्रह्मपरमात्माने उस सतीको सति ध्वन सुनकर भोष्ठही उसके पतिको दीचा

दी। उसी दिन महाराज श्रीपाल ससीम साइस भीर विप्रल विभूति तथा थाठ इजार रामियों के साथ उज्जयनी नगरीमें थाये। मैनासुन्दरीके भानन्द्रसागरका किनारा नहीं दीखता है। खामीके दर्धनकर उसने भपने नेच द्या किये। कुछ दिन उज्जयनीमें रहनेके पीछे महाराज श्रीपालने दस वस सहित भपनी प्राचीन राजधानी चन्यापुरको कुच किया तथा भपने राज्यको सन्हालकर फिर सुवर्ष भीर हीरीसे दीप्त सिंहासनपर विराजे। मैना सुन्दरीने भपने रूप गुण भादिसे राजमहिषीका भासन भहण किया भीर फिर दोनी राजा राजी सुखसे समय जिताने सती।

एक दिन मन्या ममय जब कि महाराज श्रीपास पपने महलकी कतपर बैठे हुए प्रकृतिकी श्रोभा देख रहे थे कि उनको एकाएक मेघणल कि कि भिन्न होते हुए दिखाई दिया। उनको ज्ञान हुमा कि इसी प्रकार यह संभार भी चणभंगुर है। यह सब एक न एक दिन नष्ट होनेवाला है—मेरा शरीर भी इसी प्रकार एक दिन नष्ट होनेवाला है—मेरा शरीर भी इसी प्रकार एक दिन नष्ट हो जायगा। परन्तु प्रभीतक मैंने अपनी भायका सब ममय सांसारिक मुख्यमेही व्यतीत किया है। परमार्थके सुख्ये लिये मैंने कोई उद्योग नहीं किया। इसलिये मुक्ते प्रवास हिये। उनको इस मंसारसे वैराम्य उत्पन्न हुमा चौर श्रीम जिन दीचा धारणकर वे पपने कर्म श्रुपोंको परास्त करने क्री। सामीको जिन दीचा लेते देख रानी मैना सुन्दरीने

भी जिन दीचा सेकर अपना परमार्थ मुधारनेमें मन सगाया। थोडेही दिनोंमें राजा श्रीपाल भपने कर्म शत्भीको जीत केवल ज्ञान माप्त कर चनन्त चिवनाशी परस सिडपटके अधिकारी इए जहाँ सदा असीम धानन्द रहता है। मैना सन्दरी भी सबसे उत्कृष्ट १६ वें खर्गकी प्रधिकारिकी पूर्व । पर्धात सब वेद यश्री करते हैं कि नारियोंके सिधे पाराध्य देव पति ही है तथा पति हो को वे ब्रह्मा, विशा श्रीर महेग जानती है, इमार यहाँ भी पाचार्रीन प्रतिभक्ति विषयम कुछ कहा है। वह यह है कि - "प्रतिप्राणा हि योषित: ।" पर्यात नारियोंक प्राय पति ही हैं। यही कारच है कि मैना जैनी मृन्दरीने कोमों तक दर्गन्ध फैलानवाली कुछ रोगसे पी-डित पति श्रीपालकी प्राणीकी तरहरचा की। श्रीक भीर खेटका विषय है कि भाज यह बातें केवल रतिशामको कथा मात्र रह गई है। संसारमें पति चीर पत्नी विद्यमान है पर प्रति प्रक्रीका वह भाव नहीं है-वह सेस सिमाप नहीं है। चगर है तो पारसारिक कन्न भीर हैर्था। इस दुर्घट समयमें समाजको रहा प्रमामान्त्री करे।

ः पाठक भीर पाठिकागण ! इस चरिषमें भाषने भक्की तरह देख निया होगा कि स्वार्थके वस होकर माता भीर पिता भी भपनी प्रिय सन्तानके साथ कितना भनिष्ट भीर कैसे कैसे निन्ध दुष्कर्म कर सकते हैं। जब स्वयं जनककी यह दशा है तो भन्य जन भन्यजनीकी सन्तानके प्रति जो

भन्याय भीर श्रत्थाचार करे उसकी कोई नगना नहीं की जा सकती है। यह उदाहरण भाजकलका नहीं किन्तु शाजसे कई इज़ार वर्ष पहलेका है। इससे इस बातका भी पता लगता है कि भाजही नहीं पहले ज़मानेमें भी इस पृथ्वीमण्डलपर ऐसे ऐसे नराधमींने जन्म जेकर मानव समा-जके इतिहासकी कलाइत किया है। फ़र्क केवल इतनाही है कि पहले ज़मानेमें ऐसे नर विशाचींका दर्गन कहीं कहीं पर भीर कभी कभी होता था भीर शाजकल सब जगह भीर बहलतामें इन दुष्टांकादौरदोरा है। भगवान ऐसे विताशीं से बचारी!

हमारे पाठकोंने इस चरित्रमें मैना मुन्दरीकी पतिभक्ति परायणता, पिताकी चाजाकारिता चौर खाभाविक सहन-चीलताका एक ही उदाहरण देखा होगा जो चन्यत्र कम पाया जाता है। हमारे चन्यमतावलस्की भाइयोंने पतिभक्तिके विषयमें ऐसा कहा है कि:—"नारिनको पति देव वेद सब यही बखाने। ब्रह्मा विषयु महीय नारि पति होको जाने ॥"



कुष्टा स्टार स

''नीरांगना श्री द्रौपदी के सुयग नलसे लहलहा । यह होरहा है आजतक भारत विटप कुसामित अहा ! अद्भुत अलौकिक धर्म उनमें शौर्य था त्यों आत्मबल । जो घोर दुखमें भी किये विश्वंस अरिदल आती प्रबल ॥''

जब श्रीमती द्रीपदीजी वास्थावस्थाको पूर्वकरती हुई यौजनावस्थामें पैर धरने लगीं तब राजा हुपदको दनके विवा-इकी जिल्ला हुई। राजा विशेष उद्योग कर भी न पाया जा कि खलाचल पहाड़पर रहनेवाले सुरोन्द्र नामक एक विद्या-धरने भाकर एक धनुष भीर एक कन्या राजा द्वुपदको सींपी भीर कहा कि—"महाराज मैंन भविष्यद्वकासे पृक्षा था कि मेरी कन्याका वर कीन होगा। उन्होंने कहा कि जो राजकन्या द्रीपदीका वर होगा, जो इस गाण्डीव धनुषको चढ़ावेगा वही ध्यक्ति तेरी सुताका भी खामी होगा।" ऐसा कह और गा-ग्रहीव धनुष तथा भपनो कन्याको वहां रख विद्याधर भपने निवास स्थानको रवाना हो गया। इधर राजा द्वुपदनि भी यह बातपसन्द की। गाण्डीव धनुष बड़ा भारो भीर बड़ तेजवाला धनुष था। उसको उठा लेना सहज न था। बड़े पराकमी ग्रूर-वीर भाग्यशालीका कार्य था। इसलिये परीका करके ऐसे हो वरको द्रोपदी देनी उचित समभ राजा बहुत प्रसन्न हुमा। श्रमिमितपर खयम्बरकी रचना की गई और देश देशके राजकुमारोंको निमन्त्रण सेजा गया।

सीद्रापदीजीकी प्रशंसा सर्वत्र इतनी फैल रही थी कि निम्माण पातिही चारी तरफ़से बड़े बड़े राजपुत्र दीड़े चले आये। कोई उच्च राजपुत्र ऐसा न था जो इस खयस्वरमें न भाषा हो। कीरव दुर्योधनादि सी भाई भी बड़े ठाट बाटसे भाकर खयस्वर-मण्डपमें बैठेः। इन्होंके चचेरे भाई राजा पाण्डुके पुत्र महाबनी युधिष्ठिर, भीम, भर्जुन, नकुल, महदेव ये पाँचो पाण्डव भी किपकर ब्राह्मणके मेवमे भाकर खयस्वर-मण्डपमें एक तरफ बैठ गये।

सम्पूर्ण सभा जमनेपर एक एक नृपति धनुषको चढ़ानेके लिये छठे परन्तु चढ़ाना दूर रहा उसके तेजको न सह सक-नेके कारण धनुषके पास भी न जा सके। राजकन्या द्रीपदी भी भपनी प्यारी सखी मुलोचनाके साथ घूमती हुई इन नृपीका कौतुक देख रही थी। उक्त सखी क्रमशः एक एक राजपुत्रको मय नाम पत्रके बताती जाती थी भीर द्रीपदीजी ममही मन सबकी जाँच करती जाती थीं।

जब गाच्छीव धनुष किसी रानकुमारसे नहीं उठा ती राजा दुपद कुछ चिन्तातुर हो गये कि रतनेमें ही बाद्यण वेषधारी युधिष्ठिर महाराजने भपने भाई भजुनको भाजा दी कि "तुम ग्रस्त्रविद्यामें भिरतीय हो? उठा भीर धनुष चढ़ाकर सर्वोत्तम गुणक्पको राग्नि द्रोपदीको वरो।" वस स्वाताको भाजानुसार भजुन महाराजने भट धनुषके निकट जाकर धनुषको चढ़ा निया भीर ऐसा वेध किया मानो नियत मोतीपर निभाना मार दिया। रनके धनुषको ऐसी घोर भावाज हुई जो सैकड़ों इज़ारों तोपोंसे भी तेज थी। सब सभास्य राजकुमारों के कान भन्ना गये मानो बहरे हो गये। वस भीष्रही श्रीमती द्रोपदीजीन वरमाला (पृष्पकी माना) भर्जनके गलेमें भित प्रसब चित्तसे डास दी। कोई कीई ऐसा कहते हैं कि ट्रीपदीजीके पाँची पाण्डव पति ध्र यह बात सर्वथा गृसत भीर जैन भासनसे विक्ष है। ये तो परम सर्ती थीं। विवाह एककं ही साथ हो सकता है। इनके

एक पर्जुनही पति थे। द्रीपटीजी बड़ी चतुर थीं। उन्होंने
प्रथमही सर्व राजकुमारीसे विशेष पर्जुनकोही समस्स लिया
था। पौरीकी समक दमककी परवाह न कर गुणीकोही
यहण किया था।

इस सम्बन्धको देख दुर्योधनादि बड़े बड़े राज-कुमार बहुत बिगड़े, बहुत युद्धादि करने लगे; परन्तु सफलीभूत रख मात्र भी न हुर्ये। पर्जु न तथा द्रोपदी के भाई छष्टदमनने सबको परास्त कर भगाया। इस युद्धादिसे द्रोपदीजी भी नहीं घबराई। उन्होंने भी साथ साथ पति तथा भाईको सहायता दी(पूर्वकालमें राजकन्या भी गस्त-विद्याका प्रभ्यास रखती थीं) पन्तमें नियत मितीपर द्रोपदीजीको पाणिग्रहण विधि सानन्द्र संपूर्ण हो गई घोर ये दम्मति गजपुरमें घाकर पानन्द्रसे रहने लगें, गजपुरका पाधा राज्य इन पाण्डवींके पाधीन था पाधा कौरवींके।

द्रोपदी चर्जुनके चपूर्व चानन्द से कौरव सदा जसते रहते च चौर नित्य नये उपद्रव करते रहते चे।

एक समय कीरवों के मुखिया दुर्योधनने दुष्टाभिप्रायसे जुएका खेल प्रारंभ किया और उसमें पाण्डवों को भी प्रामें: २ फँसा लिया। छल बलसे विचारे पाण्डव सब बाज़ी हार गरी भीर इस इक़रार पर खेल तय हुआ कि १३ वर्ष तक पाण्डव हिपे बनमें रहें बाद आकर राज्यादि करें और नहीं तो महीं।

इस समय द्रीपदी रानीको बड़े बड़े उपद्रवी द्वारा दुर्यी-धनने बहुत कष्ट पहुँचाया परन्तु सती द्रीपदीने समयानुकूल सब क्क सहकर पति भादि पाखडवोंका साथ किया। कहीं जाकर बनमें निवास करने स्त्री। वहाँ जाकर भी दुर्योधनने युद्वादि किया।

भलामें १२ साम बीत चुकने पर जब एक साल रह गया तब इन पाँचों पाण्डवांने सोचा कि भव १ वर्ष बिल्कुल गुप्त रोतिसे रहकर भलामें कुछ अपना एपाव किसी विदेशों राजा को दिखा कुछ यश-गीरव सम्पटा लेकर घरकी जाना है भतः सबसे सलाइ की कि सेष बदल कर विराटपुरके राजा सुदर्शनके यहाँ नौकरी करें।

द्रोपदीजो भी अपने पति की अनुगामिनी थीं। उन्होंने भी राजाके यहाँ मालिन का काम करना पसंद किया। अर्जु-नने द्रत्य निखनानिका, भीमने रसोई करनेका, नकुकने घुड़-सालका, महदेवने गोधनका भीर युधिष्ठर महाराजने पुरीहित का काम पमन्द किया। सब मिलकर राजा विराटके यहाँ रहने नगे भीर भपने भपने काममें भद्गत चतुराई दिखाने लगे। द्रोपदीजी मालिन के भेपमें रहकर बड़ी योग्यतासे पृष्य गूंथती थी। इनके माला हारादि इतने सुन्दर सुडीक बनते थे, कि राजा सुदयनको महिषी चिक्तत हो जाती थीं। सोचती थीं कि यह चतुर मालिन कीन है? एक दिन राजाका माला की दक्त पाहुना भाया था। वह द्रोपदीजीके बने पृष्यहारको

देखकर चिकित हो गया। उसी समय से उसके हृदयमें कृषिचारोंने भावागमन जारी कर दिया। भन्तमें द्रीपदीजीको उस
ने देखा भीर उन पर मोहित होगया। उस दुष्टने एकान्तमें
द्रोपदीजीसे प्रार्थना की कि भाप मेरी पटरानी बनने योग्य
हैं। मेरे साथ चित्रये, सुभपर प्रसन्न इजिये, हत्यादि हत्यादि
दीनताके बचन कई तथा भय भी दिखाया। इस दुष्टके उपयुक्त बचनोंको सुनकर द्रोपदी सनीकं हृदय पर बच्चधात से
भी भिक्त चीट पहुँची। वे विचारन सगीं कि भन्नी! यहाँपर
भी चैन न मिला। किस तरह शीलरतको रूचा होगी हत्यादि
विचारमें उक्त सतीका हृदय कम्पित हो गया परन्तु ''समय
पड़ने पर भवना मबसे सबना हो सकती है।'' इस वाक्यानुसार द्रोपदीजी सचेत होकर कीचक दुष्टको भाइने सगीं।

उन्होंने तीत्र क्रोधर्म पाकर की चककी खूब पाई हाथीं चिया। खूब कटुबचनों की बीक्टार की जिससे की चक निराध की खर्थान की जीट पाया।

कोचक दुष्ट उसी दिनसे खान पानादि कोड़ पपनी मझ-निन्द्य वासनाकी पूर्त्ति के उपाय सोचता पुत्रा शय्या पर दिन कार्टन नगा।

इधर द्रोवदीजीने चर्जुनसे चयनी चवार दु:खावस्थाका वर्णन किया जिससे उनको बड़ा क्रोध उपजा; परन्तु भेद खुननेपर चयना क्रियना दु:साध्य जानके खुप रह गये चौर कह सुनकर द्रोवदीजीको धैर्य बँधाने सगे। द्रापदीजीको एति के कहें धेर्य नहीं हुमा। उन्होंने भीम महाराजसे सब व्रक्ताल कहा—भीमने कहा कि सती तुम पखाताप मत करो। हम भामक दूपसे ही कीचक दुष्टसे बदला लेंगे। इन्होंने एक युक्ति निकाली यानी द्रोपटी जीसे कहा कि तुम कीचकसे भाज राजिको किसी स्थान पर भाने का संकेत करदी, बस जब वह दुष्ट वहाँ भावेगा में स्त्रोक भेषमें उसे जा पहाड़ूँगा, द्रोपदी जी ने ऐसा ही किया।

राविके समय कौचक पापाका उत्कटनासे नियत खान पर गया। वहाँ सविम द्रोपदी (भीम) ने उसे धर पकाड़ा। समके प्रणित मनोभावका प्रत्यच फल दिखला दिया।

प्रांगा काम कर (कीचककी मार) भीम खंखानकी धागरे घोर द्रोपदीजी से सं हलाना कड़ मुनाया। प्रांतः-काल कीचककी द्रोपदी के कारण मरा जान उसके की भाइयों ने बड़ा दड़ा मचाया। द्रोपदी जीको पकड़कर द्रास देना श्रुद्ध किया। यह देख भीम महाराजने फिर युद्ध किया घोर कीचकके सब भाइयों को हरा दिया। प्रवक्ते युद्ध से सबको घोड़ा घोड़ा पता लग गया कि ये पाष्ट्रव हैं। इधर इन लोगों का १ वर्ष भी पूरा हो गया था। ये प्रगट होना ही चाहते ये कि कीरवें ने फिर युद्ध किया। प्रश्न में पाष्ट्रवें की ही जीत हुई घोर जय पताका से साथ फिर इन लोगों भपने पुरमें प्रविध जिया।

कुछ दिन पति चादि समझ कुट्ग्वियोंके साथ मानंद

व्यतीत होने ही पाये ये कि सती ट्रोपदीको एक विपत्तिका फिर सामना करना पढ़ा।

एक दिन रानी द्रोपदी सिंडासन पर बैठी थी कि नारद जी घाय उनको देखकर द्रोपदीजी उठन सकी घीर न प्रचास की किया। वे घपने मृंगारमें सगी थी।

यह बात नारदकी बहुत बुरी लगी। वे शीन्न ही वहाँसे लीट गये भीर मनमें द्रोपदीकी नीचा दिखानेका विचार कर के घातकी खुण्डस्थ सरकंका पुरीके राजा पद्मनाभके यहाँ जाकर उसे द्रोपदी रानीका चित्र दिखा दिया। इस की तुकको कर नारद तो लम्बे पड़े, परन्तु राजा पद्मनाभका चित्त स्त्रष्ट हो गया। उसके यहां बड़ा भनर्थ हो गया। राजाने बड़े बड़े कठिन परिश्रमों में किसी देवकी वश्र कर रानी द्रोपदी जीको सोते हुए पन्य सहित भपने यहां मंगा लिया।

वेचारो निष्पाप द्रोपदी कुछ भी नहीं जानती थी कि मेरा हरण कीन दुष्ट कर रहा है, मुभ्यपर कीन सी विपत्ति पारही है। इस सतीकी यकायक निद्रा टूटी तो देखती है कि एक राजा इसकी गय्यापर बैठा बेठा बड़े हाब भावके बचन बोल रहा है। द्रोपटीजीने ख्याल किया कि ग्रायद में खप्न देख रही हाँ इससे उन्होंने पुन: मुख ढंक लिया। पास बैठा दुष्ट पद्मनाभ इस भेदको समक्ष गया! उसने कहा "उठो प्रिये! निद्रा तजो यह खप्न नहीं है" इत्यादि इत्यादि बचन कहे। इन्हों सुनकर द्रोपदीजी प्रतिवोधित हो गईं। सब मामला

समभगं था गया। धार शाज कैसा उपसर्ग रस सतीके जपर हो रहा है। ये बड़े थार्लगादमें विलाप कर गेने लगीं, इनकी गगनभेदी थावाज़में पद्मनाभका सारा महल फटने लगा। मानो काष्ठ पत्थर भी रोदन करने लगे। उक्त सतीने पद्मनाभको विलाप के साथ साथ बहुत कुछ समभाया परन्तु यह पापार्थी कब यान्त होनेवाला था। भन्तमं जब देखा कि भन्य खपाय रहित होनेपर द्रोपदी प्राण दे देगी तब बह दुष्ट उठ-कर चला गया थीर यह कह गया कि १ मासमें ज़कर प्रसक हो जाना।

द्रोपदीजीने ख्यास किया कि एक मास बहुत है। इसमें घर्म साधनादि कितने हाँ उपाय मैं भी कर सक्षाँगो घीर योदा पाण्डव भी त्राकर इस दृष्टका घवश्य ही निग्रह करेंगे। बस इस विचारसे वे खान पानादि त्याम जिन मन्दिरमें चनी गई। घीर भत्यन्त विद्यास-साइस सहित भगवद् ध्यान करने सगीं।

इधर पाण्डवेनि देखा कि द्रोपदी का इरण हो गया, इस घटनासे सारे राज्यमें योक सच गया। पर्जुन सहाराज पत्नी वियोगसे पति दु: कित हो गये, परन्तु फिर साइस कर पांची भाई खोजने निकले। प्रनेक युक्तियोंसे काम लेते लेते तथा उन्हीं नारद महाराजकी उन्हीं द्यादृष्टिसे द्रोपदीका पता लग गया। वहां सुर कंकापुरी में जाकर खूब रण इपा पीर प्रन्तमें पद्मनाभको हरा जिन मन्दिरस्थ द्रोपदीको लेकर घर ग्राग्ये। भव फिर ट्रोपदीजीक दिन भामोद प्रमोदमें व्यतीत होने सरी। कई पुत्र रक्ष उत्पन्न हुए भीर परम नीति मार्गसे सांसा-रिक सुख भोगने सगीं।

बहुत दिन इस भवस्थामें बीते। एक दिन श्रीनेमिनाध खासीका समवधरण धर्मीपदेश करता हुमा भाषा। वहां जाकर पाण्डवोंने धर्मीपदेश तथा भपनी भवान्तरी सुनी, जिस से पांची भाई परम वैराग्य रसमें डूब गरी भीर भगवान नेमि प्रभुक सामने समस्त ग्रन्ड जन्ताल की छोड़ वीतरागी दिगम्ब-री दीखा धारणकर भामान्ति करने लगे। पतिकी यह भवस्था देख द्रोपदीरानी ने भी श्रीराजुल मती भर्जिकाके निकट जा दीखा धारण करली भीर परम उपत्रय करने लगीं। भन्ना! जो गरीर परमोत्कष्ट भोगोंमें रमा था, वहीं भाज भामा ध्यानक रसमें प्रमा उपीय तय कर रहा है। कुछ दिन तप जय करके भन्तमें प्रमाधि मरण कर श्रीमती द्रोपदीदेवी सीलहवें स्वत में देवी हुई भीर वहाँसे चलकर क्रमश: मोसकी पानी



''सहन शीलता की प्रति मृति धन्य धन्य तुम । पती रता सातियोंमें ''अञ्जानि' अग्र गन्य तुम ॥ बाइस बत्सर पाति विछोहका कष्ट सहन कर । धन्य निवाहा पातिश्वत पावन आति सुन्दर॥''

विश्वान के राजा महेन्द्र भीर राजी हृदयविगाकी परमध्यारी पृत्री थीं। पद्मप्राणमें लिखा है कि वाल्यावस्थामें रनको पन्य मब विषयोंको शिक्षाभांके भितरिक्त गान्धर्वकला तथा धर्मशास्त्रको गिक्षा पृत्र रीतिसे दी गई थी। योग्य युवावस्था होनेपर पिता माताने रनका विवाह भादित्यपुरके राजा प्रश्नाद भीर रानी केतुमतीसे उत्पन्न वायुकुमार (पवनकुमार)से करना निसय किया। कुमारने भपनी भावी प्रियतमाके रूपगुण र शिक्षाकी प्रथंसा सुनकर गुप्तरीतिसे उससे मिसनेकी

९ चका की। तथा वे भीघ्र पपने एक मिस्रके साथ वायुयान द्वारा चादिलापुरसे महिन्दुपरको रवाना इए। महिन्दुपर पहुँच पञ्जना सुन्दरीके महलके सप्तम खण्डपर जहाँ कि सुन्दरी चपनी सिख्यों सहित वैदी मनोरस्वन कर रही थी जाकर किए रहे तथा उस मण्डलीकी ग्रुप्त वाक्ती सुनने लगे। समय भी वही था इसन्तिये सखियां सन्दरीकी ब्राटीपर अपने भवने विचार प्रकट कर रही थीं। प्रभाग्यवणात एक उसकी भट्ररदर्शी सखीन जो कि सिर्फ रूपपर न्योकावर होकर कुमारीकी गादी किसी पन्य कुमारके माथ कराना चाइती षी प्रस्तावित सम्बन्धपर अपना असम्तोष प्रगट किया। स्वाभाविक लक्कावश सन्दरीने प्रगट कृपसे इसका कोई विरोध नहीं किया; परन्तु वायुक्तमार जो इस संवादको सून रहे थे भवना भवमान सम्भ दु: खित हुए। उनकी यह भी भ्रम हो गया कि सन्दरीको मेरे साथ सम्बन्ध करना स्वीकार नहीं है इसनिधे उन्होंने सखी हारा मेरी निन्दा सनकर उसका विरोध नहीं किया। इस कल्पनाने कुमारके हृदयपर अपना अधि-कार जमा निया तथा कुमारीकी तरफर पर्वाच उत्पन्न करा दी। मित्र सन्दित ये शीन्न पपर्न स्थानपर पाये भीर सुन्दरीसे सम्बन्धन करनेकी प्रतिज्ञाकी। उक्त ग्रुप्त समाचार किसी को मालम नहीं हुआ।

दोनों राजाभोने पाणियक्षणको तिथि निषय करासो की। यस: नियम तिथिपर विवासकी सब कार्यप्रकारों कोने

सुनीं। क्रमारने बहुत इधर उधर किया, परन्तु विता माताके चन्दीध तथा सास सस्रवे सम्भानेसे उन्होंने सन्दर्शक साथ मस्बर्ध करना स्वोकार कर लिया और नियत तिथिपर मस्बन्ध क्षो गया। यद्यपि कुम।रने पिता माताकं कर्जने सुन्दरी से मादी करली परना उनका चिल उससे विरुद्धी रहा। सन्दरी जब चपने पतिके भवनमें चाई चौर उसे खामीके सप्ट होनेका समाचार जात हथा तब उसे जितना द:ख हुया वष्ट लिखा नहीं जा सकता। वष्ट नोजन,वस्त, शृङ्कार पादिसे स्टामीन होकर दिन राम अपने सर्वस्व वितर्क प्रमुख करनेमें सगी रहती थी ; परन्तु खामीका सन्देश किसी तरह निवृत्त नहीं इसा। उन्होंने कभी सुन्दरीयर प्रेमकी दृष्टिम भी नहीं देखा। इस तरह सिर्फ खामीक नामका स्नरण करते हुए उस सर्वाङ्गसन्दरी सतीको २२ साम को गये! गरीर चि-नारे क्रय होते होते विन्कुल सुरक्षा गया। इस दःखरूपी समुद्रकी पार करना सुन्दरीक लिये असकाव ही गया भीर वह निराग होकर पपने जीवन सूर्यको अस्ताचलपर पहुँचा समभ चुकी थी कि यकायक भवने पूर्वक्रत पुरुष कार्यकि प्रतापरी उसके भीभाग्यका सूर्य चसक उठा, जिसका इसान्त बीचे टिया जाता है :--

महाराज प्रचादकी राजसभामें लक्के खर रावणका हुत वहणके साथ युव करनेंसे सहायता टेनेंक लिये रणनिसम्बन्ध स्रोकर प्राया। महाराजनें इसे सहये प्रकृतिकार किया चौर उसी समय फौजी तव्यारीकी भाषा देदी। कुमारकी युवावस्था थी। युदकी घोषणा सुनकर उनका तंत्र उमझ पहा। श्रीघ्र विताकी सेवामें उपस्थित श्रीकर निवेदन किया कि रस कार्यके लिये पाप क्यों तक लीफ़ करते है ? सुक्ते युर्मे जानकी पाचा टीजिये। पापक पाणीर्वादने में शीम विजयलक्षी प्राप्तकर पापके दर्शन कक्ष्मा। विताने प्रवकी युद्धोचित धिचाएँ देकर युद्धस्यलमें जानकी चाचा दी। कुमार भी रणके वस्त्र एडन, पस्त्र शस्त्रों से सिख्यत शो एक उत्तम घोडेपर सवार इए भीर क्षचका शब्द कर महलसे बाहर होगाही चाहत है कि उन्होंने परम साध्वी सधीला सर्ता प्रमाना सन्दरीको, टरवाज़ पर खडी दर्शनोंकी प्रतीचा से देखी। कुमारको यह कार्य पच्छा नहीं मालूम हुपा भीर सुन्दरीकी विनयपर कुछ ध्यान न देते इए वे चपनी सेनामें चसे गये। सुन्दरीके द्वदयपर दु:खीका प्रचाइ टूट पड़ा है। जिस स्वामीक कुणल समाचारीयरही वह जीवन धारक किये इए यी चाज वे यहमें चले गये हैं। नहीं कहा जा सकता है कि इस पर्यायमें फिर खामीके दर्शन हो सकेंगे वा नहीं इत्यादि विचारोंको करती एई भारतके गीरवको प्रदीप्त करनेवाली एक परम सुन्दरी सती अपने भाग्यको दोष देती हुई विसाध कर रही है। सिवा वीतराग चिदानन्द परमात्माके ध्यानके उसकी उसके इस पश्चा द:सर्व निवृत्त करनेवाला कोई दिखाई नहीं देता है।

महाराज प्रश्नादके सुप्रव वायुकुमारकी चेना दिनमें चनते चलते मत्थाको एक सरोवरके निकट हेरे डालकर विश्वास करनेके लिये ठडर गई। क्रमार भी भवने डेरेमें विश्वास करनेके लिये ठडरे। कुछ जलपान करके शामके चपूर्व सम-यमें सरोवर भीर प्रकृतिका सौन्दर्य देखनेके लिये कुमार अपने मित्र सहित टहलनेक लिये खेमेरी बाहर हुए। खेमेरी बाहर निकलतेही प्रकृतिने उन्हें वह उपटेश दिया जी हजारी उपदेगोंसे भी नहीं दिया जा सकता. जिस की प्रशंसा नहीं की जा सकती। जिस विषयं जानके विषयमें इनके इटयमें बिलकुल पश्वकार या एकाएक जानका सुर्य दीप्त ही गया। इन्होंने देखा कि एक चकवी राति पानिक कारणसे पपने पतिसे विकोष होनेका समय देख पत्यन्त दु:खर्क साथ कोलाइल मचा रही है। जब इनको जात इचा कि जिस तिर्यचयचीको मनुष्यकी परीचा सेगमात भी चान नहीं है पवने प्रियका वियोग होनेने इतना कष्ट होता है जिसका पन्त नहीं है तो फिर मेरी प्यारी पक्षी पन्नना सन्दरी को, जिसको मैंने २२ साल हो चुके बिल्कुल त्याग दिया है क्यादशा होगी? उसके दृ:खीका वर्णन करनेकी क्या इस भूमण्डलमें कोई समर्थ है ! प्रक्रतिने उत्तर दिया-नहीं ! उसी समय इनकी पञ्जनाके युद्धके कृषके समय पानकी बात याद चाई, जिससे पनका श्रीर विश्वन हो गया। प्रेमा-खुरे नेत परिपूर्ण हो गये। सित्रसे इन्होंने भपना विचार

उसी ममय पञ्चमा मृन्दरीचे मिलनेका प्रगट किया भीर गुप्त रौति मे रातिकीमें पञ्जना मृन्दरीके मक्कोमें पाये। सुन्दरीका हृदय चानन्दसे प्रकृत्तित हो गया । उसके चानन्दका भन्भव पाठकडी कर सेवें। सुक्तमें शक्ति नहीं है जी भाष को लिखकर बता सक्। उम राह्रिको कुमारन पवनी प्यारीचे यवने हर तरहके भवराधीके लिये यति नम्बडी समा मांगी तथा चपनेको बहुत दोष दिया। परम्तु मुन्दरीने उनके भाम का जड सूल से उच्छेद कर घपने ही पूर्वक्रत कर्मीका दोष बतलाया । पद्मात् पति-पत्नीने भानन्दमे राति पूर्ण की। सुवद् कोते ही कुमार मृन्दरीमें बिदा कीने लगे तब मृन्दरीने विनय-पूर्वक प्रार्थना की कि मेरा ऋतुकानका समय है सकाव है कि सभी गर्भ रह जाय चीर चाय यहमें जा रहे हैं इसलिये समय भी पापको ज्याद: लगेगा इससे पाप पपने पिता माताको पपने पानेकी सुचना करते जाइसे। परम्य कुमारने मजावग्र ऐसा करना पसन्द नहीं किया चौर कहा कि पगर ऐसा इपा तो कोई इर्ज नहीं है। युद्धमें इसकी ज्याद: समय नहीं लगेगा, इस शीव बावेंगे। तम किसी तरहकी चिमा नहीं करना। इत्यादि इर तरहसे सम्तोधितकर प्रेमालिङ्ग्नकर बिदा इए तथा सुबद्ध होते होते चपनी सेमाझ पहुँचे । यह हास किसीको जात नहीं हुया।

वायुक्तमार युष्टस्थलमें पष्टुँचै। लड़ाई पुर्दे। चनामें वायु-कुमारने चपने प्रवस प्रतापसे यमुको पराजित किया चौर

विजयनक्सी प्राप्तकर अपने देशकी भीर रवाना इए। बद्दत हो गया था। यहाँ प्रव्यना सुन्दरीको वास्तवमें गर्भ रह गया और दिन दिन कृपकी दृष्टि होने लगी। यह समा-चार सारे रनवासमें फैल गया। राजमहिष्कीको जब यह समाचार मिला तो उन्होंने पपने कुलमें कक्ष समभ बहुत इ:ख प्रगट किया तथा पञ्जनासन्दरी को पपन पिता साप्ताके यहाँ पहुँचानेका विचार किया। चन्ना सन्दर्शने बहुत कुछ कहा परना उसकी राजमहिषीदारा यही उत्तर मिला कि मेरे पुत्रने तो तुक्ते २२ वर्षमे त्याग दिया है चीर वह यहमें गया है फिर तेरे पास क्यों चाबेगा ? पनार्ने निराध होकर सुन्दरीको घपने पिता माताके यहाँ जाना पड़ा। पिता माताने भी इसकी कलकिनी समक पपने महलोंमें पात्रय नहीं दिया। इस तरह पञ्जना सुन्दरी सती भवनी एक प्यारी सस्तीत साथ भवने पूर्वक्रत कर्मीके प्रता-वसे तरह तरहके दु:स भोगती हुई जङ्गसीम किरती किरती इक गुफामें रहने सनी । वहीं पर उसने परम प्रतापी जन-दिख्यात इनुमानको प्रसव किया।

बच्चना सुन्दरी घपनी सखी सहित घनेक दुःखोंका सामना करती हुई पुषको पासने सगी। एक दिन सुन्दरी घपने खामीको यादकर अब फूट फुटकर रो रही बी तम हनूकर दीपका राजा प्रतिसूर्य जी वायुयान द्वारा उस सुंकाक जपरंत्र जा रहा द्वा घचानक इस निर्जन अङ्ग्लर्स कर्णभेदी रोनेका गन्द सन नीचे उतरा। गुफामें जाकर हक्तान्त सुना। जान होनेपर उसने पपनी भाष्ट्रीको हृदयसे लगा लिया पीर हर तरहको मान्ति देकर भफ्ने साथ वायु-यानमें विठाकर भपने होपमें ले गया। वहाँ पुत्रका जन्मो-त्मव कर भानन्द मनाया तथा पद्मना सुन्दरीको पच्छी तरह रखा।

यशं जब वाय्क्मार विजयलक्षीका मुक्ट पहने इह भवनी प्यारी भन्नना सन्दरीं गीम जाकर सिनर्नकी इच्छा कियेहुए पादित्यपुरमें पाये पार नगरनिवासियोंसे प्यारीका कलक्कित होकर माता विताक यहाँ जाना सना तो शीघ्र द:खित होकर महन्दपुरका रास्ता निया। परम्तु जद वहां भी उसके दर्शन नहीं हुए तो अतिही खेदित होकर जङ्गलों में भपनी प्यारीकी खोज करते इए उसात्तकी नाई फिरने लगे। यह हाल जब राजा प्रक्लाद व सहेन्द्रको जात इया ती उनकी भी बहुत दु:ख हुया। दीनी पीरसे चारी तरफ़ सन्दरी तथा वायुक्तमारकी खोजमें दूत मेजे गये। एक हुत इनुकर डीएमें राजा प्रतिसूर्यक पास भी पहुँचा चौर कुमारका सब हान सुनाया। यह हाल जब पञ्चनाकी मा-लूम इत्था तो वह दु:खित हो कर सूर्कित हो गई। प्रतिसूर्य उसको समभाकर चाटित्यपुर पार्य तथा राजा प्रष्ट्वादको भी समभावर होनी कुमारकी खोजर्स निकली। बहुत जहुनी शहरीं की खीजने पश्चात् एक महान्धकारमे परिपूर्ण भया-

नक जङ्गलमें दोनों राजाधोंने वायुकुमारको जिनके यरीरमें सिवा पश्चरके कुछ भी नहीं रह गया है, ध्यानमें मन्न इए बैठे देखा। राजा प्रह्लादने प्यारे पुत्रको छदयसे लगा लिया भौर पश्चना सुन्दरीके मिलनेका तथा तेजस्ती पुत्र रत्नके उत्पन्न होनेका समाचार कह सुनाया। यह समाचार सुन कर कुमार एकदम, "प्यारी! प्यारी!! प्यारी!!!" कहके विका उठे। जब ध्यान ठूटा सामने पिता घादिक मान्यजनों को देखकर सज्जावय मस्तक सुकाके रह गये।

चम निजेन जङ्गमें सब लोग ग्रीवडी इन्तडियेप विदा हुए। वहाँ वायुक्तमारकी प्यारी पतिवता चर्छा द्विली चन्नासुन्दरीसे सेंट हुई। दीलोंने परस्पर चपने दुः हों को कड़कर चपने चपने इदयों को ग्रान्त किया तथा कुछ दिन वहाँ ही रहें। फिर चादित्यपुर्ग चाकर दीलों पति-पत्नी पुत्रसदित चानन्दसे समय व्यतीत करने नगी। फिर उन्होंने चपनी जीवनलीला चत्रत्यत्त सुखी तथा राज-सद्यों के साथ व्यतीत की। कड़ींपर प्रतिमाचीकी धूपमें रख-नंसे चन्नाको यह कष्ट हुचा था। यह प्रगटकर, इस चरित्र को पढ़कर प्रत्ये क पाठक चौर पाठिकाक इदयमें इस प्रश्रका छत्पन होना सम्भव हो सकता है कि इतने बढ़े राजकुलमें जन्म लेनेवाकी तथा एक महान् वंगमें छत्पन हुए राजकुमार वायुक्तमारकी सहचारिणी (वधू) राजकुमारी चन्नाना सुन्दरी को एसे चवर्षनीय दुःखीका सामना किस कारचसे करना

पड़ा ! इस प्रत्रका उत्तर सरल है और अत्यन्त सरल है । इस वातको माननेमें सर्वसाधारण सन्दमत है कि पूर्व जन्ममें चपार्जन किये इए ग्रमाग्रम कर्मी का फल सक्हीको चवाय भोगनाची पड़ता है इतर मनुष्योंकी कथा तो दूरही रही पर खयम तीर्शक्षर भी इन कमीकी विस्वनाधींसे नहीं बचे। पुराणीका स्वाध्याय जरनेवाले पाठकोंने यह किया नहीं होगा कि परमपुज्य पादि नाथ भगवानको भी प्रसाता वेद-नीय कर्मके उटयरे कः सहीनी तक पाछार नहीं मिला था। तो राजकुमारी पञ्जना सन्दरीको एवहीं कमी के जालमें फँस कर इतनी वेदना और यातनाकी सहन करना पढ़ा इसमें कोई षाययं नहीं इसकी कथा इस प्रकार है कि अपने पूर्वजकारी पद्मना सन्दरी किमी राजाकी पटरानी थीं। उस राजाके यहाँ पक्षनाक प्रतिरिक्त पीर भी रानियां थीं। पर इनको प्रपति पदका वडा प्रभिमान या किसी कारणसे बाब्य नामें भीर एक सपती (सीत)राशीमें ईर्था ही गई। वस इसी ईर्थावश होकर तथा पपन पटरानी पटके घिभमानसे पद्मनाने जिनेन्द्र भग-वान्के प्रतिबिखको मंदिरके समीप किसी बावडीके जलके फिक्या दिया या भीर वह प्रतिमा बाईस घडी उस बावडी वे जलमें पही रही जिनेन्द्र भगवानकी प्रतिसाका इसना चनादर करनेरे प्रखनाने पश्चभ कर्मका वन्य किया तथा इस कर्म के उदयसे इस जन्ममें बाईस वर्ष तक पतिका विद्योग सहना पड़ा। माता पिता हारा चनादर पाया। सास चौर सह-

रके घरमें निवास करने तकको आश्रय नहीं मिला। सहायताको याचना करनपर भी परिवारके लोगोंने तथा अन्य
सम्बन्धियोंने भी तनिकसी सहायता नहीं हो। नगरके लोगोंसे
नुरी दृष्टिसे देखी गई भीर जिसने मुना उसीने निंदा की।
जिनेन्द्र भगवान्की प्रतिभामालका अनादर करनेसे अह्मना
को इतना दु:ख सहन करना पड़ा फिर जो पापाल्या जिनश्रासनकी अवद्या करेंगे उन्हें नहीं मालुम नरकोंमें कैसे
कैसे दु:ख सहने पड़ेंगे। यही करें ऐसी बातोंके शास्त्रोंमें
भनेक उदाहरण भरे हैं पर उन सबके निदर्शन करानिकी
आवश्यकता नहीं। सबके लिये यही उदाहरण काफी होगा
कि जिन श्रासनकी सची प्रभावना करनेवाने एक ध्यानस्थ
दिगस्वर मुनिके गलेंमें राजा श्रीणकने भन्नानवश्य मरा हुमा
सर्प डाल दिया था इसी कारणसे राजा श्रीणकने सातवें
नर्कका वन्ध किया था।

इसार पाठकरण इस चरितसे केवल यही शिका नहीं प्रइष कर सकते कि भिमानका फल क्या हो सकता है एवं जिन शासनकी भवजाका फल क्या होता है किन्तु इस इस चरितसे नहीं नहीं चरितके एक एक भक्तर से भक्कीसे भक्की शिका ग्रहण कर सकते हैं। इसे यह चरित बतलाता है कि मानवजन्मकी उपयोगिता और कर्णाव्य क्या है? यह चरित मनुष्यके भानस्थका कुड़ाकर कर्मवीर बना सकता है। इस चरितसे भावस्थालके भिमलाबी मनुष्य त्रात्मकत्याण कर सकते हैं भीर लोगों सं स्थातिके चाइनेवावाले नर स्थातिलाभ कर सकते हैं। विपत्तिमें साइमडीन न होना एकवार कार्यमें सफलता प्राप्त न करनेपर भी कार्यमें तत्पर रहना, इस बातकी शिचा हमें इसी चरित-से मिल सकती है। कर्मों का खेन, मनुष्य खभावकी परिस्थिति, पातिव्रत्यकी रचा भीर एक भवसाका साइस इस चरितमें मिल सकता है।

चतुर स्तियाँ इस चरितक अनुशीलन करनेसे मानव जग्म की सफलकर सकती हैं और उमी पदकी या सकती हैं जिस पदकी कि सीतादिकने प्राप्त किया है। इमें आया और विम्हास होता है कि ऐसे चरितोंका अगर हमारे समाजकी अवलाओंपर अच्छा प्रभाव पड़े भीर वे इनसे थोड़ी भी शिक्षा अहण करें तो वे संसारका उहार करनेवाकी देवियाँ कह-लावंगी। और अपने चरितसे संसारको चिकत करेंगी। इमें सचा मरोसा है कि जिस दिन हमारे यहाँका अबसासमाज ऐसे ऐसे चरितोंका अनुशीलन और मनन करेगा उसी दिन जैन समाजकाही नहीं किन्तु समस्त संसारका एक नवीन जीवनप्रभातका उदय होगा और उत्तिको युगका प्रारक्ष होगा। भू महिलाकुलभुषण हैं अभिती मनोरमा देवी । हैं अंक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्र

फिरते २ कीयल प्रदेशके बैजयंती नगरमें पष्टुँचे। वर्षों के महामान्य पेठ महीपाल जीहरीके सुपुत्र कुमार सुखानन्दकी गुण-प्रवस्था प्रादिमें कुमारीके योग्य वर समभ उन्हें हार व जोफन देकर सम्बन्ध निश्चित कर वापिस उन्हें निमें पाये। तथा सुखानन्द कुमारकी यथायोग्य प्रशंसा पेठ महीदत्ति कर संवन्ध निश्चित होनेका समाचार सुनाया। शुभितिथि पर मनोरमा देवी भीर कुमार सुखानन्दका विवाहसम्बन्ध होगया पौर कुमारो प्रवने पतिके यहाँ जाकर गडहकार्यमें प्रवत्त हुई।

कुछ समय सुखरी रहनेके पद्मात् एक दिन राजिके समय जब सुखानन्द कुमार पपनी कोमल गय्यापर वित्राम से रहे ये कि पद्मानक भींट खुल गई घीर सोचने लगे कि मैं बिना उद्योग के पिता की उत्पन्न की हुई सम्पत्ति से प्रानन्द करता हूँ। मेरी पवस्था भी धव उद्योग करने योग्य हो गई है। इसिलये भव सुभे व्यापारमें प्रवृत्त होकर सम्पत्ति पैदा करना चाहिये। उन्होंने भपना यह विचार तत्काल भपनी प्यारी घड़ाड़िनोकों भी निद्रासे सचैत कर सुना दिया। मनोरमाने भपने स्वामीके इन उत्कृष्ट विचारों की प्रशंसा की तथा घरने पर रहकर व्यापार करने का परामर्श दिया। परन्तु सुखानन्द कुमारने भनेक कारणींसे वर पर ही रहकर व्यापार करना प्रसन्द न कर विदेशमें भिक्त स्वक्तता समभ विदेशही जानेका निश्चय किया।

मनोरमाको यद्यपि पतिसे विकोड होनेका दु:ख प्रधिक हुपा तब भी उपने कुमारको यद्यायोग्य वैदेशिक शिचाएँ देकर खुशीसे विदेश जाकर व्यापारमें सफलता प्राप्त करने की राय दी। प्रातः काल होते २ कुमारने यह घपना विचार पपने पूज्य पिताजीसे भी निवेदन किया घीर जाने की पाचा माँगी। पिताने भी कई तरह की सुक्तियाँ समभाकर दन्हें व्यापार के लिये जानेकी पाचा दी घीर कुमार खलजल मार्ग से हीपान्तरों में व्यापारके निमक्त प्रस्थान कर गये।

कुमारी मनोरमा देवी भपने स्वामी शृखानन्दको किमी
तरहकी तकलीकोंका सान्हना न करना पहे तथा व्यापारमें
भिक्ष सफलता हो इसलिये परब्रह्म परमाक्षाका ध्यान
किया करतीं थीं। एक दिन जब कि कुमारी प्रात:कालकी
क्रिया से निवृत्त हो झानकर भपने प्रासाद की कृतपर
खड़ी भपने केथोंको खोलकर सुखा रही थीं कि वहां का
राजकुमार बोड़ेपर चढ़ा हुभा निकला। राजकुमारकी
हिष्टि कुमारी पर पड़ी। इसके कपनावस्थको देखकर
पाजकुमारको मनोजकी धरीका निजाना बनना पड़ा।
राजकुमारने भपने महलों जाकर र दासीको बुलाया तथा
हर तरहकी युक्ति समक्षाकर जिस प्रकार ही सर्व कुमारीको
खाने के लिये भेजा। दासीने जाकर भपने बुद्धिप्रावस्थरी
कुमारीके सामने यह प्रसाव उपस्थित किया। सुनक्ष

कुमारीने भयंकर रूप धारण किया, नेत्र रक्षवण हो गये, हृदय रोमांचित होगया। उसने दासीको तथा राजकुमारको खूब पटकारा। तथा इसको महलोंमे निकाल बाहर किया। दासी भवनेको भवमानित समभ इसका बदला लेनेका विचार कर तुरत्त सुखानन्दजीको माताके पास गई भौर उन्हें कुमारीके विकार इस तरह भड़काया कि तुम्हारा पुत्र तो ही पान्तरमें रोजगार करने गया है परन्तु तुम्हारी पुत्रबधू नित्य राजकुमार के महलोंमें जाती है। सेठानीजीको यह समाचार सुनने से भवनों जाती है। सेठानीजीको यह समाचार सुनने से भवनों कलों कलों कलों के समाचार सुनने से भवनों कि कह मुनाया भीर प्रस्ताव किया कि पुत्रबधूको माता पिताके यहाँ भेजनेका बहाना बतलाकर जंगलमें छुड़-वा देना चाहिये। सेठजी ने भी सेठानीजीकी बातोंपर विम्हासकर इस प्रस्तावका समर्थन किया भीर प्रस्तावानुसार मनेरमा जंगलमें छुड़वानेके लिये भेज दी गई।

जब उस सुशीला परम माध्वी सती मनोरमा को यह सब हाल उसके मारशी से जात हुआ जो उसे जंगलमें को हने के लिये लिये जाता था तब उसे एकाएक मुक्का आगई! मूर्क्कांसे जाग्द्रत होने पर फूट फूटकर रोने लगी। अपने परम प्यारे खामीका नाम स्वरणकर इस विपक्तिसागरसे चहार करनेके लिये उन्हें कोर २ से पुकारने सगी। इस निराश्वित अवसाके कर्षा भेदी विलाप के शब्द से सारशीका

स्ट्रिय पानी २ होगया भीर उसने उसके कहे भनुसार उसके माता पिताके घर उक्केन पहुँ चारेनेकी प्रतिश्वा की । उक्केन पहुँचने पर सेठ महीदत्तने भी एकाएक पुत्रीके भानेसे सं-कल्प विकल्प कर उसे भपने घरमें रखनेकी भनिक्का प्रकट की । तब मारखेंने निराध होकर विलग्नती हुई मनोरमा-सुन्दरीकी एक सघन जंगलमें छोड़कर वैजयंती नगरका राखा लिया।

कुमारी अपने भाग्यको धिकारती हुई बनस्यतियोमि अपने जीवनके दिन निर्वाष्ट करने लगी। कभी अपने पति-वियोगके दुःखोपर, कभी कनंकके पातकपर. कभी पूर्वीपार्जित कमी पर फूट २ कर रोने लगती थी। परन्स उसके कमी ने उसे अभीतक नहीं छोड़ा और सहमा एक विपक्तिका पहाड़ और उसके जपर डाल दिया। जिसका वर्षन इस प्रकार है—

सुन्दरी एक हक्त की कायामें बैठी इंद भवन हटयमर्वस्व स्वामी मुखानन्द के ध्यानमें मन्न यी कि वहां में राजग्रिक्षीका राजकुमार बनकीड़ा करता इपा भा निकला। यह भी मुन्दरीके रूप भीर योवन पर भामक हो गया भीर मुन्दरी को भवने नगरमें लेजाकर एक मनोज महलमें रखा। सुन्दरी का जीवनाकाम कठीर क्रणा मेघटलीं भाष्क्रव हो गया भव उसे मिवाय एक ईखरके भीर किसीका भाषार नहीं रहा। उसने हटयमें ईखरका ध्यान कर प्रार्थना की कि षाज मेरा मर्वस्य लुटा जा रहा है। मेरा सतीत श्रष्ट कर ने के लिये यह नरक्ष राख्य भीच पानिवाला है। इस लिये भीच मेरे सतीत्वकी रखा की जिये !!! राजकुमार भी प्रपनी कुवासना की त्यस करने के लिये भीच चा पहुँचा। परन्तु भीचकी मिष्टमासे देवणकिन पगट हो कर राजकुमारको एडाकर गचपर पहाड़ दिया। वह मुर्कित हो गया।

मूर्कीय जागनेपर पपन किये पर बहुत पक्ताया करने लगा। तथा इसके प्राथित की निये क्रमारी है। हाथ जी है कर जमा की प्राथाना की निक्मारी की प्राचानमार राजकुमार उसकी उसी स्थानपर कोड़ दिया जिस स्थानसे कि वह उसे लाया था। इस तरह कुमारी ई खरका यत्यः धन्यवाद देती हुई उसी भयानक जंगलमें पाई भीर फिर प्रपंत कीवनक दिन व्यतीत करने लगी। भाग्यवणात् उस जंगलसे काशीका धनिक सेठ धनदत्त व्यापार करता हुचा निकला। कुमारीका रोदन सुन उसे विपत्तसागरमें फँमा देख सेठ जीन उससे उसका सब हान पूछा। कुमारीने पपनी आपमेसे पन्त तक की सब दु:खमय कहानी सुनाई। सेठ धनदत्तन उसपर बहुत दु:ख प्रगट किया तथा कुमारी को प्रपनी भाष्त्री बतलाकर प्रपन वर काशीको से गया तथा उम सुख्यूवेक रकता।

यही म्धानन्द कुमार जब न्यापारमें भपनी विलक्षण बुक्तिसे अज्ञातीत सफलता प्राप्त कर भपनी जकाशृमि बैजर्गती नगरको नौटे आग्हे थे तब नगरमे थोड़ो दूर पर उनको अपनी प्राण्यारी सहधिमीणों के भूठ कलंकित होकर निकाले जानेका दु:खद समाचार मिला। समाचार सुनने से इनको मुर्च्छा आ गई। जाग्टत होनेपर अपना सब सामान पिताजीको सेवामें समर्पण करने के लिये अपने सायियों को सौंपकर योगीका भेष रखकर ये अपनी ग्रह्म लक्ष्मीको खोजमें निकली। खोजनें २ ये राजग्रही नगरी में पहुँचे। जब वहाँ भी निराग होना पड़ा तब फिर जंगल २ भटकते फिर्त कई महीनोंका वियोग रूपी दु:ख तया बनवासक क्रेग सहत हुए कागीमें पहुँचे और अपनी सह- धिमीणों से मिलकर वहां कुछ दिन सुखसे रही।

जब वैजयन्ती नगरक राजाको सुन्दरी समीरसाक कलक्वित होकर अन्यत्र जक्वलमें भेजे जानेका तथा कुमार सुखानन्दको उसको खोजमें जक्वल जक्वल भटकर फिरनेका हाल
ज्ञात हुचा तब उन्होंने तुरना सेठ सहापालको बुलाकर
उन दोनोंक खोजनेक लिये घनुरोध किया। तटनुसार भीव्र
सेठजीन चारी तरफ घपने घनुचर भेज तथा घाप खर्य भी
पुत्र व पुत्र बधु की खोजमें निकर्त । खोजने खोजने ये भी
काशीमें पहुँच पुत्र व पुत्र बधू की देख धानन्दसागरमें सम्बद्धी
गये घीर उनकी लेकर शीव्र वैजयन्तीनगरकी चल दिये। सनीरमा सुन्दरीकी अपने कलक्वला बहुतही दु:ख या, इसलिये
स्मत इसके इन्हाफ वगु र नगरमें प्रवेश करनेसे इन्हार किया।

यह इन्साफ राजान खुद पपन हाथमें लिया भीर तिथि दूसरे दिनकी नियत कर दी। पुख्यका प्रताप बड़ा प्रवल होता है। इस बीचमें राक्षिकों जो लीला हुई वह भलीकिक है। मानो देवशिक पतिव्रता स्त्रियोंका न्याय राजासे होना प्रयोग्य समस्त खुद न्याय करनेके लिये इस सत्यु लोकमें प्रवतीर्ण हुई:। राक्षिको नगरके चारों भीरकी चहारदीवारीके सब बड़े बड़े फाटक बन्द हो गये भीर राजाको स्त्रप्र हुआ कि नगरक सब फाटक बन्द करदिये गये हैं। पतिव्रता स्त्रीकं चरण-सार्ण मात्रसेही वे खुल सकेंगे।' प्रात:कालही राजाको नगरक फाटक बन्द होनेका समाचार मिला। राजा को जीवही पपन स्वप्रकी बात याद पाई भीर उन्होंने मौकेपर स्तर: जाकर नगरकी कुल स्त्रियोंको क्रमश: दरवाज़े पर चरण सार्ण करते हुए चले जानेको भाषा दी।

नगरको होटीसे होटी स्त्रीसे लगाकर राजमहिषी तकके चरणीका सार्थ दरवाज़ से होगया परन्तु दरवाजा नहीं खुला। तब सब भेद समभकर राजाने पाकर मनोरमा देवीकी गरणमें सब ममाचार कहकर प्रार्थना की कि है! नारीकुलर हा महापितवता मनोरमा! चलकर प्रार्थना की कि है! नारीकुलर हा महापितवता मनोरमा! चलकर प्रार्थना की कि खारी स्पर्ध दरवाज़े को खोलो और प्राप्ती की कि हिणी विजय वैजयन्त्रीको सार्थ सूमगढ़ लों उड़ाकर स्त्रियोंको लाज रक्को। मनरोमा मुन्दरी दरवाज़े पर गई और परमात्माका ध्यान रखकर दरवाज़े से चरण सार्थ किया कि हमी समय मेवकी सी गड़-

गड़ाइट करता हुषा दरवाज़ा खुल गया। मनोरमा देवीकी पातिव्रतको को चिकी मुदी सारी दुनियों में फैल गयी। जिसे पाज कई हज़ार वर्षों के व्यतीत ही नेपर हमलोग सनकर पपनेको कतार्थ समक्षत हैं तथा उस सरहासाध्वी जगत्पूच्या महिलाकुलकमल वृहामिण मनोरमा देवीकी सध्स्र मुखसे मुताकपठ होकर बारम्बार प्रश्रं सा करते हैं।

मनोरमा देवी भपने राजप्रासादोंको भी नीचे दिखाने वाली गगनचुरको सहलोंसे भाकर भानंदसे पतिसेवाम सम्ब हुई। दोनों दम्पतिने फिर सुखसे संसारयात्राको पूर्णकर इसको भपना भादमें बतलाकर अनलक्षामका मार्ग लिया।

धर्माकी सहिमासे कठिनतर कार्य्य भी सुलस हो जाते हैं। चन्त्र में धर्मा ही की जय होती! धर्माके प्रभावसे मनोरमाने शीलकी सारी पुन; धारण की चौर व्यर्थ चपवाद सगाने वा-स्नोंका मस्तक नीचा किया।

मारीका भूषण गील ही है। इसीसे उनकी गोभा है
गीलवती नारी जिस घरमें रहती है वहां कृतक पातक कभी
नहीं होता है चौर जहां कुलटा रहती है वहां दिन
रात कृतक पातक रहता है ऐसा जिन गासनका बचन है।
गीलहीसे गिवपदकी प्राप्त होती है, रुष्ट्र चहमिन्द्र चादिके
पद भी इसीक सेवनसे मिलते हैं गीलवतीकी विपत्तिकी घड़ी
भी मुलभतासे कट जाती है चौर पग पगर्म मुख ही सुख
मिलता है।

म'सारमें शीलकी सहिमा अपरम्पार है। यही सार है और इमीसे भवनागर का देड़ा पार है। शील और पित-व्रत धर्म पानने का प्रत्यक्त फल इसमें बढ़कर और क्या होगा कि स्वर्ग के देवोंने भी मनोरमाकी सहायता की। इमलिये जगत्मात के नरनारीको शीलव्रत धारण करना उचित है।

वह दिन कैसे महत्वका होगा जिस दिनकी भारतकी गीरव महमीको फिरसे प्राप्त करनेके लिये मनोरमा सुन्दरी कैसी गटहलकी पाकर भारतके हरेक गटहत्वकी घरमें जन्म लंगी। उस दिनकी प्रसंघा नहीं की जा सकती। इस परमात्मासे पार्थना करते हैं कि हमें उस दिनके शीघ दर्शन हों भीर ऐसी ही पतिव्रता हम।रे ग्रहोंको भपनी चरणरजसे पविव्र करें।



भूष्टस्सस्य भूष्टभूष्टभूभभूभभूष्ट्र इढ़बती श्रीमती रानी रयनमंजूषा । हिं शिहस्सस्य स्थाहभूष्टभूभभूभूभू

💥💥 🎉 नी रयनमञ्जूषा इंग्रहीपकी सन्बाट् कनक-केतुकी कन्या थीं। इनके चित्र विचित्र नामक दो भाई भी थे। राजकुमारी रयन मञ्जूषाका वास्यावस्थाका सीन्दर्ध प्रपूर्व कोटी ही भवस्थां में इनके पठन-पाठनका योग्य प्रवन्ध किया गया जिससे थोडेही दिनोंमें ये स्त्रियोचित शिक्षासे परिपूर्ण हो गई तथा यपनी बृद्धि भीर गुणोंसे पिता साता के चित्तमें चसीम पाद्वाद उत्पन्न करने लगीं। कुमारीकी यीवनावस्था समीप पाई देख राजाको इनके पाणियहणकी चिम्ला इर्षे। एक टिन राजा कनककेत् चहितीय गुकीसे विभूषित भविष्यदक्ता जैनमुनिके दर्भ नोको गये घीर उन्होंने पुत्रीके पाचित्रहण विषयमें भी प्रश्न किया। विसचन योगी मुनि महाराजने कहा कि भागकी राजधानीमें सहस्रक्रट नामका देवालय है उसके किवाड प्रत्यन्त भयद्वर भीर मज-नृत है। सङ्घापराक्रमी बोद्धाने सिवा उन्हें कोई खोल नहीं

सकता है। जो बीर पुरुष उनको खीलीगा वधी रयन सम्बर्धाका पाणियहच करेगा। राजधानीमें पाकर राजाने सहस्रकूट टेवास्यवर पहरा बैठा दिया और भाषा दी कि को खित इसके किवाडोंको खोले त्रत इसको उसका समाचार टिया जावे।

सुप्रसिद्ध चम्पापुरीका राजा श्रीपाल जी कुष्टरोगसे पीडित ही पपनी राजधानीसे निकल जक्कल जक्कल फिरता या पुर्खोदयसे चचानक उसे मती साध्वी महापतिवता राज-कुमारी मैनामुन्दरी समान पत्नीकी प्राप्ति हुई। जिसके उद्यी-गसे उसका गरीर कुष्ट रोगसे निर्देत्त होकर बहुत सुन्दर हो मया। अपनी प्यारी स्त्रीचे देश पर्यटनके लिये विटा होकर कीमाम्बीपुरके प्रसिद्ध व्यापारी धवल सेठके साथ पपनेको गुप्त रखे हुए साधारणजनके समान राजा श्रीपास पुमता घूमता इंसद्दीपकी राजधानीम आ पहुँचा। यह जैनधर्मका पक्का खडालु था। इसलिये श्री वीतराग परमेखरके दर्श नोंकी खोजमें गहरमें निकला। खोजते खोजते यह उसी सहस-कूट चैत्यानयके पास भा पहुँचा जिसके किवाड किसीसे खुनतं भी नहीं थे। राजा श्रीपानको दर्धनोंकी षड़ी उत्करहा थी इसलिये उन्होंने इंग्लरका नाम सारण करके किवाड़ में पूर्णवलके साथ धक्का दिया। कर्षभेदी प्रव्दके साथ किवाड़ खुल गये और मंदिरके भीतर प्रवेश कर भिक्तभावसे श्रीभगवान्के दर्शन कर पपने नेत्रोंको ग्रान्त

किया। इधर किवाइ खुलनेकी भावाज्ञ पश्रदारों में कोला-इल मच गया। शीच्छी महाराजको ग्रथसमाचार सुनाया गया। राजाने भवनी कन्यांके योग्य वरकी भनायास प्राप्तिसे प्रसम्त पानंद मनाया तथा श्रभ तिथिमें रयनमञ्जूषाका वि वाह राजा श्रीपालकं साथ करदिया। राजा श्रीपाल कुछ दिन पाणनी नवीन ससुरासमें पत्यन्त सुखके साथ रहे। परन्तु जब व्यापारी धनकुवर धवल सेठ अपने व्यापारकी समाप्तिकर इंस-हीपसे विदा होने लगा तब राजा श्रीपालको भी भपने देश पर्यटनकी याद बाई बीर वे जानको उदात हुए। यदापि उन्होंने राजकुमारी रयनमञ्जूषाको विदेशके क्रोशीको भयानक रूपसे बतलाकर उसकी राजप्रासादोंमें रहनेकाही अनुरोध किया परम् कुमारीने पतिवियोगके दःखीके सहन करनेकं लिये भवर्मको भसमर्थ बतलाकर तथा पतिकी सेवाडी भवता श्रेष्ठ धर्म समभकर पतिक साथ रहनाही श्रेष्ठ समभा भीर साथ चलनेको उदात इई धन्तम राजा श्रीपाल भीर रानी रयनसञ्चवा दोनी प्रतावी धवनके जहाज़र्स बैठकर विदेशको प्रस्थानित इए।

प्रयाह समुद्रके एह भागपर सक्तीवान् धवन सेठका जहाज़ वायुवेगसे समा जा रहा है। जवर प्राकाण चौर नीचे पानीके चारी चोर कुछ भी दिखाई नहीं देता है। जहाज़परके सब याती घपने चपने कार्यमें मन्न हैं कि— यकायक धवन सेठकी कुटिस दृष्टि सकुमारी राजकुमारी रयनमञ्जूषापर पड़ी। रयनमञ्जूषाके रूप, यौवन, कोमसता चादि सराइनीय गुणींकी देखकर धवल सेठकी कामदेवके तीन्छा श्राप्तेका निशाना बनना पडा। उसकी बृद्धि नष्ट हो गई और कुवास्ताने उसके इदयपर अपना पूर्ण आधिपत्य जमा लिया चौर उसकी रच्छाकी पूर्तिके लिये वह प्रश्व मोचने लगा। उसने विचार किया कि अगर श्रीपानको इस पर्यायसे मुक्त कर दूँ तो रयनमञ्जूषा मेरे डाय पा सकती है। इस क्रिटिल विचारकी कार्य रूपमें परिचत कर-नेकी लिये उस नष्टबुडि दराचारी धवन सेठन श्रीष्ट्रही राजा त्रोपानको समुद्रमें गिरवा दिया भीर स्विम दु:ख प्रकाशित वार्न लगा। राजा श्रीपाल सब कारण समक्त स्थिर चिश्लेस परमेखरका नाम सारण करने लगे। सीभाग्यसे कुछ टेरके पश्चात् उन्हें एक काठका तख्ता बहता हुचा मिल गया। उसीपर वह बैठ गये। अपने जीवनके बचनेकी आधा समक्र कर उन्होंने चिटानंट पविनामी परम्यपरमात्माको कोटिमः धम्यवाद दिया भीर उन्होंका सारण करते हुए बहुत चले गरी।

यहाँ जब कोमल चित्त स्थीना राजकुमारी रयनमञ्जूषा को अपने पतिकं समुद्रमें गिरनेका हाल जात हुचा वह तुरत मुहिंग होकर गिर पड़ी। उसकं दु:खका पारावार नहीं रहा। जो राजकुमारी अपने पतिके थोड़े दिनीके विकोहके दु:खोंको भी सहने में असमर्थ थी उसे अपने खा-सीका इस जन्म भरके लिये विकोह हुआ। है। कहिये उसके

दु:खका पना कैमे हो सकता है। जिसका जीवनाधार समुद्रकी पविरत्न तरक्षोंमें लुप्त हो गया है उसे धेर्य कैसे हो सकता है। रयनमञ्जूषा मूक्सि सचेत होनेपर खामीका सारण कर फूट फूटकर रोने लगी। उसकी प्रतिध्वनिस सारा जहाज़ काँप उठा। उसने भीजनादि त्याग दिया केवल खामीके नासकाही सारणकर प्रपने जीवनको व्यतीत करने लगी। प्रभी तक उस सरल साध्वी सन्दरीको यह नहीं जात हुआ है कि यह कुक्तत्य रभी नरिप्रााच धवन सेठका है।

धवन सेठ प्रपने कार्यकी सिहिका समय निकट जान बहुत प्रसन्न हुआ और उसने कुमारीकी श्रीपालसे प्रस-सुष्ट कराकर प्रपने जपर प्रसन्न करानेके लिये एक दूतीकी कुमारीके पास भेजा। दूतीने कई चालोंसे कुमारी को समभाया परन्तु कुमारी तो महापतिवता पत्नी थी वह कैसे प्रपने स्थिर न्यायमार्गके कत्योंके विक् कार्य करमकों थी। उसने दूतीको कुब धमकाया। जब धवल सेठने दूती से प्रपने कार्य की सिह्न होना प्रसंभव समभा तब वह स्वयं कुमारीकी सेवामें अकर प्रार्थना करने लगा कि तुम्हारा पति तो प्रव परलोक चला गया है तथा तुम्हारी इस समय किशोरावस्था है। तुम प्रपने वैधन्यका किस तरह निर्वाह कर सकोगी। तुम्हारा पति श्रीपाल मेरे पास ही नौकर था। तुमको चाहिये कि मेरे जपर प्रसन्न होकर हिन्हात सुखोंको भोगी हत्यादि र उसने प्रपनी प्रशंसा की बहुतसी बातं

कहीं। परन्तु जब रयनमंज्ञुषाने उस दृष्टकी एक भी बातपर ध्यान नहीं दिया तब यह बलातकार उसका सतील भंग करने के लिये उदात इपा। उस महापतिव्रता भवना राजनुसारी रयनसंज्ञान पपना सर्वस्व खोया समभ भीर मिवाय उस चिदानंद भनन्त्रशतिवान परमात्माके कोई इस दु: ख से क्टकारा करनेवाला न जान प्रार्थना करने लगी-कि है प्रभी! यह नीच सुभ पवलाका सर्वेख इरण करने के निये उदात इपा है। श्रीव्र मेरी रचा कीजिये। पवला के मतीत्वकी रक्ताक लिये भीच दैवगकिने प्रगट होकर पपनी प्रखंड मितिसे धवल सेठकी मुक्कित कर दिया घीर उसे भनेक प्रकारके द:ख देकर भगने कियेका पूर्ण फल दिया! अब धवन सेठको ज्ञात हथा कि पतिव्रता नारियों में कितनी प्रति होती है भीर उनका तेल क्या नहीं कर सता है। उसन अपने दु:प्कृत्योंके प्रायस्ति के सिये परमे-खरकी सुति की धीर राजकुमारीसे भी खमा की प्रार्थना की । उस समय से धवल सेठकी बुखि ठीक पुर् भीर फिर रयनमं जूषाको किमी तरह का मानसिक शारी-रिक दु:ख देने तक का उसने विचार भी नहीं किया। यहाँ राजा खीपाल काठके तखुतिपर बैठे तैरते २ भपने

यहाँ राजा योपास काठके तख्तिपर बैठे तैरते २ अपने पुरुषकर्मी के प्रतापसे कु कुमहीपके किनारे समुद्रसे पार हुए। किनार पर वहाँ के राजाके बहुतसे कर्म चारी इसस्विये पहरा दे रई थे कि उसे ज्योतिषियोंसे मानूम हुआ था कि उसकी राजकुमारी गुणमाला का पाणियक्षण वही पुरुष करनेको समर्थ है जो समुद्रमें वाद्य बलसे तैरता द्वपा किनारे घावे-गा। तदनुसार कर्मचारियोंने राजा श्रीपालको घादर सत्कार से लेकर राजाके निकट उपस्थित किया। राजाने प्रसन्न होकर घपनी ध्यारी पुत्रीका विवाह श्रीपालसे कर दिया घीर श्रीपाल घपने भाग्य के चमत्कार पर धायर्थ करते द्वप नववध्के साथ धानन्द पूर्वक रहने लगे।

धवल सेठका जड़ाज़ भी समुद्रही लांघता हुचा हमी कंकुमहीपके किनारे चाया। सेठने राजाकी भेंटके लिये चमुपम बलुभोंको लेकर राज-सभाकी चोर गमन किया। जब श्रीपालको राजसभामें उचासन पर प्रतिष्ठित हुए देखा तो सेठके होग्र उड़ गये। यह शीप्त राजासे भेंट कर विदा होने लगा। बिचारा कि श्रीपाल सुभसे घव्य्य बदला लेगा। इसका राजाके यहां मान है इसिय चाहे जो जुड़ करा सकता है। यत: इसकी प्रतिष्ठाको नष्ट करना चाहिये। सोच समभाकर उसने भाटोंको बुलवाया कार्यसिंहिपर उन्हें बहुतसे क्पये देनेका वादा कर बिदा किया और राजसभामें जाकर श्रीपालको चपना संबन्धी पुकारकर उसे भाट सिंह करने के लिये कहा। तथा भाट कोगोंकी बृद्धि चंचल होती ही है उन्होंने राजसभामें जाकर किसीने श्रीपाल को चपना पुत्र किसीने भतीजा किसीन भाई चादि संबन्ध ग्रह्मेंसे संबोधन किया। राजाको श्रीप्त भ्रम होगय। कि

त्रीपाल जातका भाट है। भवनी जातिका खोवकर इसने मेरी पुत्री का पाणियष्ठण किया है। राजा बहुत बष्ट ही मया और उमने श्रीपालको स्लीटंड की श्राचा दी। श्री-पाल महायोधा ये वे इस नाटक का पन्तिम हम्स देखना चाइते ये इस्लिये उन्होंने इस विषयमें क्रक नहीं कहा परन्त जब उसकी प्यारी पत्नी गुकमाला इससे भयभीत ही उनके चरणीयर गिरकर उनसे जाति चादिके विषयमें प्रश्न कर उत्तर की दक्का करने लगी तो उन्हों ने समभाकर कहा कि समुद्रके किमारे पर एक व्यापारी जहाज ठहरा हथा है उसमें रयनमं ज्वा नामक एक राजकुमारी होगी उससे मेरा सव डान प्रकेना। वह विस्तार सहित तुन्हारी सब श्रांकाशी का समाधान कर्रगी। तदनुसार राजकुमारी गुषमासाने जाकर क्मारी रयनमं जूषासे महाराज श्रीपालका सब वर्णन तथा धवन सेठ को कुटिनता की सब कथा सुनी। परस्पर वार्तानाप करती हुई दोनी क्मारी राजा के समीप चाई श्रीर ययार्थ हाल समभावर राजा श्रीपालको बन्धनसे सक कराया। धवलमेठकी सम्यूर्ण कृटिसता प्रकाशित हो गई भीर उसके किये भनुसार राजा ने उसे भाखना कठोर टंड टेने को इच्छा प्रगट की। परन्तु ग्रहचिक्त दयातु राजा श्रीपासने जब भवन ही कारणसे भवल सेठ का सर्वस्व नाग द्योता देखा तो उसको चमा कर दिया।

इस तरह राजा श्रीपाल राजकुमारी रयनमंजूषा की

साथ लिये हुए कई देशोंका पर्यटन करते हुए उच्जेन जाकर रानी मैनासुन्दरीकी ले भत्यन्त विभूतिके साथ चम्पापुर भपनी पुरानी राजधानीमें भाकर भानन्द से रहने लगे। बहुत समय सुन्तके साथ रहने के प्यात् एकदिन मैचपटकों को किय भित्र होते देख राजाको वैराग्य हो गया भीर वै दीचा लेकर जह लोंमें तप करने के लिये चले गये।

दधर जब रवनमं जूषाने देखा कि इमारे पितदेवने सर्वकाखायकरों जैने न्ही दोका धारक करती है तो पव पिति विना संसारमें नारियों का रहना व सांसारिक सुखों का भीग करना किस कामका? ऐसा विचार कर पूर्व घटना- भों के स्मरण होने से संसारका पमार खरूप जान किमी पिर्काका से समेप जाकर दोचा सहण की घीर व्यावकों के पश्च स्मर्ग तो सोर व्यावकों के पश्च स्मर्ग तार शिवाबत तथा तीन सुखबत इस प्रकार दादम ब्रतों का बड़ी योग्यतासे क्रतीचार कीर क्षाचार रहित पालन किया। प्रनित्य क्षारणादि हादश भावना- भों की भावना करके खुधा-ह्या इत्यादि परीष हों को भली भांति सहन करने लगी एवम् निरन्तर हो घपने समय को खाध्यायादि में वितान लगी। क्षामण्णः एकादश प्रतिमाभी को धारण कर कमीं की निर्जरा की कीर क्षामी समाधि सरण हारा पालोत्सर्ग किया भीर खर्गलक्ष्मीको प्राप्त किया।

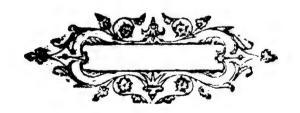
इसारे वाचकों ने इस चरितको पढ़कर संसारकी प्रमृतिका उदाइरण भन्नो भौति जाना द्वीगा। इस चरितसे

पाठकींको इसका जान अवध्य हुआ होगा कि सज्जन कैसी ही दशामें क्यों न हों एवं दुष्ट लीग सज्जनसे चरमसीमा की दष्टता भी करें पर वे भपनी सज्जनताका परित्याग कभी नहीं करते। पर यह बात अवस्य है कि सच्चे धनीताला चुद्रों की चुद्रता में दु:खित कभी नहीं होते। यही कारण है कि दुष्टमति धवल सेठ के द्वारा कई। वार घोर उपद्रव करने पर भी उसके दुष्कृत्यों का उसे बटला देने के लिये नीचों की तरह यीपालने नीच चेष्टा कभी नहीं की। यीपाल को मारने की चेटा की गई भीर उमका निरादर कराने क निये भी धवन मेठर्न नीच उपायोंका अवलम्बन किया पर श्रीपाल जिनेन्द्र भगवान के शामनमें श्रटल भीर भचल यहा होने के कारण द:ख के भवनरीं पर-भी भना-धारण सर्खांको भोगा। मबसे ऋधिक ध्वान देने योग्य बात रम चरित्रमं रयनमं ज्याकी पतिभक्ति है। घोर भापत्ति भाने पर भीर धवलमंठ की भयावनी विभीषिका भी से भी पतिव्रता रयनमं जूषाका चित्त पतिभित्तिमे विचलित नहीं हुमा किन्तु पतिप्रेममें ही पगा रहा। क्या विचारशीन पाठिका इस षोर ध्यान देंगी है मनुष्य समाजकी उन्नतिकी लिये इस बातकी भावभ्यकता है भीर भ्रत्यन्त भावग्यकता है कि प्रतिपत्नीका परस्परमें यथोचित प्रेम हो। पर खेद है कि शिक्षान मिलनेके कारण इमारे स्त्री ममाजमें पतिभक्ति या पति-पे मकी उतनी मात्रा नहीं है जितनी होनी चाहिये।

समाजकी वास्तविक उन्नि में भन्य बाधाभोंकी तरह स्ती समाजका शिचित न होना उन्हें अपने कर्त्त व्योंका जान न होना यह भी एक प्रवल बाधा है। हम उस समयकी प्रतीचा कर रहे हैं कि जिस समय हमारे समाजमें स्यनमंज्ञ षा जैसी पतिपरायणा नारियां उत्पन्न हों भीर जातिको फिर भी एकबार भपने सतुक्रमीं से उन्नतिशास्त्रिनी बनायें।

धन्य है यह भारतवर्ष ! जहां ऐसी २ रसणीरत जन्म धारणकर इम भूमिकी पवित्र कर गयी हैं। यद्यपि ऐसे उदाहरणींसे भारतका सम्पूर्ण इतिहास भरा पढ़ा है तथापि हमन कुछ भादर्भ होने योग्य भी सबती, सतीत्वपरायणा नारियोंक चरित्रोंका यह सङ्गृह किया है। सृहृदय पाठक पाठिकाएँ इससे भवश्य भित्ता यहण करेंगी भीर उनका भनुकरण करेंगी यही भाशा हृदयमें रख यह चुद्र लेखक सम्पत्ति विदा होता है।

भी प्रान्तिः! प्रान्तिः!! प्रान्तिः!!!





⁸⁸ पुस्तक मिलनेके पते :

- (१) कुमार देवेन्द्र प्रमाद जैन, खारा।
- (२) मैनेजर,मनोरञ्जनकार्यालय, आरा।
- (३) जैनहिन्दीयन्यरत्नाकर कार्यालय,

र्ह्मीगाचाग, गिरगांव, बस्बई !

(४) मंचालिका, श्राविकाश्रम,

ताडदेव, जुबिनीबाग, बस्बई।

(४) जैन ग्राविकाग्रम, जैन मन्दिर,

लहारी टीलाः मरादाबाद ।

(६) श्रीनन्दिकशोर जैन,

म्यादादमहाविद्यान,यवनारम मिटी।

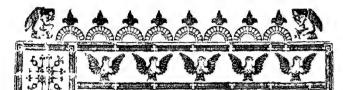
(१) बाबुकीर्त्तप्रसाद जैन बी० ए०

मन्त्री म्दीशिज्ञा विभाग,

भारतजैनमहामण्डल, मेरठ मिटी।



कन्या-विद्यावलिम्बनी पुम्तकमाला अतीव उपयोगी और शिक्षापद पुम्तकें शीव निकलेंगी. छप रही हैं।



वनवासिनी.



छेखक∼ उद्यठाल काशलीवाल ।







वनवासिनी।

सत्यवादीके दूसरे वर्षका उपहार ।



वनवासिनी।

47073*6446

(एक सुन्दर सामाजिक आख्यायिका)

लेखक-

उदयलाल काशलीवाल

और

प्रकाशक-

हिन्दी-जैनसाहित्यभसारक कार्यालय

बम्बई।

प्रथम संस्करण] अप्रेल १९१४ [बिना मूल्य.



मुद्रक-रा. चिं. स. देवळे, मुंबईनेभव प्रेस, सर्व्हेट्स् ऑफ इंडिया सोसायटीज होम, सँबर्स्ट रोड़, गिरगांव-सुंबई.

प्राकशक-बिहारीलाल जैन, मालिक-हिन्दी-जैनसाहित्यप्रसारक कार्यालय

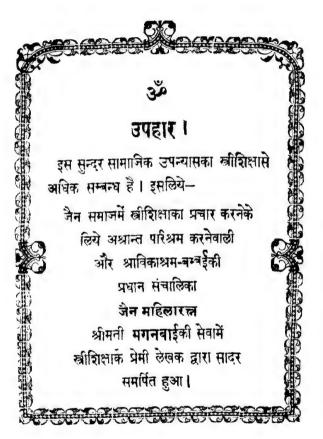
चन्दाबाड़ी गिरगांव-बम्बई ।



धन्यवाद पुषाञ्जलि ।

हम श्रीयुत मालेगांव निवासी रामचन्द्रजी लालचंद्रजी कालाको धन्यवाद देतें हैं कि उन्होंने सत्यवादीका उपहार देनेके लिये इस पुस्तकको अपनी ओरसे प्रकाशित करनेकी आज्ञा देकर हमें कृतार्थ किया। आपकी इस छोटेसे पत्रपर जो श्रद्धा और प्रेम है, उसके लिये हम आपके चिर कृतज्ञ हैं। हम अपने और और जाति हित-चिन्तकोंसे भी प्रार्थना करते हैं कि वे भी उक्त सज्जनका अनुकरण कर ऐसी उपयोग पुस्तकोंके प्रचारसे समाजको लाभ पहुँचनेक प्रयक्त करें।

लेखक-उदयलाल काञ्चलीबाल.



श्रद्धेय,

असमयमें आपके वियोगसे मुझे जो दुःल हुआ है, उसे शब्दों द्वारा बतला देना अशक्य ही नहीं पर असंभव है। परन्तु ऋषियों-के—"अवश्यं हानुभोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।" इस वाक्य पर विश्वासलाकर सन्तोष करना पड़ता है। क्योंकि सिवा इसके कुछ गति ही नहीं है। यह मेरे भान्यविषय्यका ही देख था जो आपको अकाल कालके गालमें फँसना पड़ा। अन्तु। आपका आत्मा न्वर्गमें खून मुखी रहे, यह मेरी आन्तरिक इच्छा है।

आपका स्मरण मुझे भी सदा बना रहे, इसके लिये यह पावित्र पुस्तक आपके स्मरणार्थ अपने समाजकी सेवामें भेंट करता हूं । समाज इसके द्वारा लाभ उटाये यह मेरी कामना है ।

अ**नुज-**

ळाळचंद काळा।

लेखकके दो शब्द।

यह एक गुजराती पुस्तकका परिवर्तित रूपान्तर है । गुजरातीमें इस पुस्तकका नाम है ऋषिदत्ता और इसके छेखक हैं हमारे मुपरिचित श्रीयुत वाडीछाछ मोतीलाल शाह । हमने इसका नाम वनवासिनी रक्खा है । इसके पात्रोंके नाम भी हमने बदल दिये हैं । कथाभाग-का भी कहीं कहीं हमने परिवर्तन कर दिया है । वह केवल मुन्द्रता और प्राकृतिकताके लिहाजमें ।

पुस्तक छोटीमी है, पर बहुत उपयोगी है। विवाह किस उद्देश्य-म किया जाता है : प्रेम किस कहते हैं ? पति और परनीमें किस प्रकारका प्रेम होना चाहिय ! ये ही बाते एक मनोरंजक आख्यायिका-के द्वारा इसोम बतलाई गई है । अपने समाजके लिये हमें पुस्त-क उपयोगी जान पड़ी इसलिये उमीका यह हिन्दी रूपान्तर पाठकोंकी मेट किया गया है। इसे पटकर पाठकोंने कुछ भी शिक्षा प्रहण की ती हम अपने श्रमको सार्थक समझेंगे।

गुजराती लेखक महाशयक भी हम अत्यन्त आभारी हैं जो उन्होंने समाज और देशको लाभ पहुंचानेकी दृष्टिसे ऐसी उत्तम पुस्तकका संकलन किया और जिसे रूपान्तर करनेका हमें सामाज्य प्राप्त हुआ!

देखक-

उदयबास काशसीबास ।



बनवासिनी।

पहला परिच्छेद।

दुखीको दिलासा!

"यह क्या विवाह है ? बिना दो मनकी एकताके विवाह करना क्या पित्र सम्बन्ध कहा जायगा ? पितानीके आग्रहते मैं अपने विरुद्ध राजकुमारी उपाके साथ विवाह करनेके ठिये जाता हूं-हा ! केवल फेरा फिरनेके लिये—नहीं, विवाहकी गांठ बाँधनेके लिये ।

"गरीन कुन्द, तेरे ऊपर यह कैसा निद्य कलंक ! तेरे कोमल हाथोंसे मनुष्य हत्या हो, वह भी प्रतिदिन और उसे कोई जानता तक नहीं, यह नहीं माना जा सकता । कुछ हो, इसमें कुछ न कुछ गुप्त रहस्य जुरूर हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है, तू निर्दोष है—निष्कलंक है। पिताजीने उचित विचार न करके ही तेरा वध कराया। हाय, कैसी निर्देयता! कैसी हृदयको भेदनेवाली बात ! कमनसीन वनवासिनी, तुझे तेरे सुखी स्थानसे खींच लाकर मैंने जो तेरे साथ विश्वासवात किया है उसके लिये, जब तेरी कोमल गर्दनपर झगझगती तलवार पड़ी होगी उस वक्त, तूने मुझे कितने शाप न

दिये होंगे ? जान पड़ता है उन शापोंके फलसे ही मैं अपने संगी सा-थियोंसे अलग होकर ऐसे नीरान भयंकर जंगलमें आ पड़ा हूँ और थकावट तथा प्याससे मरा जा रहा हूँ । पर नहीं, यह मेरा भ्रम है। एक निरपराध भोली भाली वनवासिनी बालिकापर यह दोष कैसे लगाया जा सकता है। यह कोई नियम नहीं कि जीवको इसी भवका कर्म फल देनेवाला होता हो, क्योंकि बहुधा करके पूर्व जन्मकृत कर्म ही इस भवमें सुख दुःखके देनेवाले होते हैं।"

जिस समय एक युवा पुरुषके मुँहसे कॅपते हुए ओठों द्वारा ये उद्गार निकल रहे थे, उस वक्त सूर्य अपने प्रखरतेजसे तप रहा था, उसके त्रासके मारे भय पापियोंके हृदयमें जा छुपा था, अंधकारको विषयी पुरुषोंकी आँखोंमें स्थान मिला था और रुज्जा कामुकी स्त्रियोंके पांवतले जा दवी थी।

मूर्यकी प्रखर किरणें जैसी श्रृथ्वीको भेद रही थीं उसी तरह इस रास्ता मूळे हुए युवाके नित्तको भी भेदनेमें वे पीछा परा न देनी थीं। अपनी हालत देखकर युवाकी आँखोंसे आँसुओंकी बड़ी बड़ी बूँदें गिरने लगी। उसके मुँहसे फिर उद्गार निकलने लगे—

" कृन्द, प्यारी कुन्द ! पुरुष क्रियोंको निरंतर गावियाँ ही देते हैं, उनके दोषोंको ही देखा करते हैं, उनकी और सदा बहमकी नजरसे देखा करते हैं, यह कितना अन्याय है ? नैसा तुझपर यह कलंक आया है, वैसा ही यदि मुझपर आया होता तो कभी पितानी उसे नहीं मानते । पर तू तो खी थी न ? और खियाँ विषकी बेल होती हैं, छल क्षेपटका समुद्र होती हैं और झूटकी नाल गिनी जाती हैं, तब तेरे

विषयमें रजका यदि पर्वत हो तो आश्चर्य क्या ? तुझे अपना बचा-व करने तकका तो हक नहीं, क्योंकि अपनी रक्षाके लिये—निर्दोषता सिद्धकरनेके लिये—भी यदि स्त्री पुरुषोंके सामने कुछ कहे तो वे उ-द्धत बताई जाती हैं और उनका ऐसा व्यवहार दोषावह समझा जाता है। रंक कुन्द! तूने अपने आप अन्याय सहा । क्यों नहीं तूने अपनेको निरपराध सिद्धकरनेकी हिम्मत की? तू कम पढ़ी होकर मी सची शीलवती थी, बालिका होकर भी तेरे हृदयमें प्रेम था और झूठे कलंकसे अपराधिनी टहराई जाकर भी तू धर्माचारिणी थी; बतला तो, ऐसा कीन जान सकेगा ? ''

युवाके उद्गार जैमे पहले वायुके साथ मिल गये थे अबकी बार ऐसा न हुआ—उसके शब्दोंके प्रवाहका घका एक साधुके कार्नोमें जावर लगा। उसमे साधु चमक उटा। यह साधु पास ही एक झाड़ी-में फूमकी झोंपड़ीमें रहता था। उसे युवाके शब्द कुछ परिचितसे जान पड़े। वह थाड़ी देरतक म्तब्धमा खड़ा रह गया। साधुके कार्नोमें युवाके बहुन थोड़े ही शब्द पड़ पाये थे, पर इतनेहीमें उसके मुहूँ-पर शर्म और हर्पकी लहेरें लहराने लगीं।

साधुने भी अभी नवीन जवानीमें पैर रक्खा है। उसके शरीरकी सुंदरता देखते ही बनती थी। छावण्य-धारा उसके अंग अंगसे छूट रही थी। उसकी सरल और विशाल आँखें हरिणको शर्मिन्दा करती थीं। उसके सुन्दर और गेरि मुँहको प्रकृतिने मूछोंसे कलंकित करना उचित नहीं ममझा, पर तब भी उसने उसके बदलेमें साधुकी निर्देषता और सरलता बतलानेके लिये उसकी कीरनासाके दोनों और दो छाप लगादी थी।

थोड़ी देरतक तो साधु राजकुमारकी और देखा किया । परन्तु जो मुँह कोमल होनेपर भी शत्रुओंके हृदयमें देखने मात्रसे घड़कन पैदा कर देता था, और जो विशाल और प्रकाशमान आँखें अपने तेजसे अच्छे अच्छे शूरवीरोंको नीचा दिखाती थीं, उसी मुँहको रंक और आंखोंको अश्रुमयी देखकर योगी अब देरतक वहां नहीं उहर सका । वह उसके सामने आकर राजकुमारसे बोला—

भन्यपथिक, इस जवान चेहरेपर कष्टकी रेलार्ये क्यों ! हाँ कदा-चित् वृद्ध पुरुष तो अपनी वृद्धावस्थाके दु:लसे, या पहलेको कष्टोंकी याद हो जानेसे या संसारके मुखेंको बारबार देखनेसे क्लेशित हो सकते हैं—संसारकी दशापर उन्हें कंटाला आ जाना संभव है, पर जिसके पास प्रकृतिकी सैंकड़ों ख़ूबियां मुकुलित फूलकी तरह अभी-बन्द पड़ी हैं और जिसे प्रकृतिकी हजारों चीजें और बनावरें देखना चाहती हैं, जिसके साथ विचार करना चाहती हैं. जिससे कुछ सीखना चाहती हैं और जिसक साथ आनन्द भोगनेकी इच्छामे जिसे आमंत्रण दे रही हैं, ऐसा जवान किसलिये शोक-सागरमें डूबा हुआ है ?

कुमार सहमा चमक उठा । वह यह समझकर, कि योगीने मेरे मनकी बातें जानलीं, लिज्जित हो गया । उसने योगीके प्रश्नका कुछ जबाव न दिया । यह देखकर योगीने भी अपनी बातोंका ढंग बदला । वह बोला—जान पड़ता है तुम थके हुए हो, तुम्हें प्यास लगी होगी । आओ, सामने मेरी कुठी है, चलकर उसमें कुछ समयके लिये आराम करना । मुझ गरीबको कुठीके द्वार मुसाफिर और दुखीजनोंके लिये सदा खुळे रहते हैं । राजकुमार योगीकी बातका कुछ जबाब न देकर उसके पीछे चला, पर उसके औठ अभीतक सीये हुए ही थे। विवाहके लिये पहरे हुए राजकुमारके वस्त्रोंको सूर्य विजलीकी तरह चमका रहा था, मानों-योगीके बल्कलकी हँसी करके वह उसे कह रहा है कि इसे दूर फैंककर ऐसे ही वस्त्र तू भी पहर। योगीकी मधुर मन्दगति ऐसा मान कराती थी, मानों-नव विवाहिता कन्याके पीछे चलता हुआ वर जैसा रार्माता हो।

जैसे जैसे वे आश्रमके पाम आते गये वैसे वैसे राजकुमार उस जगहको पहचानने लगा । उसके दिलमें एक दम विचार उठा "क्या यह वही झाडी है जिसमें पहले पहल मेंने कुन्दको देखा था े यह वहीं आश्रम है जहाँ बैटकर योगीन अपनी कन्याका सब हाल मुझसे कहकर उरे स्वीकार करनेकी मुझने प्रार्थना की थी ? क्या यह वही मृग है जिसके माथ मृगनयर्ग कुंद्र खेळा करती ! क्या यह वही लता-गृह है जहाँ प्यागिके हायकी गृंथी हुई फूलेंकी सेजपर बैटकर मैंने प्रियाके साथ वनफल खाये थे और अनेक प्रकार विनोद किया था ? इतनेहीमें वे दोनों आश्रमके पास आ पहुँचे । योगीने धीरेसे अपनी कुटीका द्वार खोला और दोनों उसके भीतर गये। इसके बाद योगीने कुछ मुन्दर और स्वादिष्ट वनफल और एक निर्मल और शीतल जलका भरा छोटा कुमारके सामने रखकर उससे खानेके छिये आग्रह किया और उसके मुँहकी ओर देखा । '' हाय ! कुन्द भी मुझे इसी तरह प्रेमके साथ खिलाती और मेरे मुँहकी ओर देखा करती।'' इस विचारके साथ ही उसके हृदयको चीरकर यह वाक्यानिकला—" तोक्या वह चली ही गई! " और इसीके साथ ही वह मुच्छित हो गया। योगी उसके मस्तकको अपनी गोदीमें रखकर उसके मुँहपर हवा करने छगा। थोड़ी देर बाद जब उसे होश आया तब योगीने उससे पूछा—क्या गया? कहा गया? सूठी बक बक और आत्मक्लेशको छोड़ दीनिये। मैं एक सुन्दर क-विता आपको सुनाता हूँ। उसे सुनिये। उससे बड़ी शान्ति मिलेगी।

कुमार,

मोहपारामें पड़कर जो अपनेको सुखी समझते हैं, काँटोंकी शय्यापर सांकर उस फूलकी गिनते हैं। होती अप्नि कभी नहिं शीतल नाहे जितना यस्न करो. वैसे मोह-मद्यको पीकर कभी न सुखकी चाह करो॥ क्षणक्षणमें परिवर्तन होता जिसमें कोई नित्य नहीं. वैसी जगह कभी क्या मिलता शान्तिबन्दुका लेश कही ? बिजलीकीसी चमक इमकमें फैसकर जो मोहित होते, अविनाशो सुखरत्न फैंककर भ्रमनिदामें वे सांते ॥ महिलाओंकी रूपसुधाको पीकर जो खुश हाते हैं, मानों अपने पुण्यकर्म वे पापपंकसे धाते हैं ॥ हाय ! माहविभ्रम है कैसा जो, विष अमृतसा जचता, सच है-जिसने पिया धतुरा उसे सर्व साना दिखता ॥ पिय क्रमार ' यदि सचे सुखका चाह तुम्हें है पिय लगती, तो अब भीषण मोह विद्विकी शान्तकरा ज्वाला जलती। आतुर हृदय शान्त जब होता तब मिलता कैसा आनंद, इसका अनुभव तत्र होता है मिटता ताप खिले जब चंद ॥

योगीकी मधुर आवान और कवितामें समाये हुए आध्यात्मिक रससे राजकुमारको बड़ी शान्ति मिली। इस नवीन गुरुके पास अप-ने निर्वेच मगनकी मानो राजकुमार क्षमा माँगता हो, इसलिये उसका मुँह दीन हो गया। उसे देखकर योगी आगे बढ़ा और राजकुमारसे बोला— भन्य, इस संसारमें ऐसी भूल कौन नहीं करता ? प्रायः सबहीसे हुआ करती है। फिर उसके छिए इतना कष्ट, इतनी लज्जा क्यों ? इस आत्मकष्टको तो छोड़िये और इस पिक्त पुण्यमय स्थानके योग्य शान्ति प्राप्तकर प्रसन्न मुखसे फलाहार कीनिये।

निसे लोग नादू, मॅस्मेरिइम, हिप्नोटिइम आदि कहते हैं वह वचन, मुँह, दृष्टि और हाथ आदिकी कुशलताको छोड़कर और कुछ नहीं है । उपदेश, करनेवालेके शब्द चाहे जितने रहस्य भरे हों, पर यदि वह उपदेश, उसका वह गांभीय स्वयं उपदेशकपर असर न करे—उसकी उसपर नजर न हो, तो कभी उसका असर दूसरोंपर नहीं पड़ सकता । जिसका उपदेश स्वयं रोत मुँहको लिय हुए होता है, जो किसी विषयपर ठीक विचार न कर उपरके मनसे दिया जाता है, जो ट्रे फूटे और अम्पष्ट शब्दोंभें किया जाता है, जो " मेरे उपदेशका असर लोगोंपर पहकर उसके माफिक होना ही चाहिये" ऐसे विश्वासके बिना होता है और जो सुननेवालोंके मुँहके भावों और उनकी चाहको जानकर बेमा ही अपने व्याख्यानको नहीं बदल सकता हो, तो उसका उपदेश कभी गहरा और स्थायी प्रभाव लोगों-पर नहीं डाल सकता ।

योगीके मधुर शब्दोंका राजकुमारपर इतना असर तो पड़ ही गया कि उसने खाना शुरू कर दिया। वह खाने छगा अवश्य, पर उसके इदयमें शान्ति नहीं। उसका हृदय उभरा रहा था। वह अपने इदयके उभारको न रोक सका।वह अपनीकथा योगीको सुनाने छगा।

दूसरा परिच्छेद ।

4747

काचके बद्ले हीरा मिला।

राजकुमारने अपनी कथा योगीसे यों कहना आरंभ की-चन्द्रनगरके महाराज जयानिंहका मैं इकलौता पुत्र हूँ । पिताजी-का मुझपर वडा प्रेम हैं। राजकमारके योग्य जितनी शिक्षायें हैं, वे मुझे दी गईं। इसके आतिरिक्त धार्मिक ज्ञानमें नेरी अच्छी गति हो. इस-लिये पिताजीने मुझे धर्मगुरुके पाम भी पढाया। गुरुजीने मुझे बहु-त सरलता और उदाहरणीं द्वारा खन समझाया था कि-" वत्स, जो काम अपरेको करना है। एक पहले बहुत अच्छी तरह विचारकर फिर करना चाहिये, ' विषय वासनाको अपनेपर कभी विजय न करने देना चाहिये—अपनेको उसके वश न होना चाहिये, १ निठल्ले बैठे रहनेको मनुष्य जीवनका नष्ट करनेवाळा ममझना, संमार ममुद्रमें कमलकी तरह अलिम रहनेका अभ्यास बढ़ाना, धर्मकी नेवा मुखकी इच्छासे नहीं, किन्तु अनुषम शान्ति लामके लिये करना । " गुरूजीने यह उपदेश मेरे हृदयमें इसतरह जमा दिया था कि उससे मेरा हृद्य ख़ुब हर हो। गया । उनके पवित्र उपदेशका छाभ मैं हर समय अनुभव करता रहता हूँ । धार्भिक ज्ञानके अति-रिक्त उन्होंने मुझे साहित्य, संगीत आदि मनोरंनक और युद्धकला, व्यायाम, हिसान, कितान, शारीरशास्त्र आदि उपयोगी विषयोंका भी ज्ञान प्राप कराया था। यही कारण है कि मैं पचीस वर्षका हो

गया तत्र भी विद्या और प्रकृतिकी ख़ूबियोंमें छगे रहनेसे तथा स्वधर्म, स्वदेश और स्वनातिके प्रति जो मेरा कर्त्तव्य है उसे करते रहनेसे मेरा विचार विवाह करनेकी ओर गया ही नहीं। पर अपने पिताका मुझे इकछौता पुत्र होनेसे उन्हें मेरा यह विचार अच्छा नहीं जान पड़ा : इसिछिये मुझे न पूछकर ही उन्होंने राजपुरीके राजाकी राजकुमारी उपासे मेरा विदाह करना निश्चित ठहरा दिया और मुझे विवाह कर आनेकी आज्ञा दी।

मेरी इच्छा नहीं थी कि मैं विवाह करने जाता, पर पिताजीका मन निसमें तृम्वी हो। उमे करना ठीक न समझ में यह वैवाहिक वस्त्राभूषण पहरकर अपने जात्मीय जनोंके साथ विवाहके उद्देश्यमे राजपूरीकी छोर चल पड़ा। रास्तेमें मेरे मित्रोंने मेरे वित्तको हस्त-फिलाप, हृष्टि अस्थिलन, पहला मनायम, विवहित जीवन आदि विपयोंकी छोर ग्वीचना चाहा. मुझे उन्होंने बहुतसी वातें कहीं, पर मेरे चिक्के अभ्यस्त थार्मिक और नैतिक विषय तो मेरे हृदयद्र्पणमें प्रविविध्वित हो। ही रहे हो, इसलिये वे जो जो बाते मुझे कहते उन्हें में उपरकी उपर ही उड़ा देता। इसी तरह विनोद करते करते हम सब अपनी सेनाके साथ झपाटाबन्द सस्ता तय करते चले जा रहे थे कि इतनेमें सूर्यदेवने अपने रथका मुँह पश्चिमकी ओर फेर दिया और देखते देखते एक दूरकी बीहड़ झाड़ीमें वे जा छिपे।

अस्थिर चित्तवाले पुरुषोंके क्षणक्षणमें बदलनेवाले विचारोंकी तरह नाना प्रकारके रंगोंसे आकाश पूर्ण हो गया । रातमे आहार न करने वाले पक्षिगण अपने अपने घोंसले ढूंढने लगे । शीतल प्रवनकी

छहरें और शान्तिने संसारपर अपना साम्राज्य बढ़ाना आरंम किया । कापी पुरुषोंके लिये आग्नितुल्य और सर्व साधारणके लिये चन्द्रनकी तरह शीतल, चन्द्रमाने अभीतक निर्मल मोतियोंसे जडी हुई सफेद साडी अपनी रजनी प्रियाको भेटकर आनेकी तैयारी न कर पाई थी कि इतनेमें घोड़ेकी टापकी आवान मेरे कानोंमें सुनाई पड़ी और जैसे जैसे समय बीतने लगा वैसे वैने आवाज भी अन्यकारको चीरती हुई स्पष्ट होती गई । हम सब उसी और आँखें गडा गडा कर देवने लगे । हमें एक ऐसी झाँई दिखाई पडी जो कभी बहत बडी, कभी छोटी और कभी अहदय हा नाती थी। उसे देखकर मेरे मूर्ख नौकरोंके तो छक्के छूट गये । उन्होंने समझा कि 'वह भृत है'। इतनेमें वह झाँई हमारे पाम ही आ पहुँची । वह एक हट्टाकट्टा ज-वान था। वह घोडेपरस कृद कर मेरे सामने आ खडा हुआ और हांफते हाँफते उसने कहा कि-इस प्रदेशके मालिक महाराज अरिजय मेरे द्वारा आपको कहते हैं '' आपने विना आज्ञाके हमारी सरहहमें पीँव रक्खा है, इसलिये आपको युद्धके लिये तैयार हो जाना चाहिये।" अकारण सिरपर आफत उठ नेवाले अगिनयकी बेवकुफीपर मुझे बडी हैंसी आई । मैंने उत्तर दिया—''रात्रिमें तो युद्ध किया जाता नहीं । हाँ अपने महाराजसे कहना कि वे सबेरे अपना जोर आजमानेके छिये आवें । मैं सब तरह तैयार हूँ । " उत्तर पात ही वह मवार एक छ-लॉंगमें घोडेपर सवार होकर चलता बना और देखते देखते ऑखोकी ओट हो गया । रात्रिके मुखभय चन्द्रके प्रकाशका मैं कुछ भी आनन्द न छे सका । लेता कहाँसे ? सिरपर तो बला सवार थी। के कहाँ तो अर्रि-

जयकी प्रचण्ड सेना और कहाँ मेरे इने गिने योद्धा ? बड़ी कठिनतासे मैंने किसी तरह रात बिता पाई ।

प्रातःकाल होते ही अरिजय सैना लेकर आ चढा । दोनों ओरसे रण दुँदमि बजने लगी। दोनों ओरके शूरवीरोंने, अपनी अपनी ध्वजाओंको प्रात:कार्छीन उत्साही वायुके साथ खेळने देनेके लिये तळवारे हाथमें र्छी । मेरे पूज्य गुरुका उपदेश था कि "शत्रुपर पहले वार कभी न करना" इस-लिये मैंने या मेरे किसी सैनिकने पहले वार नहीं किया। इससे उसने यह समझकर, कि इसमें कुछ दम नहीं है, मुझसे द्वंद्व युद्ध करनेका आग्रह किया। मैंने उसके आग्रहको बडे आनन्द्रमे स्वीकार कर लिया। दोनों अखाड़ेमें उतरे। युद्ध आरंम हुआ। विजयश्रीने मेरा पक्ष लिया। अरिं-जयका दर्प चुर्ण हुआ । मेरी सेनामें आनन्दके बाने बजे और अर्रि-जयकी सेनामें हाहाकार मचा । यह देख अरिंजयको बडा शार्मिन्दा . होना परा । माय ही उसके हृदयपर वैराग्यने अधिकार जनाया । उसका चित्त संसारकी बीलामे अस्थिर है। उठा । उसने उसी समय वनका रास्ता छिया और एक योगिराजके पास पहुँचकर वह शिक्षत हो गया । जिस अभिमानने उस नीचा दिखाया था, अरिंजयने उसीका सर्वनाश किया । अभिमानके नष्ट होते ही उसके सहचर काम. कोध, होम आदि भी अपने आप ठंडे हो गये । इस प्रकार मैंने अर्रिजयको जीतकर उसे कलंकित नहीं बनाया, किन्तु अजेय रात्रु-र्ओपर विजय प्राप्त कराकर उसे उज्ज्वल बनाया और वह भी अपने नामको सार्थक बनानेका पात्र हुआ ।

सन्ध्या हो चुकी थी। मेरे योद्धाओंने विजयके उत्साहसे

उसी समय वहाँसे कूच करनेका आग्रह किया । मैंने भी उसमें किसी तरहकी बाधा न दी । कूचका बाजा बजाया गया । सब सैनिक तैयार होकर चल पड़े । रातभर सेना चलती रही । जब कुछ कुछ अधेरा रहा होगा तब हम वृक्षोंसे घिरे हुए एक सुन्दर स्थानपर पहुंचे । हमने वहां सब तरहका सुभीता दोवकर वहीं पड़ाव डाल दिया ।

अभी सूर्यके निकलनेमें कुछ विलम्ब था, पर मैं तो उठ बैठा और शौच दन्तधावन और स्नान आदिमे जल्दी निवटकर उस मनोहर स्थानके देख आनेकी इच्छामे आगे बढ़ा | लगभग पाँच कोस पहुँचा हुँगा कि मुझे सामने एक ऋषि मिले | मेंन उन्हें प्रणाम किया । उन्होंने मेरा नाम लेकर मुझ आशीप दी । मुझे एक यांगी द्वारा अपना नाम सुनकर बड़ा आश्चय हुआ । मेरे भावोंको जानकर योगीन मेरा सन्देह हटा देनेके लिये झटमे कहा कि—कुमार ! तुम यह न समझो कि मैं तुम्हें नानवा नहीं हूं और न तुम्हारा यहां आना ही मेरे लिये आकस्मिक हुआ है । क्योंकि कल ही मुझे मेरे गुरुन कहा था कि "कुमार विनोद प्रातःकाल तुझे भिलेगा और तेरी चिन्ता दुर करेगा ।" मैंने कहा—कौनसी चिन्ता मैं आपकी दूर कर सकूंगा । यह आप कुपा करके मुझे काहिये । आप मरीखे महापुरुषोंकी सेवा करनेके लिये तो मेरा तन मन सदा तैयार है ।

योगीने कहा-कुमार, यह काम दो चार शब्दोंमें कहने छायक नहीं है। कुपा करके तुम मेरे आश्रममें चले । मै वहाँ सब हाल तुम्हें सुनाँऊगा। योगीकी बातको विनय पूर्वक मैने स्वीकार किया। हम थोड़ी दूर आगे बढ़े होंगे कि वृक्षोंसे विरा हुआ एक सुन्दर तालाब हमारी नगर पड़ा । यह तालाब मनुष्योंके हाथोंसे न बनाया नाकर प्रक्वातिकी रचनाका मनोहर दृश्य था । इसके ठीक बीचोंबीच एक लोटी सी पहाड़ी थी । पहाड़ी वृक्षश्रेणीसे विरी हुई और बहुत रम-णीय थी । गर्मीके दिनेंकिं तलाबके सूक जानेपर उसके बीचिमें होकर पहाड़ीपर जाना पड़ता था । पर चौमासे और सियालेकें एक लोटी-मी डौंगीपरसे जाना पड़ता है ।

हम तालावके किनारेपर आ पहुंचे। सूर्यदेवने अन्धकाररूपी मीम राक्षमको मारकर संसारमें अपना माम्राज्य स्थापन कर दिया। उस-की बधाई देनेके लिये पिलियोंने अपने मधुर मनोहर कलरव द्वारा गाना आरंभ किया। प्रकृतिने उसकी विजय प्रशन्तिको तालावरूपी निर्मल कागजपर सोनेके अक्षरोंमें लिखना आरंभ किया। थोड़ी ही देरमें मन मेदान सुवर्णमय वन गया। जलके मीतर सुनहरी वृक्ष-श्रेणी खुशींक मारी नाच उठी। संसारको रागरंगमें मस्त देखकर गुलावके फुलोंको मुर्देकी तरह पड़े रहना पसन्द न आया। वे मी खुशींके भारे खिललिला उठे। प्रकृतिकी जितनी कृतियां थीं उनमें नवीन जीवन और चंचलता आई। इस समय मुझे इतना आनन्द हुआ—में प्रकृतिकी सुन्दरता देखनेमें इतना गर्क होगया कि 'मेरे साथी मेरी राह देखते होंगे' इसका मुझे कुछ भी भान नहीं रहा।

योगीने एक धीभी आवाज दी। उसके उत्तरमें एक बहुत ही मनो-रम आवाज मेरे कानोंसे आकर टकराई और थोड़ी ही देरमें मैंने आँख फेरकर देखा तो क्या देखता हूँ कि मेरे सामने एक उर्वशीसी मुन्दरी खड़ी है । वह एकाएक कैसे आई यह मेरी समझमें न आया। बालिकाकी उमर चौदह वर्षकी होगी । उसका मुवर्णमय शरीर आँखोंमें चकाचौंध किये देता था। यद्यपि वह वृक्षकी छाल पहरे हुई थी, पर उसकी प्रकृतिकी दी हुई सुन्दरतामें कुछ भी कमी न आई थी । उसका वह स्वर्गदुर्लभ निर्विकार मौन्दर्य हृदयमें अपूर्वमाव पैदा करता था। उसका हृदय गंभीर और शान्त था। उसके शरीरमे लावण्यकी सुधाधारा प्रवाहित हो रही थी, पर उसका चित्त तब भी निर्विकार-पवित्र था।

बालिकाने योगीकी ओर देखकर वड़े धीरेमे पूछा—पितानी ! आज आपको बहुत देर लगी ? और ये नवीन कौन महाशय हैं ?

योगीने इतना कहकर, कि ये अपने अतिथि हैं, डौंगीपर चढ़-नेको मुझे इशारा किया और आप भी उसपर चढ़ गये । वह सरो-वरकी सुन्दरी भी हमारे पीछेकी बैठकपर बैठ गई । योगीने पतवार हाथमें छेकर डौंगी चलाना आरंभ किया, डौंगीके वेगसे तरंगें उत्तात्र हो हो कर अदृश्य होने लगीं, जैसे मनुष्य जातिपर किये हुए उपकार उसके मगजमेंसे बड़े जरुदी अदृश्य हो जाते हैं । हम पहाड़ीके पास आ पहुँचे । योगी एक छल्लांग मारकर जमीनपर कृद पड़े और उन्होंनें डौंगीको पकड़ रक्खी । पहले में डौंगीपरसे उतरा और पिछे इम स्थानकी अधिष्ठात्री देवी उतरी । हम ऋषिके पीछे पीछे चले । मानों एक पुरोहितके पीछे नव दम्पति चलते हों । पर मेरे दिल्में ऐसा विचार नहीं समाया था । योगी उस बालिकाको फल फूल इकड़े करनेके लिये कहकर मुझे अपने पवित्र आश्र- ममें िहवाहे गये । वहाँ उन्होंने वनके सुन्दर और स्वादिष्ट फलें और झरनेके निर्मेल शीतल जलसे मेरी अच्छी तरह पाहुन गित की । इसके बाद उन्होंने ऐसे एकान्त स्थलमें हुए पूर्वके महात्माओंका और अपने गुरु विश्वबन्धुकी किंटन तपश्चर्याका हाल मुझसे कहा और साथमें इन सब बातोंका वे क्यों अनुकरण करते हैं, इसका एक कारण है, यह कहकर उन्होंने अपनी कथा यों कहना आरंभ की—

"मैं इन्दिरा नगरीं तरा यशोवमीं तरा पुत्र हूँ । मेरा नाम है जय-चंद । एक दिन मैं एक अशिक्षित घोड़ेपर बैटकर घूमने के लिये निकला । मैं लगभग चार छह कोश पहुँचा हुँगा कि एकाएक घोड़ा न जाने क्यों चमका और मुझे गिराकर चलता बना । मैं वहाँ-से चलकर एक वनमें पहुँचा । वहाँ एक साधु रहते थे । मैं कुछ दिनोंतक वहीं रहकर उनकी सेवा करने लगा । उन्होंने मुझे एक विष दूर करनेवाला मंत्र मिखाया । इसके बाद मैं अपनी राज-धानींमें लौट आया ।

एक दिन मैं किसी कारण राजनगर गया था । भाग्यवदा उसी दिन वहाँके राजा पृथ्वीगजकी राजकुमारी प्रभाको सर्पने काटा था । बहुतसे गारुड़ी उसके विष दूर करनेको बुलाये गये, पर किसीसे उसे लाभ नहीं पहुँचा । मुझे विषहरण मंत्र याद था । मैंने उसे आराम कर दिया । राजा मुझपर बहुत खुदा हुए । प्रभा अभीतक अविवाहिता थी । राजाने उसका मेरे साथ विवाह कर दिया । मैं उस स्वर्गीय सुन्द-रीके साथ मनचाहा सुख भोगनेमें इतना गर्क हो गया कि कई महींने-तक सूर्यके सिवा किसीने हम दोनोंका मुँह नहीं देख पाया ।

एक दिन मैं उस मृगाक्षीके साथ रतिविद्यासका सच्चा सुख हे रहा था कि एकाएक मुझे 'भोगे रोगभयं ' इस वाक्यकी याद हो उठी और उसकी सत्यता छुनीकी तरह मेरे हृदयमें चुनी । मझे उसी समय वैराग्य हो आया । काम विलास मुझे जहरसे दीन्वने छंगे, राजमहल मेरी आँखोंमें वन हो उठा और भूषण अलंकार मेरे लिये बेडी हो गय । मैं उमी समय अपना सब राज्यभार अपने पुत्र धीरको सौंपकर साधु-वानप्रस्थ-वन गया । क्योंकि मेरे साथ ही आत्मकल्याणको इच्छामे मेरी प्रिया भी माध्वी वन गई थी। हम दोनों विश्वनत्यके आश्रममें आकर रहन लगे । माध्वी वननके पहले मेरी प्रिया गर्भवती थी। पर उमवक्त उसने वह बात इस भयमे, कि कहीं मुझे गर्भवती समझकर दाणनाय अपने साथ न रक्षें, गुप्त ही रक्ती थी । पर प्रमक्कालके ममीर आनेमें व विद्व हुँ। नहीं रहे । इमलिये मैंन उमम कहीं अन्यत्र ाने श्री प्रार्थना की । गुरूकी हमारे इस संकोचको समझ गये । उन्होंने हंभ आधास देकर वहीं रहनेके छिये कहा । इतना ही नहीं किन्तु नव इस बालिकाकी मातान इस जन्म देकर प्रमत्की अधिक वंदनांस प्राण छोडे तभीमे गुरूकी वडी चिन्ताके माथ इमका पालन वोषण करते चंचे आंत हैं । उन्हीं भी कुपामे यह पर्ला है। गुरूजीका उमपर बहुत प्रेम है। उन्होंने इमे बहुत योग्यताने धार्मिक शिक्षा दी है । जैने जैसे इसकी उपर नहीं होती जाती है वैसे वैसे मुझे चिन्ता बढ़ती जाती है । इसे रूपवर्ती देखकर कोई पापी इस एकान्त जगहमें हर न ले गाय इपलिये मैंने इसे अट्टव करण अंतन दे गता है। उसके प्रभावने आनतक इस आश्रमके

उदासीन लोग और मैं या आपके सिवा किसीने इसका मुंहतक नहीं देख पाया है। और इसीसे इसका हृदय बिल्कुल पवित्र है। यह संसारकी बातोंको अभीतक कुछ नहीं जानती । इमकी प्रकृति ग्रान्त और वडी भोली है। मेरी इच्छा है कि जिसी यह पवित्रबाला है वैसा ही कोई पवित्रहृद्यी पुरुष मिल जाय तो इसे उसके सुपूर्व करके में इस जंजालसे अपने आत्माको छुटाउँ और अपने अस्थिर मनको आत्मकस्याणकी ओर ल्याऊं । में नहांतक आशा करता हूं , मेर भाग्यहींस आपका इघर आगमन हुआ है और यह आगमन मेरे विचारे प्रमंगकी पूर्ण करेगा । अब मेरो आशा, गुरूजीका मविष्यकथन और अपने चच-नका पूरा करना आपके हाथ है । मुझे पूर्ण विश्वाम है कि मेरी भोली बाज्जिका हाथ म्बीकार करके उसका उद्धार करेंगे । इतनमें कुन्द्र भी फलफूल लेकर वहीं आ पहुँची। ऋषिन उसका हाथ पकड़ करं बहुत भीरेंसे मेरे हाथकी और उसे खीचा। मैं कुछ कर्निन्दा हुआ। मैंने एक छुपी दृष्टि कुन्द्रकी ओर डाछी । मेरी दृष्टिको कृत्दके द्वाग आदर मिला । प्रेमके दो प्रवाहींका सन्मिलन हुआ । भैने थे।गीकी बातका कुछ उत्तर न देकर अपनी दृष्टिको नीनी करूटी । 'मौनं सम्मतिलक्षणं 'देखकर योगी ने हमारा गांधर्विवाह कर दिया | इसके बाद वे अपना नित्यकर्म करनेको चले गये। हम नव दम्पति ही वहाँ अकेन्रे रहे। प्रिया द्वारा टाये हुए फलारि हम दोनों खाने लगे । पहले शर्मने अवस्य हमें बाधा पहुँचाई । पर हमारी बार्तोका सिल्सिला इस मनोहर स्यानकी प्राकृतिक सुन्दरता, देवकी हमपर अनुकूछता और एक दूसरेके स्व-

गींय सौंद्र्यको लेकर छिड़ा था, इसिंख्ये अन्तरें वह पवित्र प्रेम पथपर आ ही गया | हम दोनों प्रेमपाठ सीखनेमें अभी सर्वथा नये ही थे । प्रेमपयोधिमें उड़नेके लिये अभी हमारे नये ही पीख निकले हैं, तब भी इस महा समुद्रकी लहरें हमारे मुँहमे इस विषयकी लहरें उत्पन्न करने लगीं । मेरे मुँहमे एक कविता निकल ही तो पड़ी— प्रिये!

बहुत कप्टसे कटनेवाली है जीवनकी दुर्गम राह, उसमें शान्ति सुधासम प्यारी ज्याह छोड़कर और न चाह। पर विवाह वह सच्चा समझा जाता जिमपर छाप पवित्र. मैत्री, श्रेम, नांिकी लगती और सदा हो उच्च च रित्र।

प्रेमके प्रवाहने बालिकाको भी विनीद्मय बना दिया। वह अपनी एक अँगुली ओंडपर रखकर आकाशकी ओर स्थिर हिष्मे देखनी देखनी क्या बोलने लगी इसका उसे बिल्कुड भान न रहा। उसके मुखब-न्द्रमे मानों सुधाधारा बह निकलनेकी तरह मधुर मनोहर शबद निकले—

सचा प्रम वहां कहलाता जे स्वाभाविक होता है. जिसे न छ पाती क्रिजिमता जो न कपटका स्रोता है. ऐसे रस्य प्रमका झरना जिस गृहमं प्रतिदिन बहुता, वह गृह फिर अनुपम वैभेवसं स्वर्गधरामा लह उठता ॥ इतमें अकाशवाणीकी तरह एक आकस्मिक प्राति हमारे कार्नीमें सनाई दी-

पर ऐसे मार्गीय प्रेमका निर्मेत झरना कभी कहीं. विषयवासनाके दृष्ट पर्वतस टकरा जाय नहीं। इसके लिय सदा तुम रहना सावधान मेरा उपदेश, यदि इसके प्रतिकृत करोगे से। भोगोगे दृष्कर क्षेत्रा॥ उसे मुनकर हम एक साथ चमक उटे। हम इस समय क्या बुराई कर रहे थे, उमे टूँटने लगे। गुप्त स्थानके टूंटनेके लिये हमारा हृद्य मयनीत बन उठा। पर बात डरकी न थी। गुरु विश्वक्यु हंपते हुए वहां आ उपस्थित हुए। उन्होंने बड़े मधुर शब्दोंमें कहा-बेटी कुन्द और बत्प विनेद उसे मत, उसे मन। यह तो मैं नुमसे मुयोग दस्पतिको आपीश देने और यहाँ में बिदा न हो इसके पहले कुछ आवइयक बाते तुम्हें समझानेके लिये आया हं।

तीसरा परिच्छेद।

ンシンショのへんべく

नव दम्पतिको योगिका उपदेश।

गरु विश्वबन्धने अपनी आशीपका प्रशह शुरू किया । इतने में महात्मा जरामित और सब शिष्यमंडली भी वहाँ आ पहुंची । यद्यपि निष्यों के पाप बालिकाकी बिदा करने तक देने के लिये भिवा पविच आशीपोद्के कुछ धन देलित न थी, परन्तु उस वक्त वहां उनका उपस्थित हीना बत्सलय भैटने वही बदकर और आनन्ददायक था। गरुने संभीपता किता—" तुससे सुयोग्य बग्वधूगर प्रेमदेशकी

गरुने गर्भागता किहा—" तुनम मुश्रीस्य वस्त्रध्य प्रेनद्राकी मदा मध्य हंभी बनी रहे ! पवित्रता और परस्परका विश्वास ये दोनों सेचिटिया मदा तम्हारे महायक हों ! दुनियादार्राके व्यवहार तुममें दिनों दिन अधिक अधिक दान्ति बढावें ! विषयवामनासे मिलन हृद्याले स्त्रीपुरुषीको तुम्हारा आत्मनंयनका नीवन सदा आदर्श

हो! स्वधर्म, स्वदेश, स्वजाति और स्वबंधुओंके उद्धारके स्थिये तुम्हारा जीवन चिर समय तक बना रहे।"

इसके बाद महात्मा जयसिंह बोले " धर्म, अर्थ, काम और मोस इन बार परम पुरुषार्थोंकी प्राप्तिके लिथे तुम्हारा सदा प्रयतन रहे और तुम बिरनीवी बनो ।"

जयसिंहके "तुम चिरजीवी बनो " इस अन्तिम वाक्यका सब शिष्यमंडलने भी एक स्वरमे अनुमोदन किया । उनकी गंभीर ध्विन शान्त सरोवरमें देवबाणीकी तरह गूँन उठी। उसे शुभ शकुन समझ सब बहुत खुश हुए।

कुछ देर बाद जब फिर शान्तिका राज्य बढ़ा तब गुरु विश्वबंधुने मेरी ओर मुँह करके यों कहना आरंभ किया—

" वत्स ! समझते हो, आज तुपने एक नई जोखम अपने हाथमें उठाई है । जिम प्रकार राज्य शासन करनेके लिये तुम्हें उसके सम्बन्धकी सब बातें पड़ले सीखनी पड़ी हैं—उसमें जैसी तुम्हें कुशलता प्राप्त करनी पड़ी है—उसी तरह विश्वहके बादके सम्बन्धकी जो जो आवश्यक बातें हैं, उनका जान लेना तुम्हारे लिये बहुत जुसरी है । जिससे कि तुम अपने जीवनको पुण्यमय, प्रेममय और सुलमय बना सको ।

ध्यान दो, विवाह विषयवासनाकी तृतिके लिये नहीं है और जो छोग उसका ऐसा उच्छा अर्थ करते हैं उन्हें हम छोग कभी अपनी कन्या नहीं देते । हमें विश्वास है कि तुम अपने गर्म सून और जवानीका जोर स्वर्घम, स्वदेश और स्वजातिके प्रति अप- ना कर्तन्य पूरा करनेमें खर्च करोगे। अपने कर्तन्यके पूरा करनेमें बीच बीचमें कभी यक्तवट या निरुत्साह होने छगे तो तुम्हें आव-न्दित करनेके छिये, तुम्हारे हृदयमें नवीन उत्साहकी प्ररणा करनेके छिये, तुम्हारे आकुछित हृदयमें शान्तिसुधाकी धारा बहानेके छिये-ऐसे समयमें तुम्हारी सेशके छिये-यह बाछिका है। तुप अपने पिन्त्र रमणी-प्रेमका ऐसे ही समयमें उपयोग करना। इसी विश्वाससे हम तुम्हें संसारमें छगाते हैं।

विवाहके पहले तुन्हें अपने अकेलेके लिये ही इस लेक तथा पर-लोकके मुधारनेकी चिन्ता थी, पर अब तुन्होरे सिरपर दो व्यक्ति-योंके इस लोक और परलोक सम्बन्धी कल्याणकी चिन्ताका भार पड़ा है। इमलिये अब तुन्हें बहुत विचारवान्, बहुत स्थिर, बहुत वैर्यशाली, बहुत महनशील, और बहुत उद्योगी होना चाहिये। बालचेटायें, मूर्वताके विचार और ऐशोआरामके स्वाप्त अब तुन्हें मूल जाना पहेंगे।

नुम्हारे जिरार एक बोझा बढ़ा है अवश्य, पर वह उपयोगी और प्रसन्न करनेवाला बोझा है । यह भागीदारन तुम्हारे प्रत्येक कार्यमें सहायक होगी। पर इसके माथ तुम्हें भी इतनी याद अच्छी तरह रखना पड़ेगी कि यह तुम्हारी सहायक बने। इसके लिये इसकी जुकरतों और अपने स्वभावका ठीक ठीक ज्ञान तुम इसे करा देना। खियोंको समय बे सपय चूरेसे भिड़ाये रखने और नवरी निठली सिखयोंमें फैसी रहने देनेवाले पुरुषोंकी जिन्दगी केवल कंका खेंसे भरी और नीरस है। पुरुष निन गुणों और निन शक्तिकोंने

से अपनी स्नीको अछंक्टत करना चाहें तो वे की ना सकती हैं। जो खेम यह समझकर, कि यह अपने पिताके घरपर तो कुछ पढ़ी लिखी नहीं। फिर अब क्या पढ़ सकेगी, इसे पढ़ाना बड़ा कंटाल मरा है, उसे पढ़ाते छिखाते नहीं वे बड़ी भूल करते हैं। उन्हें समझना चाहिये कि वे भी स्नीके ही पेटसे पैदा हुए हैं, उनके जन्म दाता भी उन्होंके पेटसे जनमे हैं और उनकी सन्तान भी ख्रियोंके पेटसे उत्पन्न होगी । इसपर विचार किया जाय जो जान पड़ेगा कि स्नी ही संसारकी स्वाभिनी-महाराजेश्वरी है। इसलिये ख्रियोंको मूर्व और सहायक बननेमें असमर्थ बनी रहने दोगे तो तुम ही अपने वंदा और देशके मुखके शत्रु बनोंगे। स्नी और पहचोंकी उन्नित साथ ही है। वे साथ ही उन्नित और अवनत देशों आते हैं। वे साथ ही स्वतंत्र या परतंत्र होते हैं।

तुम उत्तके द्वारा पूर्ण प्रेम और पूर्ण मुखर्का आशा रखते हो तो अपने अवकाशके समयको दूमरोंको न देकर उसके जिये ही देना। उससे वह जान सकेगी कि तुम्हाग हृदय उसकर पूर्ण अनुरक्त है और फिर वह भी उसका बदला जुकानेके लिये अमील प्रयत्न करेगी। पर यदि तुम उसपर एक दासीकी तरह हुकुम चलकर उससे दूर रहोगे तो उसकी चिन्तायें, उसके विचार , उसके मुख दुःख और तुम्हारी चिन्तायें, तुम्हारे विचार और तुम्हारे मुख दुःख और तुम्हारी चिन्तायें, तुम्हारे विचार और तुम्हारे मुख दुःख एक नहीं मिन्हेंगे। इससे भीरे भीरे वह फिर तुम्हें छोटा समझने लगेगी। फिर तुम्हें वह एक मित्रकी तरह नहीं, पर एक जुम्मी राजाकी तरह सम होगी। तुम्हारे डरसे या लोकलाजके भयमे वह तुम्हारी सेवा करेगी अवकार, पर हार्दिक प्रेमपयोधिकी जो तरंगें उसके दिलमें सदा लह-

रायें करती थीं फिर वे तो नियमसे छित भिन्न हो जायंगी । निस स्वर्गीय सुखकी चाहके छिये सम्बन्ध किया गया था वह फिर स्वप्नमें भी दुर्छभ हो जायगा।

एक बात तुम्हें बुरी तो छगेगी पर उसे बिना कहे रहा भी नहीं बाता। अवकारा, यही विकारका पैदा करनेवाला है, इसलिये इसका साथ क्षणभरके लिये भी न देना। बीरान पड़ी हुई प्रधानें कांटे और निकाम मनमें बुरे विचार उत्पन्न होते ही रहते हैं, इसलिये इसे बरके कार्नों या धर्मकायों या पढ़ाने लिखानें या किमी विषयके विचारमें निरंतर लगाये ही रखना।

और एक बात याद रखना । बिना कारण कभी ठपका न देना । क्योंकि एक बक्त बिना अपराण या देवके यदि उपका दोगे तो फिर तुम्हारे मखे उपकेका भी वजन नहीं पड़ेगा । इसल्यि किमी अपराध या देवका जबतक तुम्हें पूरा भरोमा न हो जाय तबतक केवल बहमके भरे भेरर दंड देने या कड़ने वचन बोलनेके पहले खूब सोच समझकर काम करना और जुरूरत पड़नेपर ठपका या दंड देना ही पड़े तब भी एक नौकर या बालक या एक अपराधिको निसतरह सजा दी नाती है उसतरह उसे न देकर एक भित्र या समवयस्क कुटुम्बीको नैसी सजा दी जाती है उमीतरह तुम भी देना, जिसेस सजाका देना भी सार्थक हो जाय और उससे उसकी या उसके सम्बन्धि तुम्हारी बाहिर फजीती न हो ।

यह भी याद रखना कि स्त्रीकी अज्ञानता पुरुषका देश है। इसलिये अज्ञानताके लिये उसे सताना यह निर्दयी और अन्यायी पुरुषका काम है। उसकी अशक्तिसे किसी कामको वह तुन्हारी इच्छाके माफिक न भी कर सके तो उसके छिये उसके और अपने कर्मका देख समझ-कर उस कामको किर किसी दूमरी रितिसे करना । विचारवान् पुरुष तो उभी स्त्रीको अपराधिनी समझते हैं जो हरामीपनसे या नानव्सकर या वे जुरूरत अपराध करती है।

विनोद, तुम मुशिक्षित और बृद्धिमान् हो, इसलिये तुम्हें बहुत समझानेशी जुरूरत नहीं । वैमे ही यह हमारी बालिका भी पवित्र पुरुषोंकी संगतिमें रही है, इसलिये हमें यह विश्वास नहीं होता कि तुम्हें इसके द्वारा कभी किसी तरहका असन्तोष होगा, पर यह एक ब्यवहार है, इसलिये उसे मुझा देना हमारा क्रिब्य है।"

मैं महात्माका उपदेश नीचा मुंह किये बड़े ध्यानसे मुना किया। जब उपदेश पूरा हुआ तब मैंने अपने विनीत मस्तक द्वारा उन्हें विश्वास कराया कि आपके उपदेशका मैंने अवस्य पालन करूंगा। महात्मानीने इसके बाद मेरी ओरसे मुंह फेर कर कुन्दकी ओर किया और वे बोले—

बेटी कुन्द ! तेरे वियोगमे हमें बहत कष्ट होगा, पर खियोंका आश्रयस्थान पतिगृह ही है, यह समझकर उस कष्टका भूछ जाना ही हम अच्छा समझते हैं । पुत्री ! पति और उसीतरह उसके हर एक मनुष्यके साथ मिलने के लिये उद्योग, सहन्हीलता, सन्तोष और मर्यादामहित पवित्र पतिश्री से चार वदािकरण मंत्र समझना ।

बड़े लोगोंकी मेवा और सम्मान तथा और वरके खेगोंका उचित मान करनेमें कभी मह चूकना । दुनिया विनय और मधुर शब्दोंसे वश की का सकती है, इसिंखेये इस लामसे बंबित नहीं रहना । सासको यदि तूने वश कर खिया तो समझना सारा संसार तेरे वश हो गया और उसे वश करनेके लिये उत्पर कहे हुए उपायोंको खोडकर और कोई उपाय है ही नहीं।

बोलने चलने आदि कितनी जगह लजा और गंभीरताका होना बीका मूचण है। घीरेसे बोलना, थोडा बोलना और शान्त तथा हैंसमुखका होना ये शोमा बढ़ानेवाले अलंकार हैं। घड़घड़ चलना, खिलखिलाकर हँस उठना, लपर लपर बोलना और घर घर-पर मारे फिरना ये निन्दा और धिक्कारके कारण हैं।

किसीकी गुप्तबातक जाननेकी कभी कोशिश मत करना और न माता पिता या सखी महेलीकी या अपने वरकी बात किसीको कहना। इससे अपना बड़प्पन बढ़ता है । अपने दुःखका रोना किसीको पास रोनेमे भी कोई उसमें भाग नहीं लेता। प्रत्युत ऐसा करनेमे अपना गौरव घटता है। मुखकी बात भी किभीपर जाहिर करनेसे स्त्रम नहीं। संभव है अपने अस्युद्यको न मह सकनेके कारण, वह ईश्वी करने स्मे और अपने मुखके नाशकी चेष्टा करनेके लिये उद्योगी हो।

स्त्रियाँ रँघाघान समझी जाती हैं, इसलिये किसी स्त्रीके साम छिछोरापन न रखना और न कभी उचित होनेपर भी किसीसे कड़ या वचन बोलना । अपना समय कभी निकामा न जाय इसपर खूब ध्यान रखना । यदि अवकाश मिले तो चित्तको पुस्तके पढ़ने, किसी विषयके अम्यास करने, उसपर विचार करने तथा चित्रकलादिके सीखनेमें छगाना । हर समय अच्छे कामों और अच्छे विचारोंसे अपनेको मूचित किये करना ।

घरके काम, पारस्परिक व्यवहार, आय, व्यय और सामाजिक रीति रवार्जों में मुचतुर बननेकी ओर लक्ष्य देना। याद रखना कि हम सदा छोटे बने रहनेके नहीं हैं।

किसी पुरुषकी कभी निन्दा मत करना । क्योंकि यह बात उसके कार्नेतिक पहुँचनेपर वह उत्तिनित है।कर अपनी इज्जत छेनेके छिये तैयार हो उठता है। इसके माथ किसी पुरुपकी प्रशंसा भी न करना । कारण मित्रा पतिके किसीकी प्रशंसा न महना उसीका नाम पत्नी है।

स्वामीकी ओरसे अपनेको चाहे कितनी भी स्वतंत्रता मिले, पर उसका दुरुखोग कभी मत करना ! मयीदा, विके छोड़ना नहीं । चाहे अपना स्वामी अपनेपर बहुत ही प्रेम क्यों न करता हो, पर अम्योदित चालचलन कोई नहीं मह सकता ।

एक वक्त हृद्यमें भिन्नभाव उत्पन्न है। नानेने फिर वह बहुत प्रयत्न करनेपर भी एक नहीं होता | इसलिये म्वानीका हृद्य किमी तरह दुःखित न हो, उमने किमीतरहका आयात न पर्नेन, इसकी पूरी प्री मम्हाल रखना | उसके विचार इच्छा आदिने निमतरह हो। बहुत जरदी जानकार बननेकी कोलिया करना | बिना ऐना किये स्वामीकी प्रेमपाल कभी नहीं बन सकेमी ।

किसी कामके करनेमें स्वामी यदि गहती कर जाय तो उसके उपदे-शक बनकर नहीं, पर एक मेशककी तरह बहुत मधुर शब्दों में और मधुर हंभीके साथ वह गहती उमे मुझाना, पर दोष कभी मत निकलना । जहदी उठनेकी, वरबारके स्वच्छ रखनेकी और माता बननेके पहले माताके सम्बन्धकी जितनी जुरूरतें हैं उन्हें भीख़लेनेकी सदा चिन्ता रखना । इस विषयमें जितना कहा जाय उतना थोड़ा है, इस लिये इस विषयको तेरे मरोसेपर ही छोड़ता हूं ।

घनवानोंके वरमें ख्रियोंको काम करनेकी आवश्यकता नहीं. ऐसी समझना मूळ भरा हुआ है। चाहे अपना वर कितना ही वेमवसे युक्त क्यों न हो, पर कामसे कभी मुंह नहीं मोड़ना—कभी आछस मत करना। वरके कामों में अनेक तरहकी हिंमा अनानपनने होना संभव है। इमिल्रिये जल मदा छान कर काममें लाना, चूछा आदि स्थानीपर चेदीवा बांधना, बाल वगेरहकी मम्हाल रखनों ऐसे मच कामोंकी देख रेख रखना निमन जीवों में हिंना न हो। किन्तूल खर्चम पेसेको बचाकर दया, विद्या, दान आदि पवित्र और उपरियोगी कामों में खर्च करनेका प्रवन्त्र करना और कराना यह ख्रियों-का ही काम है। काम न मी हो तब भी एक गृहिणीके लिये तो काम करनेकी कभी नहीं। मुन, में बतलाता हूं—

घरकं पूर्ण कारबारमें उद्योग, सिल्लिला, दीर्घ हाँछ, व्यावहारिक ज्ञान व्यवम्था करनेकी शक्ति, नैतिकबल और अच्छापन इन सब बार्तो-का समारक होता है। इमल्यि इनपर विचार करते रहनेवालेके लिये मदा काम बना ही रहता है।

गीत, बाद्यकरा और मुन्दर हाव भाव य स्वामीके निरम ममय और थकं हुए शरीर तथा मनको आनन्दित और उत्माहित करने हे साधन हैं। इसलिये ये साधन अवकाशकं समय सीख़ लेने चाहियें। धार्मिक बार्ते जो भैंने तुझे भिखलाई हैं उन्हें भूलना मत, किन्तु सदा उन्हें बढ़ाते रहना । सब ओर निराशं हुए मनुष्योंका अन्तिम भाशास्थ्य धर्म ही रह जाता है । यह बात निरन्तर स्मरण रखना ।

इतनेमें एक शिष्यने ढोंगीके तैयार होनेकी खबर दी । हम सरोवरके तटपर पहुँच कर डौंगीपर सवार हुए । डौंगी रवाना हुई। " सुखी हो ओ! चिरजीवी बनो! उज्बलयश विस्तार करो!" ये पिक्त शब्द दूसरे किनारेपर पहुँचनेतक हमारे कानोंमे सुनाई देते रहें।

किनारेपर पहुँचनेपर बड़ी भारी प्रसन्नता यह हुई कि मेरे सब संगी मुझे वहाँ मिल गये। हम सब मिलकर फिर वहाँ से अपने शहरकी ओर खाना हो गये। क्योंकि अब राजकुमारी उषाकी नगरींमें जानेका कुळ मतलब नहीं रहा था।

मुन्ने जल्दी लौट आया देखकर पिताजीको बहुत आश्चर्य हुआ। मैंने यह सब हाल उनमे कह मुनापा। उन्होंने इमप् कुछ ऐत-राज न कर कहा कि जयसिंह हमारा एक मित्र और सत्यका पक्ष-पाती है।

हमारे दिन बड़े सुलसे कटने छो । इसी अवसरमें पितानीके पास एक दिन एक फयाद आई कि—" शहरमें कछ रातको एक बाछकका खून हो गया है। " पितानीने इसकी बहुत तलाश करवाई, पर खूनीका कुछ पता न चछा। किन्तु इसीतरह हर रातको सून होने छगा। पितानीको इमपर बहुत कोष आया। इसिछिये वे स्वयं गुप्तदेशमें उसका पता छगानेके छिये फिरने छगे। एक दिन एक बुढ़ियाने आकर पितानीमें कहा कि—" महारान! कि-सकी खोन करते हैं! पहले अपने बरकी खोन कीनिये न!

कहनेकी बात तो नहीं, पर अनुरोध वश कहना ही पडता है । द्या-सागर ! मुझे अपनी घृष्टताके छिये क्षमा कीनिये । आपकी पुत्र-वष् ही मनुष्यके रूपमें राक्षसी है और वही मांसके छिये प्रतिरात्रि सून करती है। " इतना कहकर बुढ़िया चलदी । पिताजी उदास चित्तमे महलपर आये । आते ही उन्होंने मुझे आज्ञा की— " कल सबेरे कुन्दके ओठोंकी नैसी दशा है। और उसके परंगके नीचे जो वस्तु निले उससे मुझ सूचित करना । " पिताजीने यह एक आध्य-र्य पैदा करनेवाली बात मुझसे क्यों कही, इमका कारण मैं कुछ भी नहीं समझ पाया । मैं एक बड़े अपमंत्रसमें पड़ गया । खैर, दूसरे दिन सभेरे सदासे कुछ जल्दी उठकर भैंने देखा ता मुन्ने कुन्दके ओठ खुनमे मरे हुए दीले और उनके परंगके नीचे मांमके दुकडे मिरे। अब आँखों देखीपर विधाम करना या बुद्धिपर यह मैं कुछ भी नहीं समझ सक्ता । इस आश्चर्यजनक घटनाने मुझे कि कत्तेव्यमुद बना डालः। मैंने कुन्दको जगाकर इस घटनाका उससे खुलामा हाल पूका-उसने अपने सीवे सरख मेछि भाले निरपराघ मुँहमे कहा-प्राण तथ, यह क्या आश्चर्य है ! क्या कोई देवी लीला है या किमी दुष्टका, नो कि हमारे सुख है दि-नोंको नहीं देख सकता हो, प्रपंच है ! मैं तो इस विषयमें कुछ भी नहीं जानती।

भैंने प्रतिदिन यही हाल देखा, तन परवश होकर जैसा आँखोंसे देखा था वैसा पिताजीको कह सुनाया । िताजीने बेचारी निर्देश कु-न्दको राक्षसी ठहराकर जलादोंको बुखाया और उनसे कहा " इसे सूने जंगलमें लेजाकर इसीसमय मार डालो और मुझे आकर खबर दो।"
पिताजीकी कठोर आज्ञा सुनकर मैं भौंचकसा रह गया। मेरी आँखोंसे
ऑसुओंकी घार वह चलो। मैंने उस निरपराध वनवासिनीकी निदोंष
ताके लिये बहुतसी बार्ने पिताजीको समझाई, पर वे
सब व्यर्थ गई। पिताजीने इस युक्ति द्वारा, कि राज्यके कल्याणके
लिये प्यारेसे प्यारे मनुष्यको उसके अपराधका उचित दण्ड देना
राजाका कर्त्तव्य होना चाहिए, निरुत्तर बनाकर और कुन्दको
जल्लादोंके साथ न जाने कहाँ भेजकर उसका वध करवा ही
दिया। खेद!

में आनत हो उठा । मुझे कोई वस्तु निय न जान पड़ने लगी । किसीपर मेरा मन स्थिग्तामें न उहरने लगा । इससे पिताजीने समझा कि इसकी यह दशा होनेका कारण खीका वियोग है, तो उसे राम्ते पर लानेके लिये विवाह देना जुकरी हैं । इसलिये उन्होंने मुझे फिर उपाके साथ विवाह कर आनेकी आजा की । मैंने उसपर पहले तो कुछ ध्यान नहीं दिया, पर जब पिनाजीने मेरे मित्रों द्वारा मुझे कहलाया कि " यदि तुम दूमरा विवाह न करोगे तो ध्यान रखना— यह कीर्तिशाली पित्र वंदा यहीं। नाम देश हो जायगा । तुम्हारे बाद यह राज्य दूनरे देनोंके और दूमरे वंदोंके राजाओं के हाथमें खला जायगा और प्रजा दुःव उठायगी । इसलिये तुम्हें विवाह करलेना ही उत्तन है।" तब अगत्या में कवल दो मित्रोंके लेकर ही उपानके साथ विवाह करने तो राजपीकी और चल पड़ा। रास्तेमें मेरे घोड़ेन्को आकस्मिक भड़ ह जाने ने मैं इस बीरान जंगलमें अकेश पड़ गया।

भूख, प्यास और पश्चात्तापके मारे इघर उघर मटकता फिर रहा **या** कि मेरे भाग्यसे आपके मुझे दर्शन हो गये । मुझे आपके पवित्र दर्शनसे बड़ी शान्ति मिली ।

* * * *

इतना कहकर पथिकने अपनी कथा पूरी की । उसे सुनकर साधु ने कहा—" आपका हाल सच मुच मनोरंनक है, पर अब नरा गह-रा विचार करनेने यही उचित जान पड़ता है कि आप फिर निवाह करके पुराने दुःख स्वप्नको भूल जायं । यही हितकर है ।"

अन्तिम वाक्य तपस्त्रीके मुँहमे निकला भी न होगा कि इतनेमें एक ओरसे एक बानेकी आवान सुनाई दी । उसके उत्तरमें कुमार-ने भी बाना बनाया । उसके उत्तरमें फिर उधरमे एक आवान आई और माथ ही वो डोकी टापें मुनाई दी । थोड़ी देरमें विनोदके मित्र । वहाँपर आ पहुँचे । उन्हें देखकर विनोद बहुत खुश हुआ ।

नैसं अर्थको नयं नेत्र प्राप्त हो जानसे नैसा उसे आनन्द मिलता है वैसा ही आनन्द विनेष्टको पाकर उसके मित्रोंको हुआ । थोडी रेनक विश्राम छेनके बद उन्होंने मध्य द्वारा लाये हुए फल्डा-दिक खाये और उसीनमय वहाँसे चल देनकी तैया। कर दी । कुमारने अर्थने विवाहको पवित्र करनके लिये माधुमे भी प्रार्थना की । कुछ आनाकानी करनेके बाद उसने विनोदके माथ चलना मंत्रूर किया । रस्तेने कवार और माधुका वेष्टा साथ ही साथ चला नाता था । वे देशनों भी बार्त करनेमें खूब मगन हो रहे थे। विनोद साधु-की मधुर मीर्ड बार्त सुनकर और उसका भन्य मुख्वनन्द देखकर बार बार मनमें कहने लगा ।के विधाता इसे साधु न बनाकर सुन्दरी बनाता तो आज भुवनसुन्दरीरत्नकी उपाधि इसे ही प्राप्त होती !

चौथा परिच्छेद। अ•>>>ः€€५५६

सुख।

विनोद, तरुण-तपस्त्री और विनोदके साथी राजपुरीके समीप आपहुँ ने। उपाके पिता चन्द्रराजने उनका बहुत घूमधामके साथ स्थागत किया । वे खूब आदर सम्मानके माथ नगरीम लाये गये । उनके उहराने आदिका उचित प्रबन्ध किया गया। चन्द्रराजने अपने वैभवके अनुसार अपने अतिथियों के आतिथ्य करने में कोई बात उठा न रक्सी थी।

पित्र दिनमें राजकुमारी उपाका विनोदक साथ परिणय संस्कार बहुत आनन्द और उत्साहम कराया गया । कुमारके विवा-इसे सबको बहुत ख़ुद्दी। हुई सही, पर हमारे विनोदका इदय जैसा प्रमन्न चाहिये वैसा नहीं है। कुन्दकी याद उमे रह रह कर दुःख पहुँचाया करती है। उसकी यह हालत देखकर कुमारके साथी तरुण तपस्वीन उसे धार्मिक बार्ते समझाकर शान्त किया।

आज सोहागरात्रि है । नव दम्पतिने अपने शय्याभवनमें पदार्पण किया । भवन बहुत सुंदर सुन्दर वस्तुओंसे इदयको मोहित किये देता था । चारों ओर दिखक छुमानवाळी महकसे सुवासित हो रहा

था। उसके ठीक बीचमें एक मनोहर पछंग बिछा हुआ था। उस-पर फूछोंकी सुन्दर सेज सजाई गई थी। राजकुमारी उषा और विनोद अभी मौनवत साधे हुए हैं। छज्जा दोनोंका बराबर साथ दे रही है। आखिर उपासे न ग्हा गया। उसने एक बहानेसे विनोदका मौन तोड़ देना चाहा। वह बोछी—

प्राणनाथ, सुनती हूँ कि आप मुझसे पहछे जब ज्याह करने आये थे तब रास्तेमें एक वनवासिनी कन्याके साथ ही ज्याह कर घर छीट गये थे। तो क्या वह वनवासिनी मुझसे भी अधिक सुन्दरी थी, जिसपर आप एकदम इतने गझ गये?

विनेदिन कुछ तिरस्कार भरी हँसीमे कहा—अहा ! कहाँ वनवासिनी कुट ? और कहाँ तुम ? कहाँ चद्र और कहाँ खदांत ? जो हुआ, इस बानको अब यहीं छोड दो ।

कुछ भयके साथ राजकुमारीनं कहा—पर वह तो इस संसारसे चल बसी। अब उमकी बारबार याद करके क्यों आप दुखी। होते हैं। प्राणनाथ! यदि आप तमा करें तो मैं उमके सम्बन्धकी एक बात आपसे कहाँ।

कुछ तेज होकर विनेद बोला-क्या मनुष्यहत्या सम्बन्धी बात मुनाना चाहती हो ! चिड्कर विनेदिने कहा-चल, चल, मैं कभी ऐसी झूठी बातोंपर विश्वास नहीं कर सकता । ऐसे झूठे कलंकसे उसपर घृणा पैदा कराकर मेरे हृदय-मन्दिरमें प्रतिष्ठित उसकी भुवनमोहिनी प्रतिमाको कोई च्युत नहीं कर सकता और न तुम्हें ऐसा करना शोमा ही देता है । कुमार ऊपर जो कुछ बोल गया वह बिस्कुल उसके भोले स्वभाव को लिये हुए था । परन्तु उषाने उसे अपने लिये समझ कर विचार कि मेरे पापकी बात प्राणनाथपर बिदित हो गई ज्ञान पड़ती है नहीं तो 'झूठा कलंक' ऐसा ये क्यों कहते ! अब मुझे अवस्य प्राणनाध् भयंकर दण्ड देंगे । इसलिये अच्छा तो यही है कि मैं अपना अपराष्ट्र स्वीकार करके सब हाल ठीक ठीक कह दूं, जिससे मुझे क्षमा प्राप्त करनेका रास्ता भिल जाय ।

उपा कांपते हुए ओठोंसे बोली— प्राणनाथ ! द्यासागर ! मुद्दे सम कीनिये | मैं महापापिनी हूं | भैंने अपने म्वार्थके वहा होकर महान् अनर्थ किया है । मैं जानती हूं कि मेरे पापका प्रायश्चित्त ही नहीं, पर आप मेरे देवता हैं । इसलिये आपके चरणोंमें प्रार्थना कर पापकी क्षम चाहती हूं । कहते हुए मेरी नक्षन भीतर ही जाती है, हृद्ध दुःखंबे मारे अधीर हो रहा है । उमे शान्ति मिलनेकी आशा भिवा आपने किससे कर मकती है । उमे शान्ति मिलनेकी आशा भिवा आपने वस्णोंमें शरण दीनिये ।

नाथ ! मुझ पापिनीन नेनारी निर्देष वननामिनी बालिकापर कलंक लगाते समय कुछ विनार नहीं किया । यह सब आपने अप्रतिम रूप गुणके लिये ही किया गया था । आप मेरे होकर दूमरीके हों, यह बात मेरे स्वायीं और पापी हृदयको महन न हुई । इसल्चिये भयंकर पड्यंत्र रचकर मैंने उस बेचारी गरीजिनीकी दुर्दशा की । द्यासिन्धो ! समा कीनिये । जब कहन बंठी हूँ, तो सब बात सच सब कहूँगी ही । बिना कहे मेरा छुटकारा नहीं है । हाँ तो

एक पापिनी बुढियाको मैंने बुछवाई। वह अघोरी विद्याकी जाननेवाली थी। उसे मैंने बहुत कुछ छोभ देकर अपना कार्य कर देनेको राजी किया । मेरे कहे अनुमार वह राक्षमी प्रतिदिन बेचारी कुन्दका मुँह वृनसे भर आती थी और उसके पहँगके नीचे मांसके टुकड़े फैंक आती थीं । आपके पिताको मी मैंने उसीके द्वारा कहळवाया था र्कि " कुन्द मनुष्यरूपमें राक्षमी है और प्रतिदिन एक बाछकका ख़न करती है । आपके भोले पिताजीने बिना कुछ तपास किये उमका वय करा डाला और आपको फिर ब्याह करनेको इधर भेना । इसतरह मुझ तो भरा मनचाहा मुख मिळा, पर उस बेचारी निदंपि वनवासिनीकी व्यर्थ जान चर्छा गई । हाय : उसके हत्याके पापसे में केसे इंदूर्गा : प्राणनाथ ! प्राणनाथ ! मुझे क्षमा कीनिये ! पापम बलाइय । " कहते कहते उपाके करुण नेत्रोंन आंसुओं-की घार। वह चर्छ। जैसे जैसे गुप्त रहस्य खुलता गया वैसे वैसे विनोद-की ऑग्बोंसे क्रोधके मारे म्वृत बरसने लगा, उसका शरीर कांप उठा, बहरा लाल हो गया । वह विक्षिप्तसा होकर तलवार हाथमें लिये उपापर झपटा और कट्क कर बोळा-पापिनी ! मेरे मुावस्वरीको नष्ट कर-मेरी मत्र आद्याओं और जीवनपर पानी फेर कर, तू अपने प्राण बचानेकी आशा करती हैं / इस वाक्यके कहते ही विनोद, जैमें कोई शिकारी अपने शिकारपर टूट पड़ता है वैसे ही बेचारी उपाकी छातीपर चढ़ नैठा । उसके हाथकी अञ्झलती तलवारको देखकर उपा भयके मारे कांप उटी । उसके नेत्रोंसे अश्वओंकी मडी वह निकली । वह मुदेंकी तरह अचेत हो गई।

कुमारका तल्लार उठाना हुआ कि वह एक काचकी खिड़कीसे आकर टकराई। इतनेहीमें उसे गुरुका समझाया एक वाक्य याद हो उठा— "विचार्येव विधातन्यमनुतापोऽन्यया भवेत्। अर्थात् कुछ भी काम हो, उसे खूब सांच विचारके साथ करना चाहिये, जिससे फिर कष्ट न उठाना पड़े।" पर इस खुळी जातपर विचार भी क्या करूं ? वह बड़े असमंजसमें पड़ गया। एक हाथ तो उसका उसकी नई परनीके कोमल कण्डपर—नहीं प्रेम और कोधमें—रुका रहा और दूमरा हाथ उठाई हुई तलकारसे क्षणभरेक लिये म्तब्य-अक्रिय-नड़-बन गया। चामचिड़ियोंकी आवाजको छोड़कर मर्वत्र मीनका साम्राज्य हो गया।

x x x x x x

एकाएक काचकी खिड्की फूटी और नव द्म्पतिके दायनागारमें महमा एक युवा जा खड़ा हुआ | उमे देखकर विनादके हाथमेंसे ह तत्वबार छटक पड़ी | उमका भिर अपने आप आगन्तुकके पार्वोपर झुका और यह मब क्या है। रहा है, इस अमसे वह आन्त हो उटा |

मावधान ! मावधान ! मा, ब्राह्मण और खियोंका रक्षा करना जिनका कर्तव्य है, उन राजकुमारोंका खियोंपर हाथ उठाना तथा शोभा देगा : हमार पाठकींको आगन्तुककी आदेशभरी बात मुनकर आश्चर्य होगा, माय ही उमके जाननेकी मी उत्कण्ठा होगी। इसल्बिय उनकी उत्कण्ठा हम यही मिटाये देते हैं। आगन्तुक मनुष्य और कोई न होकर हमारे कुमारका साथी तहण—तपस्वी है। यही कारण था कि उमे देखकर कुमार एक साथ विनति हो गया। जब कुमारकी तळवार खिड्कींसे टकराई थी उस वक्त युवा ता-प्रम पासके ही कमरेमें किसी विषयके विचारमें निमन्न था। शान्तिके समय यह खड़खड़ाहट और विनादका अन्तिम वाक्य उसके कानोंमें सुनाई पड़ा। वह कुछ दालमें काला समझकर वहाँ कुछ घटना न हो जाय, इसके पहले ही दौड़ा हुआ पहुंचा और काचकी खिड़कीको फोड़कर कुमारके शब्याभवनमें जा पहुंचा।

विनोद तापसके प्रश्नका उत्तर देने छगा—प्यारे मित्र ! मैं आपको अपना निवनवृत्तान्त मुना चुका हूं । मेरी प्यारी कुन्दका निस कारण खून हुआ, उमका कारण आज खुळ गया । उम निर्देय कर्मकी करने-वाळी इम समय मेरी अर्थागिनी हुई है। उसे उमके पापका पाय-ध्यित देकर मैं भी अपने पापका प्रायश्चित करूँगा ।

तापमंन निडर हाकर कहा—" किसी योर पापका बदला प्राणवध्य द्वारा छेनकी मत्ता किसी मनुष्यको नहीं है। उसके कियका फल उसे अपने आप ही मिलेगा। तया तमने किये कर्मका फल न मोगनेवाले की कभी मुना है? तब फिर किमलिये व्यर्थ एक मनुष्यकी हत्याका पाप अपने निरमर उठालेनेकी इच्छा करते हो? जरा दिचार करो कि यदि वह जीती रहेगी तो कभी मत्पुरुषोंके उपदेशसे अपने पापकर्मके लिये पश्चात्ताप करेगी और पापसे मुक्त होने—का उपाय करेगी। तुम तो क्या पर तुम्हार पिता, जी एक राजा हैं, अपनी प्रजाको बड़ेसे बड़े अपराधके लिये भी प्राणदंड देनेका अधिकार नहीं रखते हैं। "

कुमार निरुत्तर हुआ, पर फिर भी बेला—अस्तु । न सही स्त्री-हत्या, पर अपने पापका प्रायश्चित्त तो मैं अवस्य ही करूँगा । तापसने फिर कहा—जाना मैंने कि तुम अपने पापका प्रायश्चित्त करोगे, पर यह बतला सकोगे कि वह पाप कौनसा है जिसके लिये तुम इतना कठिन प्रायश्चित करना चाहते हो ?

कुमार बोला—िकसालिये ? यह आप मुझे क्या पूजते हैं ? क्या आप नहीं जानते कि एक भोली भाली वनवासिनी बालिकाका बुरी तरह मैंने वध कराया है ? ऐसा अमानुषिक अत्याचार करके अब मैं सुख भोगूँ, यह मुझसे न होगा। उसे मेरे हाथमें सींपते क्क गुरुने मुझसे कहा था कि "संसारकी बातोंको न जाननेवाली मेरी इस मोली भाली बालिकाकी रक्षा अब तुम्हार हाथ है "हाय! आज में रक्षक बदले भक्षक कहलाया। अब मैं कीन मुँह लेकन अपनी निन्दगी बिता सकता हं!

कुमारके हृदयको बहुत अशान्त समझ कर तागस उमवक्त अधिक कहिँना उचित न जानकर बोला—अच्छी बात है, पर सबेरे यह बात सब पर विदित करके फिर जेसा तुम्हें उचित नान पढ़े वह करना । पर याद रखना बिना ऐमा किये कुछ अनुचित साहम कर बैठोंगे तो इसका कलंक मुझपर आयमा ।

प्रातःकाल हुआ। चन्द्रगम विनो क्षे कुशल समानार नाननेके लिथे उसके पास आये। उन्होंने प्रमन्नताके बदले विनोदका मुंह उदास और दुखी पाया। एक राजिमें यह आकास्मिक परिवर्तन देखकर उनके आश्चर्यका पार नहीं रहा। उन्होंने घबराकर कुमारसे उदा-सीका कारण पूछा। उत्तरमें कुमारने सब हाउ आदिसे अन्ततक कह कर अन्तमें कहा— " मैंने एक निरपराध बालिकाकी हत्या कराई है, इसिल्ये में खुद्यीसे अपने पापका प्रायश्चित्त कहूँगा— अपने अज्ञान्त हृद्यको ज्ञान्त कहूँगा । इसिल्ये आप लेग मुझे जानेदें।" कुमारकी यह अश्वतपूर्व बात मुनकर चन्द्रराजका मुँह एक साथ पीला पड़ गया । उन्होंने कुमारके ऐसे अनुचित कत्त्रत्यका ओरके साथ विरोध किया और अपने कुटुम्बियोंको बुला-कर कुमारका अनुचित विचार सबपर जाहिर कर दिया । सबने उसका विरोध किया, पर कुमारके हृद्यमें किसीकी बात न समाई। इतनहींमें तापसने आकर कुमारका हाथ पकड़ लिया और कहा—

राजकुमार, आत्महत्याम बहुकर कोई पाप नहीं है। तुम तो समझते होंग कि एसा करनेसे मुझे दुःखसे छुटकारा मिलेगा, पर नहीं समझते कि ऐसा अनर्थ करके तुम भव भवमें अपने आत्माको कुगतियों-में सटकानेवाटा पापकर्म कमालोगे। समझते हो, यह मनुष्यपर्याय कितनी किटिनतामें, कितनी तकलीफ में और कितने अच्छे अच्छे सेयोगोंके मिटनेपर मिलती है। उसमें किसी एक साधारण कारणसे दुर्वा बनकर भदाके लिये आत्माका अहित करनेवाले कितने मूर्व समझे जाते हैं, जानते हो। तुमने अनन्तभवमें अनन्तवार अनन्तस्त प्राप्त किया है और करोग उसे यदि याद करो तो इस तुच्छ दुःखसे इतने कायर नहीं बनोगे। क्या प्रकृति तुन्हें मदा मुखी ही बनाये रक्ते, ऐसी तुम आहा करते हो। यह तुम्हारी मूल है। याद रक्ते। दुःख उठानेसे ही सुलमें महत्त्व मालूम पड़ता है। यदि दुःख न होता तो सुलकी भी कुछ कीमत न होती। नीतिकारने बहुत ठीक लिखा है कि—

अस्ते तमां सिद्धं मणिर्मणिवा विना न कार्षः स्वगुणं व्यनिक ।
अर्थात्—अंधकारके बिना सूर्य और कार्बके बिना रतन अपना
गुण प्रगट नहीं कर मकते हैं । तुम जीते रहोंगे तो कभी इस विन्तासे मुक्त होकर आत्महित भी कर सकांगे । मरे बाद पशुपाक्षियोंकी पर्यायमें तुम क्या सफलता प्राप्तें कर सकते हो ! । देवता मी
तो मनुष्य पर्यायको छोड़कर सफलता प्राप्त नहीं कर सकते । वे
सदा मनुष्य-भवके लिये तरसा करते हैं और जब मनुष्य थे, तब
प्रमाद तथा और कारणोंसे उन्होंने आत्महितकी ओर छक्ष नहीं
दिया; इसने लिये आज भी वे झुग करते हैं । क्या इस तुम भूलते
हो ! क्या तुम आत्महत्या करके कुन्दका मुँह देखनेकी आशा रखते हो !

इतनेमें कुमार बीचहीमें बोल उठा कि—" हाँ उसी आशा तमें ऐसा करना चाहता हूँ, मुझे न रोको मुखी होने दो। "

साधुने यह देलकर, कि विनोदका चित्त उसके विचारोंके आधान नहीं रहा है, अपने कहनेका दंग बदल दिया। उसने कहा—टहरि-ये, निमकी आशांस तुम ऐसे अमानुषिक कार्यके करनेको तत्पर हुए हो; वह अभीतक नीती जागती है, ऐसा मुझे विश्वास है। मैं उसके लानेकी भी कोशिश कर सकता हूं।

कुमार विशिष्ठमा होकर बोल उठा—क्या कुन्द अभीतक जीती हैं ! और तुम उमे ला भी मकते हो ! जान पड्ता है आप लोग मेरी दिल्लगी करते हैं !

इतनमें चन्द्रराजने कहा-पुरुषात्तम ! आप हम लोगोंकी ओर ! देखिये, हमारा दुःखंस उद्धार कीनिये। यदि आप कुन्दकी लोदेंगें तो हम समझेंगे आपने हमें पुनर्जीवन दिया। साधुने उसिक्त वहाँ एक पड़दा डख्ना दिया और आप उसके मीतर जाकर बोछा कि—" कुन्द ! यदि तेरे प्रियतमका तुझपर अटछ प्रेम हो और तेरा पवित्र और आदर्श प्रेम उसपर हो, तो मैं कहता हूँ-मेरी विद्याके बलसे तूं यहाँ आकर उपस्थित हो और सबको मुखी कर।"

 $x + x \times x \times x$

योगीका इतना कहकर चुप रहना था कि विनोदने पड़देको एकदम सीच लिया। पड़दा खीचते ही कुन्द उसे दीख पड़ी। उसे देख वह उन्मत्त होकर उसके पाँवोमें गिर पड़ा और लगा अपने अपराधकी बारबार क्षमा कराने। कुन्दने बड़े विनयमे उसके मिरको उठाया और कहा—''मैंने भवान्तरमें जैसा कर्म किया था उमीका फल मुझे मिला। इसमें बेचारी उपाका कुछ अपराध नहीं है। यह ते। केवल निमित्त मात्र थी। आप मुझे इतने मन्मान द्वारा लजित न करें। ''

कुमारको कृन्द मिल गई—सदाके लिये खोई हुई वस्तु उसे फिर प्राप्त हो गई, पर तब भी अभीतक उसका चित्त कुछ उद्विप्त दील पड़ता है। उसकी क्षण क्षणमें इधर उधर नानेवाली दृष्टि उसके हृदयकी निराशा बतलाती है। उसे इमतरह अन्यमनस्क देखकर और उसके हृदयका भाव समझकर कुन्द बोडी—

निसे आप देल रहे हैं वे ऐसं मिलनेके नहीं हैं। आप मुझे क्षमा करें तो उनका पता मैं आपको दे सकती हूं। कुमारने उसे क्षमा प्रदान की। वह बोली—मेरे जीवन! आजतक मैंने आपसे जो बात जिपा रक्षी थी, उसीके लिये मैंने आपसे क्षमाकी मीख मांगी है और अब उसका खुळासा भी किये देती हूँ। सुनिये-

" आपको बीरान जंगलमें एक योगी मिला था, उसने आपको अपने आश्रममें लिवा लेनाकर शान्त किया था, ने। आपके साथ यहां आया और अन्तमें आपको स्नीहत्या और आत्महत्यांके महापापसे बचाकर अदृहय हो गया— वह कोई और न होकर स्वयं में ही हूं। जल्लाद लोग मुझे लेकर जब जंगलमें आये तब मैं अदृहयकरण अंजनके प्रभावसे, जो कि पिताजीने मुझे दे रवला था, अदृहय हो गई। मुझे न पाकर जल्लाद लोग हताश हे कर वहांने चल दिये और जाकर महाराजसे उन्होंने कह दिया कि हम कुन्दको मार आये!

इसके बाद मैं अपने पिताके आश्रममें आई। पर मुझे न पिता-जी मिले और न गुरूजी। मैं यह मुनकर, कि वे उन्न तपश्चर्या द्वारा आयु पूर्ण कर स्वर्ग चल गय, योगीके वेपमें वहीं रहने लगी और धर्मध्यानमें अपना समय बिताने लगी। क्योंकि गुरूजीने हमें यह उपदेश दिया था कि "सब ओरसे निराश हुए मनुष्योंको धर्म ही अन्तिम आशास्थल रह जाता है। ,,

कुन्दकी रहस्यभरी बात मुनकर विनोदकी उसकी वृद्धिमानी और कार्यकुशलतपरा बड़ा आश्चर्य हुआ । वह इस अपार खुशीके मार उन्मत्त हो उठा । वह कुन्दकी पुनर्जन्म देनेवार्लः देवी कहकर पाँवोंमें गिर पड़ा । बुन्देन उमे उठाया और कहा—'' प्राणनाथ ! ऐसा करना आपकी शोभा नहीं देता है । मैं तो आपके—चरणोंकी दासी हूँ । अस्तु । मेरी एक प्रार्थना है-उसे आप म्बीकार की जिये । जब अपने दु:स्वांका अन्त आ नुका तब मेरे कहे माफिक मेरी प्यारी बहिन उषाको क्षमा प्रदान करके मेरी ही तरह इसे मी अपने इदय मन्दिरमें प्रतिष्ठित कीजिये। मेरे साथ साथ इसे मी जगह दीजिये।"

उदार दिलवाली अपनी प्रियाके बचन मुनकर बिनोद बहुत खुरा हुआ | वह बोला—कुन्द ! साधुराज ! आपकी हर एक आज्ञा यह आज्ञाकारी मिरपर चटाता है |

इस घटनासे क्या उपाको और क्या उसके माता पिताको तथा और सर्व साधारणको जो आनन्द, जो प्रसन्नता हुई उसे शब्दोंमें छिखकर बता देना इम छेखककी छेखनीकी शक्तिसे बाहिर है। इसका अनुभव वे ही कर सकते हैं जिन्हें विर विछोहके बाद अपनी प्यारीका फिर समागम मिलता है और सब तरह निराश हुएको उनकी आशा सफल है। जाती है।

विनीद करकी और मुह करके बोला-देवी! कही अब और क्या आजा होती है? विनोदकी इस प्रिय हैंग कद शर्मा गई। वह गद्धद होकर बोली-प्राणनाथ! प्रतिके पूण प्रेम मित्रा ख्रियोंके लिये और क्या चाह हो मकती है? तब भी आपकी ऐसी ही इच्छा है तो इनना और कीजिय-

अपने शहरमें एक ' कन्यामहाविद्यालय , बनवा दीनिये, जिसमें मेरा बहिने उच्चेम उच्च धार्मिक विद्या प्राप्त करके अपने मनु-प्य जीवनको पुण्यमय, पवित्र-प्रेममय और परोपकारमय बना कर आत्मकल्याण करें और संसारका भी उपकार करें । ,

विनोदेने कहा-तथास्तु ।

समाप्त ।

सत्यवादी ।

हमारे यहांसे उक्त नामका एक माभिक पत्र हर महीते प्रकाशित होता है। इसमें सर्व साधारणोपयोगी उत्तम उत्तम मामानिक छेख मनोरंजक और शिक्षाप्रद मुन्दर आख्यायिका और समय समयपर अच्छे अच्छे धार्मिक छेख प्रकाशित हुआ करते हैं। जैन समाजमें यहां एक ऐमा पत्र हें जो सामाजिक विषयों के लिखने में सब पत्रों से बढ़ा है। यदि आपको अपनी सामाजिक दुर्शाका कुछ भी दुःख है और कुछ भी आपके हृद्यमें अपने पतित समाजके लिये द्या है. उसके सुधारकी चिन्ता हैं—तो कुपाकरके इस पत्रके स्वयं प्राहक बनिये और अपने इष्ट मित्रों को बनाइये। वार्षिक मृज्य १॥ मात्र। नम्ना बिना मृज्य भेजा जाता है।

प्रतिवर्ष मुन्दर उपहार भी दिया नाता है। दूमरे वर्षका उपहार आपके हाथकी यही मुन्दर पुस्तक है।

> भैनेतर— **सत्यवादी** गरगाव— बम्बर्ड ।